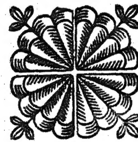
डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त

वैष्णव कबीर :

रहस्यवाद – मानवतावाद



भाषा-साहित्य-संस्थान

147 त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद–3

[निकट उत्तम सिनेमा]

प्रकाशक : भाषा-साहित्य-संस्थान
147 त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद 3

वर्ष—जनवरी 1986

मुद्रक : आनन्द मुद्रणालय
मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

Vaishnava Kabir
by
Dr. Harihar Prasad Gupta

Published by : Bhasha Sahitya Samsthan,
Allahabad (India)

Rs. 50.00

प्रवर्तिका

इस कृति में कबीर सम्बन्धी निम्नांकित समस्याओं पर ऐतिहासिक-तुलनात्मक अनुशीलन एवं अन्तर्साक्ष्य के आधार पर विचार किया गया है :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की धारणा है कि सन्तसाहित्य के विकास के मूल में भारत में मुसलमानों का आगमन है अर्थात् भक्ति-साहित्य मुसलमानी प्रभाव की प्रतिक्रिया है। शुक्ल जी यह भी मानते हैं कि भक्ति-साहित्य दुर्बल जाति की प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति का फल है।

भारतीय भक्ति-साहित्य आर्यधर्म, वैदिक धर्म, सनातन धर्म की अजस्र-धारा से एकमेक है। **विष्णु पुराण** प्राचीनतम धार्मिक साहित्य है और इसमें विष्णु को अवतार मानकर उनकी उपासना का वर्णन है। शंकराचार्य ने केवल इसी पुराण से उद्धरण दिए हैं। **भागवत पुराण** में कृष्ण को अवतार माना गया है और उनकी लीलाओं का वर्णन है। **ब्रह्मवैवर्त पुराण** में कृष्ण-जन्म का वर्णन है। **नारद पुराण** में ईश्वर-भक्ति से मोक्ष का प्रतिपादन है। **पद्मपुराण** में राधा-कृष्ण की प्रेमलीला है। **कूर्मपुराण** में समाधि की महिमा है। **स्कन्द पुराण** में शिव-भक्ति का विस्तार से वर्णन है।

सम्राट् कनिष्क (120 ईस्वी) के राजकवि **अश्वघोष** बौद्ध नाटककार हैं। सनातन धर्म से भिन्न एक अनीश्वरवादी प्रवृत्ति ईसवी सन् के पूर्व विकसित हुई। अश्वघोष के 'शारिपुत्र प्रकरण' में बुद्ध अपने दो शिष्यों—**मौद्गलायन और शारिपुत्र** को भरतवाक्य में आशीर्वाद देते हैं—'अब से ये दोनों इन्द्रिय-निग्रह करते हुए निरंतर ज्ञानवृद्धि करते रहें और निर्वाण प्राप्त करें।' इस भरतवाक्य से तीन बातें स्पष्ट हैं (1) इन्द्रिय-निग्रह (2) ज्ञानवृद्धि और (3) निर्वाण। संत-साहित्य में कबीर द्वारा इन्द्रिय-निग्रह और निर्वाण पर बराबर बल है। **निर्वाण** (वा=वायु-बहना) का प्रयोग महाभारत में मृत्यु और मोक्ष के आशय में है। पालि-प्राकृत में क्रमशः **निब्बान, णिवाण** समाप्ति के आशय में है। इस नाटक में एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है—बुद्ध संस्कृत बोलते हैं पर स्त्रियाँ और निम्नकोटि के पात्र शौरसेनी, प्राच्या, मागधी या अर्धमागधी बोलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत केवल उच्चवर्ग मुख्यतः ब्राह्मणों की भाषा रह गई थी और सामान्य जन भाषा (बोली) का प्रयोग करता था। जनभाषा के विकास का यह आरम्भिक युग माना जा सकता है। कबीर के युग में निश्चय ही शौरसेनी-मागधी के विकसित रूप का प्राधान्य हो गया था। गोरखनाथ की भाषा कबीर की भाषा का पूर्व रूप है और कबीर की योगपरक शब्दावली गोरख की ही है। शब्दों का विद्रोह भाषा से जुड़ा है।

भारत में, बौद्ध-जैन-चार्वाक की अनीश्वरवादी साधना, योगियों की निर्गुण अथवा औपनिषिदिक साधना तथा भागवत की वैष्णव साधना एक साथ विकसित होती रही—इसके साथ मीमांसकों की यज्ञपरक साधना भी चलती रही। सांख्य-वादियों ने पुरुष को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया साथ ही प्रकृति के 24 तत्त्वों पर बल दिया। संत-साहित्य में अनीश्वर विचारधारा का सर्वथा विरोध है। भोगपरक चार्वाक और यौनपूजापरक तांत्रिक का भी कबीरकाव्य में तिरस्कार है। कबीर में एक ओर गोरखनाथ की योग प्रक्रिया है दूसरी ओर वैष्णवपरक भक्ति। वस्तुतः, योग और भक्ति परस्पर पूरक रहे हैं जैसा—गीता से स्पष्ट है।

प्रबोधचंद्रोदय (11वीं ईस्वी) में वेदान्त और विष्णुभक्ति का सामंजस्य है। **पुरुष** को साक्षी-असंग बतलाया गया है। कबीर की **साखी पुरुष** की साक्षी ही है। कबीर निसंग-असंग पर बराबर जोर देते हैं। नाटककार का प्रतिपाद्य है कि मोह के मिट जाने पर व्यक्ति विष्णुपद प्राप्त करता है। कबीर में बार-बार मोह से मुक्त होने की बात है। इस नाटक में **पाखण्ड** का भी भंडाफोड़ है—नाटककार दंभ से कहलाता है कि तथाकथित तपस्वी रात्रि में वेश्यावेश्म में विहार करते हैं और दिन में ये धूर्त जगत् को ठगते हैं। कबीर ने पाखण्ड की इस रूप में आलोचना की है। इस प्रकार 11वीं सदी से ही कबीर की विचारधारा का विकास देखा जा सकता है। भर्तृहरि की रचना में एक ओर शृंगार का भरपूर चित्रण है दूसरी ओर वैराग्य और नीति का। वैराग्य श्रेयस् था पूरे मध्ययुग में। कबीर के अनुशीलन में इस सम्पूर्ण परम्परा को सम्यक् समझना होगा। न्याय और सांख्य का क्रमशः वाद और प्रकृतिपरक दृष्टिकोण भी उक्त नाटक में चित्रित है। कबीर में 25 तत्त्व का वर्णन सांख्य की ही देन है। कबीर वाद से बचने के लिए हरिजन को सचेत करते रहते हैं। महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर-नामदेव और दक्षिण के रामानन्द की भक्ति का प्रभाव भी कबीर-काव्य पर स्पष्ट है। अतः, संत कबीर का जीवनदर्शन मुसलमानों की प्रतिक्रिया नहीं और न किसी हताश जाति की यह जीवन-दृष्टि है। संतयुग जागरण-युग था।

शुक्लजी ने भक्तिधारा को निर्गुण और सगुणधारा में विभक्त कर कबीर को निर्गुणी संत प्रतिष्ठापित किया है। पर कबीर भक्त हैं मात्रयोगी नहीं। गोरख को निर्गुनिया कह सकते हैं और वे ही निर्गुण उपासना के प्रतिष्ठापक है, कबीर नहीं। भक्ति-भाव-भजन एवं भगवान के चरणों का भरोसा निरगुनिया नहीं करता। कबीर को बल राम और रामनाम का है—रामनाम के जप का है। कबीर अजामिल-गज-गणिका-ध्रुव, प्रह्लाद, अंबरीष, सनकादि और व्यास का सश्रद्ध सुमिरन करते हैं। कबीर के आदर्श गोरख, भर्तृहरि, गोपीचंद हैं साथ ही जयदेव, नामदेव भी। नामदेव की ही परम्परा के कवि हैं कबीर। नामदेव के गीतों में वही भावोन्माद है जो कबीर में। कुछ विद्वान् मानते हैं कि पश्चिमी अपभ्रंश से राज-

स्तुति, ऐहिकतामूलक शृंगारी काव्य, नीतिविषयक फुटकल रचनाएँ और लोक प्रचलित कथानक तथा पूर्वी अपभ्रंश से निर्गुणिया सन्तों की शास्त्रनिरपेक्ष उग्र विचारधारा—झाड़फटकार, अक्खड़पन, सहजशून्य की साधना, योगपद्धति और भक्तिमूलक रचनाएँ विकसित हुई हैं। पर ऐसा अलगाव वैज्ञानिक-प्रामाणिक नहीं है। पश्चिम अपभ्रंश और पूर्वी अपभ्रंश की परम्परा को अलग-अलग मानने वाले मानते हैं कि—"पूर्वी प्रदेशों में भारतीय इतिहास के आदिकाल से रूढ़ियों और परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले संत होते रहे हैं।" पर ज्ञानेश्वर-नामदेव महाराष्ट्र के संत हैं और दोनों को ब्राह्मणों-पण्डितों का कोपभाजन बनना पड़ा और दोनों ने रूढ़िवादी परम्परा से विद्रोह कर अपना नया मार्ग बनाया। ज्ञानेश्वर नामदेव संतमंडली के साथ प्रयोग-काशी की तीर्थ-यात्रा किए थे।

पूरे भारत की अखंडता उसकी धार्मिक-सांस्कृतिक एकता से सम्बन्धित है। भक्ति-धारा दक्षिण-पश्चिम-पूर्व और उत्तर में एक साथ बड़े वेग से बौद्धधर्म की प्रतिक्रिया में बही, उसमें भाषा का भेद मिट सा गया। सुदूर दक्षिण में आलवार भक्त थे। ज्ञानेश्वर नाथपंथी थे। रामानुज विष्णुभक्त थे। कबीर वैष्णव हैं। कबीर गोरख के अलख पुरुष के योगी हैं; कबीर नामभक्त हैं और मानते हैं नाम ही भवसागर से पार उतारने में समर्थ है। कबीर राम के चरणकमल के बन्दे हैं। कबीर की भाषा गोरख-नामदेव की भाषा है। इसका सम्बन्ध भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से है भले ही तत्कालीन अरबी-फारसी-उर्दू के शब्द इसमें प्रयुक्त हों। गोरखनाथ-ज्ञानेश्वर के समय तक मुसलमान बस गए थे पर उनकी संस्कृति-भाषा संरचना का प्रभाव संत-साहित्य में नहीं है। अतः, कबीर के व्यक्तित्व-कृतित्व की जाँच उन्हें निरगुनिया के चौखटे में रखकर न करनी चाहिए। कबीर नामदेव की भाँति मूलतः भागवतधर्मी हैं जिसका सम्बन्ध विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत से है। कबीर के विचारों, उनकी आलोचनात्मक उक्तियों को पूरे सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि से जोड़कर समझना चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है "यदि कबीर आदि निर्गुणवादी संतों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्धधर्म के अंतिम सिद्धों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा सम्बन्ध है।" द्विवेदी जी मानते हैं कि "साखी का मतलब ही है पूर्वतर साधकों की बात पर कबीरदास अपनी साक्षी या गवाही दे रहे हैं।" द्विवेदी जी अपनी बात की पुष्टि में कहते हैं : "कबीरदास के पदों के साथ जब उनके पूर्ववर्ती सिद्धों के पदों की तुलना की जाती है तब इस जाति के पदों में आश्चर्यजनक साम्य दिखाई देता है। असल बात तो यह है कि सहजयान में 'मदिरा' का प्रचलन भी खूब हो चुका था। सिद्ध लोग भी एक प्रकार की मदिरा की चर्चा करते हैं जिसका स्वर हू-ब-हू कबीर जैसा होता है। यह भी

ध्यान देने की बात है कि ऐसे पदों में कबीरदास प्रायः अवधू या अवधूत का सम्बोधन करते हैं।……यह अवधूत ही मदिरा की नयी व्याख्या है।" इस प्रकार द्विवेदी जी संतकव्य की पृष्ठभूमि में बौद्धतत्त्ववाद को प्रमुखता देते हैं। पर गोरखनाथ-कबीर में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना के प्रति कहीं आकर्षण नहीं है। नामदेव तो स्पष्ट लिखते हैं कि जादू-टोना के अंधविश्वास में जनता फँसी थी इससे उन्हें मुक्त करना होगा और इसके लिए बिट्ठल की भक्ति ही एकमात्र उपाय है। कबीर में मारण-मोहन-वशीकरण-उच्चाटन की बात कहीं नहीं है। कबीर पर मेरी समझ में, बौद्धतत्त्ववाद का प्रभाव नगण्य है, कबीर बार-बार जैन-बौद्ध-चार्वाक-साकट का विरोध करते हैं। द्विवेदी जी मानते हैं महायान सम्प्रदाय में नामजप से निर्वाण-प्राप्ति में विश्वास रहा है और संत साहित्य' में यह 'बौद्धतत्त्ववाद' की देन है। पर, अजामिल नारायण नाम कहने मात्र से मुक्त हुआ था। हम क्यों न सन्तों के नाम माहात्म्य को भागवतधर्म से जोड़ें।

साखी परमपुरुष अथवा आत्मा की साक्षी है। 'मदिरा' अमृत-वारुणी का ही रूप है। सन्त साहित्य में यही 'रामरस' है। गोरख ने मद्य और मद्यप की निन्दा की है। अतः गोरख-कबीर नामदेव का 'अमल' सहजयानियों से भिन्न है। द्विवेदी जी 'अमृत' को संस्कृत 'अम्ल' से सम्बन्धित करते हैं पर 'अमृत' 'अ+मृत' है। सं० अम्ल=खट्टा से अमल (अरबी)=कार्य, नशा का सम्बन्ध नहीं, जैसा द्विवेदी जी ने लक्ष किया है। कबीर का अमल अमृत रस, नाम की लौ या 'नाम अमल' है। योग-प्रक्रिया में सहस्रार का रस अमृतस्राव है।

महायान का सबसे अधिक बल कर्मकाण्ड और मन्त्र तन्त्र पर था—जगत् को सारशून्य मानते थे। पर गोरख-ज्ञानेश्वर-नामदेव, भर्तृहरि-कबीर किसी में न कर्मकाण्ड की चर्चा है और न मन्त्रतन्त्र की। अतः, महायान अथवा बौद्धसम्प्रदाय का सन्त साहित्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। द्विवेदी जी सूरदास-तुलसीदास के अवतारवाद को भी महायान सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित मानते हैं। लगता है द्विवेदी जी पुराणों में प्रतिपादित अवतारवाद को भूल से गए। यह अवश्य है कि कोई भी विचारधारा लुप्त नहीं होती, वह अपना अस्तित्व-प्रभाव छोड़ जाती है पर यह कहना कि संत और सम्पूर्ण भक्ति साहित्य बौद्धतत्त्ववाद, महायान से विशिष्ट प्रभावित है और कबीर की साखी इस तत्त्व की गवाही है उचित नहीं लगता। कबीर का निर्वाण शून्य नहीं वह हृदय की शुद्धता का फल है। कबीर का 'परम-पद'—'अभयपद' रामकृपा से सम्भव है तन्त्र-मन्त्र कर्मकाण्ड से नहीं। 'हरि का भजै सो हरि का होई' सिद्धान्त श्रीमद्भागवत की देन है, महायान की नहीं।

सहजयानी सिद्ध विशेषतः सरहपा (सरोरुहपाद) जाति-व्यवस्था के प्रबल विरोधी थे। नाथ और सरहपा-काव्य में गुरु-विमलमति और अजरामर की जो बात है वह भागवत धर्म की परम्परा से प्रभावित है। सन्तसाहित्य में वर्णाश्रम

धर्म का जो विरोध है वह तत्कालीन समाज की माँग थी, ज्ञानेश्वर और नामदेव की जीवनी से यह अत्यन्त स्पष्ट है—ब्राह्मणों ने कितना पीड़ित-दण्डित किया था इन भक्तों को ! कबीर निरगुनिया नहीं।

कबीर में निर्गुण-सगुण का समन्वय है—उनका कथन है :

ते नहीं डूबै पार तिरिलंघै निरगुण-सगुण संग करै। 30 रामकली

कबीर का दृष्टिकोण है कि अपने से लड़ते रहें साथ ही भगवान का सहारा रखें। गोरखनाथ के निरगुण के साथ कबीर के सगुण का यही समन्वय है। कबीर मानते हैं कि अलष-अलष कहने अथवा गगन-मंडल में रमने से भक्ति सहज है। रामराम कहने मात्र से हृदय निर्मल होता है। गोरख ने भी माना है कि ज्ञान का प्रकाश बिरले को मिलता है—अपने से अपने को जूझना होगा—

कासौं झूझौं अवधू राइ। विपष न दीसै कोई
जासों अब झूझौ रे आतमाराम सोई।
आप ही मछ कछ आपण ही जाल,
आपण ही धीवर आपण ही काल।······
न्हाइब कौ तीरथ न पूजिबै कौं देव,
भणत गोरखनाथ अलष अभेव॥

गोरखनाथ 'कायागढ़' जीतने की बात बार-बार भिन्न-भिन्न शब्दों में दुहराते हैं पर यह भी कहते हैं कि यह है दुष्कर। गोरख सभी साधनों की सम्यक् आलोचना करते हुए कहते हैं :

पंडित जण-जण बाद न होई, अणबोल्या अवधू सोई।
पत्रे ब्रह्मा कली बिसना फल मधे रुद्रम देवा।
तीन देव का छेद किया, तुम्हें करहु कौन की सेवा।
येक डंडी दुडंडी त्रियडंडी भगवान हूवा।
विष्न कौ तिन पार न पायौ तीरथां भ्रमि-भ्रमि मूवा।
येक काल मुहां जटाधारी ल्यंग उपासिका हूवा।
महादेव कौ तिन पार न पायौ राष रौलिरौलि मूवा।
चौदसिया नै पूनमिया जैन ब्रतधारी हूवा।
अरहंत कौ तिन पार न पायौ केस लौंचि लौंमि मूवा।
येक मुल्लानं दोई कुरानां ग्यारह पुरसाणी हूवा।
अलह कौ तिन पार न पायौ बंग देइ देइ मूवा।
नौ नाथ नै चौरासी सिधा आसणधारी हूवा।
जोग कौ तिन पार न पायौ बनषंडा भ्रमि-भ्रमि मूवा।
पंच तत की काया बिनसी राषि न सक्या कोई।
काल दबन जब ग्यान प्रकासा बदंत गोरष सोई।

गोरख के उक्त पद में भारतीय साधना की पूरी परम्परा है। वे मुल्लाओं की भी बात करते हैं। अतः, संत परम्परा मुसलमानों के आगमन की प्रतिक्रिया नहीं और न सहजयानियों से ही इसका सीधा सम्बन्ध है। गोरख का योग गीता का योग-मार्ग है। कबीर ने अनुभव किया कि ज्ञान के लिए भक्ति अपेक्षित है। भक्ति हृदय को निर्मल करती है। ज्ञान से अहंकार नहीं मिटता। इसलिए कबीर का राम निर्विशेष (जिसमें व्यक्तिगत सम्बन्ध की कल्पना न की जाय) नहीं। कबीर अपने को रामदास, हरिजन, दासानुदास कहते हैं, कबीर राम के गुलाम हैं, उनके कूता हैं। कबीर के राम उनके स्वामी है, उनके सखा है और उनके परम प्रियतम। कबीर अपने राम के बालक भी हैं—

हरि जननी मैं बालक तोरा। काहे न औगुन बकसहु मोरा।

कबीर न जोग चाहते हैं, न भोग, न मुकति, वे राम से एकमेक होना चाहते हैं—सतत संश्लिष्टता।

वे दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारन हम देहधरी है मिलिबो अंगि लगाइ ॥

दादू कबीर के सम्बन्ध में कहते हैं—

अपना मस्तक काटि कै बीर हुआ कबीर।

यह योगमार्ग नहीं शरणागति है। कबीर ज्ञान-मार्ग, योग से जब थकते हैं तब अपने राम सतगुरु को पुकारते हैं—

परमगुरु देखौ रिदै बिचारी। कछु करौ सहाइ हमारी ॥

कबीर कहते हैं मेरा ज्ञान सहायक नहीं हो रहा है आप ही कुछ करें—

चोर तुम्हारा तुम्हरी आग्या मुसिमत नगर तुम्हारा।
इनके गुनह हमह का पकरी का अपराध हमारा ॥ 30 सोरठि

कबीर की आस्था है कि आपा पर का भेद तभी मिटेगा जब राम दया करें—बिना इसके सब साधना झूठी :

आपा पर सम चीन्हिये तब मिलै आतमाराम।
हिरदै श्री हरि भेंटिये जे मन अनते नहिं जाइ ॥ 1 केदारा

कबीर भजन पर आस्था रखते हैं—

भजन को परताप ऐसो तिरे जल पाषांन।
अधम भील अजाति गनिका चढ़े जात विवान ॥ 2 केदारा

अतः, कबीर की साधना-पद्धति एवं उनका जीवन-दर्शन न बौद्धतत्त्व, न सहजयानियों से, और न नाथों की परम्परा से सप्राण है। कबीर वैष्णव हैं भागवत परम्परा के। कबीर के आदर्श हैं श्रीमद्भागवत की गोपियाँ—

सुनि सखी सुपने की गति ऐसी हरि आये हम पास। 3 केदारा

कबीर अधीर-व्याकुल हैं गोपिकाओं की तरह :

अहनिसि आतुर दरसन कारनि ऐसी ब्यापै मोहिं।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी कांचै भांडै नीर।
बहुत दिनन कै बिछुरै माधौ मन नाहीं बाधौं धीर। 6 केदारा

कबीर की योग साधना 'षट्कर्म' की नहीं, हठयोग की भाँति—धौति, बस्ती, नेती, त्राटक, नौलि और कपालभाती शरीर-शुद्धि के लिए है मन की शुद्धि तो मन को राम में लगाने से ही संभव है—

मन में आसन मन में रहना। मन का जप तप मनसूं कहना।

गोरखनाथ ने इसी तत्त्व का अनुभव करके कहा था—

यह मन सकती यह मन सीव यह मन पाँचतत्व का जीव।
यह मन ले जे उनमन रहै तौ तीनि लोक की बातां कहै।

कबीर और गोरख द्वारा प्रतिपादित मन की महत्ता हमें भगवान् महावीर की यह बात स्मरण दिलाती है—अपने से खोजो सत्य को "अप्पणा सच्च मेसेज्जा।"

कबीर-काव्य का एक विशिष्ट गुण है उसका मानवतापरक होना। कबीर आत्माराम हैं पर समसरि, समानता—एकता पर उनका बल है। वे चाहते हैं कि भेद दूर हो ऐक्य स्थापित हो। सब अपनी धर्म-साधना के लिए स्वतन्त्र हों—परमार्थ के लिए सब को समान अवसर मिले। कबीर का रामराय 'जगजीवन-सहजसनेही' है।

कबीर अभेदभाव को जीवन में उतार चुके थे :

मैं सबनि में औरनि में हूँ सब,
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ रामराई हो। 50 गौड़ी

कबीर का आत्मतत्व, अध्यात्म तत्व अथवा ततसार आपा-पर का भेद मिटाता है :

जब थैं आतमतत बिचारा।
तब निरवैर भया सबहिन थैं काम क्रोध गहि डारा। 33 रामकली

कबीर सूर-तुलसी की भाँति आर्त होकर अपने राम से कह उठते हैं—

कहै कबीर सुनि केसवा तू सकल बियापी।
तुम समसरि नाहीं दयालु मोहि समसरि पापी॥ 26 रामकली

कबीर मानते है 'अलष' बात करने से नहीं देखा जा सकता, माया-मोह और अहंकार के बन्धन से मुक्त होने पर ही उसका अनुभव सम्भव है :

माया मोह धन जोबनां इनि धंधे सब लोइ।
झूठै झूठ बियापिया कबीर अलख न लखई कोइ॥ 3 रमैणी

कबीर के लिए भगवान के सभी नाम बराबर हैं—सत्य की खोज तो मन की पवित्रता से सम्बन्धित है। यही ज्ञानदेव का कहना था—सत्य या यथार्थ भगवान् शिव या भगवान् कृष्ण के नाम पर प्रचलित शब्दों पर नहीं निर्भर है—वह स्वयं प्रमाण है।

कबीर के एक शिष्य संत घीसा बताए जाते हैं। उन्होंने अपने गुरु के सम्बन्ध में कहा है :

कक्का केवल नाम है, बब्बा ब्रह्म शरीर।
ररा सब में रमि रहा ताका नाम कबीर।।

अपनी सतगुरु-साधना के बारे में उनकी उक्ति है :

राम नाम की चूँदर ओढ़े छिमा की सेज सजाई।
घीसा संत सरण सतगुरु की अगम राह तब पाई।।

घीसा ने भी कबीर के समानता के संदेश को दुहराया है :

हिंदू मुसलमान भगलिंग को ही जान।

कबीर का व्यक्तित्व बहुमुखी है। उसे किसी घेरे में बांधना संभव नहीं है कबीर राम की लौ में इतने लीन थे कि उन्हें सर्वत्र उस इष्ट का दर्शन होता था।

गोरख ने सोनार के रूपक से अपनी साधना समझाई है—

सोना ल्यौ रस सोना ल्यौ मेरी जाति सुनारी रे।
धमणि धमीं रस जामणि जाम्यां
तब गगन महारस मिलिया रे।।
आपै सोना नै आप सुनारी मूल चक्र अंगीठा।
अहरणि नाद नै व्यंद हथौड़ा, घटिस्यूँ गगन बईठा।...

नामदेव ने दरजी के रूपक का प्रयोग किया है। और कबीर ने जुलाहे का—

तेरा हरि नामैं जुलाहा।
मेरे राम रमण का लाहा।।
दस सै सूत्र की पुरिया पूरी। चंद सूर दोइ साखी।
अनत नाऊँ गिनि लई मजूरी। हिरदा कँवल मैं राखी।
सुरति सुमृति दोउ खूँटी कीन्हीं। आरंभ किया बमेकी।
ग्यान तत की नली भराई। बुनत आतमा पेषी।। 26 सोरठि

कबीरदास इस बुनने से ही आत्मदर्शन किए एवं मुक्त हुए—.

दास कबीर बुनत सचु पाया। दुख संसा सब नासा।। वही

यही ज्ञान 'अनुभव' है—

बैठि बेगारि बुराई थाकी। अनभै पद परकासा।।

'अनभैपद', अभयपद, चौथापद ही परमपद है। एक अन्य पद में कबीर कहते हैं—

करगहि एक बिनाणी । ता भीतर पंच परानी ।
तामहँ एक उदासी । तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ।। 27 सोरठि

कबीर नायक-बनजारे के रूपक से भी अपनी बात समझाते हैं—

नाइक एक बनिजारे पाँच । बैल पचीस को संगसाथ ।
कहै कबीर यहु जनमु बाद । सहजि समानूं रही लादि ।। 6 बसंत

कबीर का वाणिज्य ऐसा है जिससे भौ पार होता है व्यक्ति—

कहै कबीर हम बनज्या सोई । जासैं आवागवन न होई ।।

कबीर कथनी-करनी की एकता में विश्वास करते हैं गोरख की भाँति । गोरख की बानी है :—

कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी ।
पढ़्या गुंण्या सुवा बिलाई षाया पंडित के हाथ रह गई पोथी ।।

कबीर जिस परंपरा से सम्बन्धित हैं उसमें शास्त्र का सहारा नहीं, आत्मविश्वास और भक्ति की लौ चाहिए ।

नामदेव की हिंदी पदावली में एक पद है—

पंढरीनाथ बिठाई बतावो मुझे पंढरीनाथ बिठाई ।...
चंद्रभागा बालवंट पर **कबिरा** धूम चलाई ।
साधु संत की हो गई गरदी भजन मिठाई खूब खाई ।
नामदेव के गुरु शिखावे खेचरी मुद्रा गाई ।
कृष्ण जी की बार-बार गावैं हरिनाम बड़ाई ।।

क्या चंद्रभागा तट पर (जहाँ विट्ठलनाथ का मंदिर है) कबीर भजन-कीर्तन में सम्मिलित हुए थे ? अथवा 'कबीर' शब्द यहाँ श्रेष्ठ के आशय में है : कबिरा धूम = बड़ी धूमधाम । नामदेव युग में भक्तों का सत्संग सामान्य बात थी । कबीर नामदेव की ही भाँति हरिकीर्तन—'हरिनाम बड़ाई' में विश्वास रखते थे । बिट्ठल पांडुरंग के मन्दिर पर आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को यात्राएँ (तीर्थ यात्रायें) होती हैं । जानेवाले यात्री 'वारकरी' कहे जाते हैं । वारकरी भागवत धर्म है । जिस प्रकार हिंदी भाषा उत्तर प्रदेश के संतों की भाषा रही उसी प्रकार ज्ञानेश्वर की भाषा मराठी थी—ज्ञानेश्वरी जिसका असली नाम **'भावार्थ-दीपिका'** है मराठी में है । कबीर-काव्य में **'बीठुला-मीठुला'** की आराध्य रूप में चर्चा है :

मन के मोहन मीठुला वह मन लागौ तोहि रे ।
चरन कँवल मन मानिया और न भावै मोंहि रे ।। 4 गौड़ी

तथा, गोकुल नाइक बीठुला मेरा मन लागो तोहि रे ।
बहुत दिन बिछुरे भये तेरी औसरि आवै मोहि रे ।...

चरन कँवल चित लाइए रामनाम गुन गाइ ।
कहै कबीर संसा नहीं भगति मुकति गति पाइ रे । 5 गौड़ी

कबीर की भक्ति-पद्धति में षट्दर्शन का महत्त्व नहीं—वे कहते हैं—

अरु भूले षटदरसन भाई । पाषंड भेष रहे लपटाई ।। रमैनी

निश्चलदास ने षटदर्शन का अभिप्राय बताया है :

सांख्य-न्याय में श्रम कियो पढ़ि ब्याकरण अशेष ।
पढ़ै ग्रंथ वेदांत के रहे न एकउ शेष ।।

कबीर ने 'वर्णाश्रम षटदर्शनी' की कानि नहीं रखी । जैनियों ने भी अपना षट्दर्शन बनाया, कबीर का विरोध उससे भी है : 'षटदरसन मैं जैन बिगूता ।' रमैनी

'षट करम' का सम्बन्ध ब्राह्मणों-शास्त्रज्ञों-पंडितों से भी है ।

"अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ।" (मनुस्मृति 10·75) ।

कबीर ने षटकरमी पंडितों का विरोध किया है :

पण्डित भूले पढ़ि गुनि वेदा । आपु न पावैं नाना भेदा ।
संझा तरपन अरु षटकर्मा । लागि रहे इनके आसरमा ।
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई । पूछहु जाइ मुकुति किन पाई ।। रमैनी

नामदेव में भी षटदर्शन और षट कर्म की निंदा है—

लोग कहैं लोकाइरे नामा । षटदर्शन के निकट न जाईबो ।
भगति जाइगी जाय रे नामा ।।

तथा, षटक्रम सहित विप्र आचारी । तिनसूं नाहिन कामा ।
जो हरिदास सबन तैं नीचे । तऊ कहेंगे केवल रामा ।।

नामदेव कबीर की भाँति कहते हैं 'चतुरता' छोड़ो, निरपष बनो—

सबै चतुरता बरतै अपनी । ऐसे जन कोई निरपष ह्वै षेलै ।
ताथ मिटै अंतर की तपनी ।।···
सोई साद सोई मुनि ग्यानी । जाकी लाग रही ल्यौ रसनी ।।

कबीर-काव्य से कबीर के परिवार का परिचय नहीं प्राप्त होता । 'लोई' लोक के आशय में गोरखनाथ और नामदेव द्वारा भी प्रयुक्त है । कबीर की पत्नी का यह नाम नहीं । एक पंक्ति 'गुरुग्रंथी' में है—

मेरी बहुरिआ का धनीआ नाउ । लै राखिबो रामजनिआ नाउँ ।।33 आसा०

'बहुरिआ' कबीर अपने लिए प्रयोग करते हैं—वे राम की पत्नी हैं, राम के लिए ही उनका शृंगार है, उन्हीं से एक होने के लिए वे आतुर रहते हैं । कबीर का कथ्य है वे एक साधारण नारी हैं पर राम के स्वीकार करने से वे रामजनी (रामजन =रामभक्त) हैं । इस पंक्ति में धनीआ और 'रामजनिआ' से कबीर की पत्नी का आशय नहीं लिया जा सकता है ।

कबीर तिलक लगाते थे ऐसा निम्नसाखी से अर्थ निकाला जाता है—

तत तिलक तिहुँ लोक मैं रामनाम ततसार।
जन कबीर माथे दिया, सोभा अधिक अपार ।।2.3

पर, कबीर का कथ्य है कि रामनाम 'ततसार'—यह जीवन का तिलक (श्रेष्ठ शृंगार) है। कबीर ने इस तत्त्व को 'माथे दिया' अर्थात् इसे स्वीकारा अथवा इस तत्त्व की शरण में वे गये। रामनाम के ग्रहण से कबीर की शोभा बढ़ गयी। गोरखनाथ ने 'उनमनी तिलक सिंदूर' कहा है।

'रामनाम लिखलिया सरीर' (21 गौड़ी) से यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कबीर पूरे शरीर पर रामनाम लिखते थे। कबीर का तन-मन सब राम को समर्पित था—उन्हें भक्ति अथवा 'राम रसाइन' के आगे धंधा रुचिकर नहीं था। जो इन्द्रियाँ ताना-बाना आदि कार्यों में लगती थीं वे अब रामराइ से ओत-प्रोत हैं :

तनना बुनना तज्या कबीर।
राम नाम लिखि लिया सरीर ।।
जब लग भरौं नली का बेह। तब लग टूटै राम सनेह ।। 21 गौड़ी

पर यह स्थिति उनकी माँ को अप्रिय थी—

ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ। ए लरिका क्यूँ जीवै खुदाइ। वही

तत्त्वतः, कबीर प्रेम के पुजारी हैं :

अकथ कहाणी प्रेम की कछू कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई ।। 4 रामकली

कबीर को जब इष्ट से मिलने में बाधा जान पड़ती है तब वे रो उठते हैं :—

माधौ मैं ऐसा अपराधी।
तेरी भगति हेत नही साधी ।।
परनिंदा परधन पर दारा पर अपवादैं सूरा···
काम क्रोध माया मद मत्छर ए संतति हम माहीं।
दया धरम ग्यांन गुरसेवा ए प्रभु सुपिनैं नाहीं ।।
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर भगत वछल भौ हारी।
कहै कबीर धीरमति राखहु सांसति करहु हमारी ।। 37 रामकली

वैष्णव कबीर सच्चे मानव बनने की साधना में जीवन भर जुटे रहे—उनकी साखी-रमैनी, उनके सबद इसकी साक्षी हैं। हरिदास नामदेव-कबीर 'सबन तैं नीचे' नहीं भले ही 'षटक्रम सहित विप्र आचारी' उन्हें बीच मानते-कहते हों।

●

यह कृति मेरी पत्नी की असाध्य बीमारी के समय की है—वे डायबिटीज की पुरानी रोगी थीं—अंततः बाएं अंग का पक्षाघात फिर तो अपंग—घिसन घिसन कर कष्ट से पखाना-पेशाब कर पातीं, कहतीं भगवान चोला बदल दे। ऐसा

वाला कहता बाबू जी दण्ड बदा है, भोग है का करबा। मेरा छोटा भाई श्रीराम जब गाँव मुँगराबादशाहपुर (जौनपुर) से आता कहता—आप को इनकी सेवा लिखी है यही समझें। 23-3-85 को एकाएक उनकी पेशाब रुक गई वे छटपटाने लगीं—मेडिकल कालेज में 3 बजे संध्या दाखिल कराया पता चला लो ब्लड प्रेशर है। उसके लिए दवा चढ़ाई गई पर तीसरे दिन वे कुछ विक्षिप्त सी हो गईं उन्हें केवल अपनी माँ की याद—'ऐसा सतुआ बनातीं कि चुटकी से मार दो तो दीवार में लगि जाइ।' चौबीस घण्टे बाद बोलती बन्द। फिर घर ले आया निराश होकर। 31-3-85 रविवार को 2 बजे दिन वे इस लोक को छोड़ चलीं। मैं जब लिखने बैठता तो कहतीं अब क्या लिख रहे हो मैंने कहा कबीर पर। कहने लगीं 'कबीर-काव्य'—तो पहले ही छप गयी थी। मैंने बताया यह 'वैष्णव कबीर' नयी रचना है। कभी मेरी कृतियों को लौट पौट कर देखतीं—प्रूफ आने पर उत्सुकता से पढ़तीं। मरने से पन्द्रह दिन पूर्व से मुझे कहीं भी जाने से टोकतीं कितनी देर में आओगे—तुम्हारा क्या भरोसा! कह जाओगे 10 बजे के लिए, आओगे 12 बजे। एक बार आँखों में आँसू भरकर कहने लगीं तुम्हारे रहने से धीरज रहता है···। मेरे नेत्र भी गीले हो गए तब से प्रयत्न करता कि कहीं भी जाऊँ तो शीघ्र लौटूं। उनकी असहाय अवस्था तो दयनीय थी ही—छोटा लड़का आनंद साथ ही है पर उसे माँ की चिंता नहीं—उसे मिरगी का कष्ट है कहता है सब माँ-बाप की देन है, मेरी जिंदगी बरबाद कर दी। वहू को बच्चा नहीं—दोनों ऊपर के हिस्से में अलग से रहते; पर अब बहू नीचे ही भोजन बनाती है और हम सब मिलजुल कर रह रहे हैं। उनका जाना अच्छा ही रहा। मेरी सबसे बड़ी लड़की श्रीमती सरोजिनी और सबसे छोटी श्रीमती मीरा उनकी बेहोशी में आ गई थीं पर बड़ा लड़का सत्य प्रकाश सपरिवार दाह—संस्कार के बाद पहुँचा। मेरे छोटे दामाद रमेशचन्द्र गुप्त ने ही गंगातट पर सब कुछ व्यवस्था की। मेरी लक्ष्मी मुझसे छिन गयी। वे बड़ी जीवट की थीं। 'लक्ष्मी निवास' उनका ही बनवाया है। वे चली गईं पर मुझे बना गईं—वे कर्मठ थीं। अपनी जवानी में पाँच कथरी बहुत बारीक सिलाई की तैयार की थीं—एक-एक मिनट काम में बीतता उनका। मेरे लिए कहतीं तुम्हारा आलस तुम्हें खा जायगा, आज का काम कल, कल का परसों, बस वादा—टालते रहो हमें क्या! चली गईं पर ज्ञान दे गईं।

75वाँ वसंत-शरद
20-1-1968
जन्म : शनिवार, माघ सुदी 1,
संवत् 1968 वि० (20-1-1912 ई०)

हरिहर प्रसाद गुप्त
लक्ष्मी-निवास
147 त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद

वैष्णव कबीर—

उद्धरण के लिए कृपया देखें—

(1) कबीर-ग्रन्थावली, डॉ० माताप्रसाद गुप्त ।

(2) सन्त नामदेव, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार ।

(3) गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य, डॉ० कमल सिंह

१. रहस्यवाद : अपरोक्षानुभूति

अव्यक्त गूढ़ है—अप्रकट है। उसका अनुभव ही संभव है। दुनिया के सभी धर्मों में मिस्टिक हुए हैं जो ईश्वरानुभूति के आनन्द की चर्चा करते हैं। रहस्यवाद विश्वास (फेथ)-श्रद्धा का विषय है, तर्क का नहीं ! मनीषियों ने सत् को त्रिगुणातीत-इन्द्रियातीत कहा है। इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे, तर्क से परे जो है वही सत् है। तर्क संसार के कर्मों से सम्बन्धित है। कर्म का सम्बन्ध इन्द्रियों से, मन से है। जहाँ इन्द्रियाँ हैं वहाँ आसक्ति है और आसक्ति दुःख-सुख का कारण है। इस द्वन्द्व से परे जाने के लिए मन को स्थिर करके भक्त-योगी अन्तर्मुखी होता है और एकांत में उस शक्ति-ब्रह्म का अनुभव करता है। अनुभवी संतों का कहना है कि वृत्तियों के विराम पा जाने पर भीतर प्रकाश-ज्योति का अनुभव होता है और वह प्रकाश आनन्द का मूल है। वेदांत मानता है कि सब के भीतर प्रकाश और आनन्द की धारा बहती है केवल उससे योगयुक्त होने की बात है।

भक्त भगवान का सर्वत्र अनुभव करता है—व्यक्त उसी का प्रसार है। भक्त प्रत्येक कर्म उसे ही समर्पित करता है क्योंकि उसके सिवा कहीं कुछ नहीं—वही सब में और सब उसमें। इसलिए तत्त्वतः योग-भक्ति में अंतर नहीं, केवल साधना के भिन्न रूप हैं। उपनिषद्-गीता-श्रीमद्भागवत सभी में योग-भक्ति-समर्पण की समन्वित चर्चा है—ये सभी उपासना के अंग हैं। सभी पद्धतियों में मन को एकाग्र करने की बात है, चाहे प्राणायाम से, चाहे नाम स्मरण-कीर्तन अथवा गुण-श्रवण से। प्रत्येक कार्य राम का समझकर करें, न सक्ति होगी और न चित्त विक्षेप। भय-संशय-भ्रम भाग जायँगे। मृत्यु-भय को भगाने के लिए भागवत-प्रेम विकसित करनी अनिवार्य है। किसी भाव को उससे प्रबल भाव ही दूर कर सकता है।

मेरे गुरु प्रो० आर० डी० रानाडे, जिन्होंने मुझे 1935 में बी० ए०, (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी) में दर्शनशास्त्र पढ़ाया था, स्वयं महान् मिस्टिक थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र' (1933) की भूमिका में लिखा है—

Mysticism denotes that attitude of mind which involves a direct, immediate, first-hand, intuitive apprehension of God. When Mysticism is understood in this sense, there is no reason why it should be taken to signify any occult or mysterious phenomena as is occasionally done—

Mysticism implies silent enjoyment of God...

The ineffable character of mystical experience is closely linked with its intuitional character.....

Mysticism necessarily makes place for Emotions in a truly Mystical life......Thus it seems that intelligence, will and feeling are all necessary in the case of Mystical endeavour : only Intuition must back them all."

अतः रहस्यवाद, अपरोक्षानुभूति अथवा प्रत्यक्षानुभूति है। इस प्रक्रिया में मनोभाव, इच्छाशक्ति और धी तीनों सहायक हैं। वस्तुतः इनटुइशन (प्रत्यक्षाव-बोध) की व्याख्या संभव नहीं है, उसे संत और भक्त ही जान सकता है।

मिस्टिसिज्म के मर्म को न समझने के कारण रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की अवहेलना की है। उनकी दृष्टि में कबीर का बल 'परोक्ष' (अव्यक्त) पर है और जायसी का प्रत्यक्ष (व्यक्त) पर। उन्हें जायसी का रहस्यवाद सार्थक लगता है। पर उपनिषद् परोक्ष-अव्यक्त-निराकार के ही अनुभव की बात करते हैं और उनका रहस्यवाद संसार के समस्त अध्यात्मपरक साहित्य में अप्रतिम है। रहस्यवाद श्रद्धा का विषय है—तर्क-विवरण-व्याख्या का नहीं। श्रद्धा परोक्ष को अपरोक्ष बनाने के लिए अपेक्षित है। श्रद्धा इनटुइशन-इलहाम, धार्मिक विश्वास का मूल है। वेद सहजज्ञान (रेवेलेशन) हैं। बाह्य ज्ञान सहजावबोध के विपरीत है।

कबीर के मिस्टिसिज्म को समझने के लिए ज्ञानदेव-नामदेव-एकनाथ-तुकाराम-रामदास भक्तों की पूरी परम्परा समझनी होगी। प्रो० रानाडे अपने उक्त ग्रन्थ में कहते हैं :—

"Jnanesvara as the type of an intellectual mystic Namdeva as the herald of democratic mysticism, Ekanath as a typical example of the synthesis of world and spiritual life, Tukaram as representing personal mysticism and Ramdas as the type of an active saint."

कबीर में उक्त सभी संतों के अध्यात्म का समन्वय है। कबीर-काव्य में ज्ञान-योग-भक्ति-कर्म सभी अंग हैं। वे नामदेव की भाँति भक्ति का द्वार सबके लिए खुला रखते हैं। नामदेव और कबीर समकालीन थे। संभव है दोनों मिले भी हों। इन संतों ने शास्त्र की चिंता न कर हर ऊँच-नीच को प्रेरित किया, भगवद्-भक्ति—हरि-सुमिरन के लिए। इनके अनुसार काम-क्रोध-ईर्ष्या-लोभ-मोह-अभिमान-अहंकार, भगति से ही दूर किए जा सकते हैं ज्ञान से नहीं। भक्त सर्वत्र भगवान को देखता है और समदृष्टि से व्यवहार करता है।

भारतीय भक्ति-धारा भारतीय नवजागरण से संबंधित है। यह जनतांत्रिक है। इसका संबंध वेदांत अथवा उपनिषद् की विचारधारा से है। वेदांती वही है जो सब में उस ब्रह्म का दर्शन करे और अपने भीतर उस परम प्रकाश का अनुभव करे। जीव-ब्रह्म की एकता वेदांत और भक्ति दोनों में है। इस एकता की साधना ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। भक्ति-धारा में कुम्हार, दर्जी, नाई, कोरी सभी को

आत्म-साक्षात्कार का अवसर मिला। जनभाषा को भी इससे बढ़ावा मिला क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति अपनी भाषा में ही धर्म के मर्म को समझ सकता था संस्कृत में नहीं। वस्तुतः संत समुदाय ने नवजागरण के लिए राष्ट्रीय भाषा को विकसित किया—हिन्दी-गुजराती-मराठी-उड़िया-मैथिली के भेद मिट से गए।

शुक्लजी ने भक्ति-आंदोलन का कारण मुसलमान शासकों का दमन बताया है पर पूरे भारत में, दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूरब तक, भक्ति-धारा बह चली थी; इसका विकास मुसलमानों के आतंक से नहीं हुआ था। भक्ति निराश-असहाय जनता की देन नहीं है जैसा शुक्ल जी मानते हैं "पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।" बात उलटी है भक्ति की धारा भारतीय जनता की सच्च-रित्रता-पवित्रता और मनोबल का प्रमाण है। भारतीय जनतंत्र की शुरूआत भक्ति-धारा से ही होती है। कबीर मोमिन—मुसलमान जुलाहे थे। मुसलमान शासकों के दमन से उनकी भक्ति का मेल नहीं ही बैठ सकता है। कबीर 'पौरुष से हताश जाति' से संबंधित न थे। कबीर सबको ब्रह्म-सत्य का अनुभव कराना चाहते थे।

ग्राम्सी ने यूरोप के रहस्यवादी संतों का विश्लेषण करते हुए 'प्रिजन नोट-बुक' में बतलाया है कि रहस्यवादी संतों की रहस्यवादी वानियाँ वस्तुतः क्रांतिकारी भूमिका अदा करती हैं—द्रष्टव्य, 'साक्षात्कार', रामचन्द्र शुक्ल अंक, पृष्ठ 176—मध्य प्रदेश साहित्य परिषद्, उद्धरण डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह के भाषण से।

कबीर का रहस्यवाद क्रान्तिकारी था। जनता तड़प रही थी सामाजिक आध्यात्मिक आजादी के लिए संतों ने उनका प्रतिनिधित्व किया। ये संत मानवता-समता के सच्चे अग्रदूत हैं। शुक्ल जी की दृष्टि इस ऐतिहासिक-सामाजिक-धार्मिक विकास के मूल को न पकड़ सकी।

कबीर के क्रांतिकारी होने के कारण, मर्यादा की लीक से हटकर चलने के कारण उच्चवर्ग रुष्ट हुआ और काजी द्वारा कबीर को जलमग्न किए जाने तथा हाथी से कुचलवाए जाने की बात, दादू पंथियों में, कही जाती है। (द्रष्टव्य, **कबीर ग्रंथावली** डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका—जीवन वृत्त—1969)।
भक्ति आन्दोलन के संबंध में प्रोफेसर रानाडे का निष्कर्ष है :—

It was a 'practical devotional mysticism' more of a way of life than mere philosophic speculation It was also a mysticism which engrossed itself in the practical upliftment of humanity, irrespective of any philosophical questionings and with even a strong bias against philosophical endeavour to reach the Absolute.

Naturally, it was not reserved for a selected few, as in the Upnisadic period, but was democratised by its savants who came from the various walks of life

अतः भारतीय रहस्यवादी संत, समाज से जुटे थे। नैतिकता-शुद्धता और लोकहित पर उनकी विशेष आस्था थी। भगवान का सतत नाम स्मरण, आत्म-साक्षात्कार और जीवन की पवित्रता के लिए अमोघ माना गया। सभी संतों का दर्शन और जीवन एक सा ही है। संत सच्चे लोक-मंगलकारी थे—लोक हित उनका ध्येय था। वे स्वयं मुक्त होकर समाज को मुक्त देखना चाहते थे।

पर, शुक्ल जी कबीर को 'लोकधर्मी' नहीं मानते क्योंकि कबीर ने, अन्य संतों की भांति, लोक में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था को तोड़ा, कर्मकाण्ड का विरोध किया और बिना किसी भेद के ईश्वर का द्वार सबके लिए सुलभ किया।

कबीर का जो दर्शन था वही उनका जीवन था। मैं समझता हूँ कि कबीर तुलसी से अधिक समाज से जुटे थे। सम्यक् आचरण पर उनका बल है। वे बार-बार, भीतरी निर्मलता की बात कहते हैं। तुलसी कबीर दोनों ही वैष्णव थे—भागवत थे। दोनों ही अव्यक्त और व्यक्त को मानने वाले थे। व्यक्त के मूल में अव्यक्त नहीं है ऐसा कौन आस्तिकवादी नकार सकता है? सूर भी वैष्णव थे। तीनों महाकवि परमभक्त और अध्यात्मवादी थे। इनके आदर्श राम-गोविन्द थे। इनके काव्यों में इनका गुणगान ही है। सूर ने भी, कबीर की भाँति, नामदेव को आदर्श रूप में स्वीकारा है। सुक-सनकादि, नारद इन सभी के मार्ग दर्शक हैं। कबीर में ज्ञानदेव का ज्ञान और नामदेव की प्रजातांत्रिक भक्ति का समन्वय है। कबीर ज्ञानीयोगी-भक्त सब थे। वे गृहस्थ थे। संतों के दास थे, वे योग क्षेत्र में गोरखनाथ से प्रभावित थे। कबीर का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे सच्चे मिस्टिक थे—दिखावे से दूर। वे तीर्थ-व्रत-पूजापाठ के कायल न थे—उनकी मान्यता थी कि हृदय शुद्धि बिना आतमावबोध नहीं।

———

कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्यं च।
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम्॥

पाप अथवा अशुभकर्म मन से ही उपजते हैं—फिर वाणी से ये प्रकट होते हैं और शरीर द्वारा कार्यान्वित होते हैं। अतः मन-वाणी-शरीर पर संयम रखें।

—रामायण

2. वैष्णव कबीर

कबीर क्रांतिकारी रहस्यवादी थे। लोकहित की उनको चिन्ता थी। वे लोक-भाविन् थे। लोग दोषों-दुर्गुणों से दूर कैसे रहें इसके लिए वे आध्यात्मिक क्रांति चाहते थे। लोक-संग्रह अर्थात् लोक-कल्याण। समाज का हित समता में था—'समसरि' में था, ऊँच-नीच का भेद मिटने में था, शास्त्र की जगह आचरण को महत्त्व मिलने में था, वर्ण-जाति की जगह हृदय की निर्मलता को प्रमुखता देने में था। कबीर उस 'लोक-मर्यादा' के विरोधी थे जो वर्णाश्रम पर आधारित थी—जिसमें सबको भगवत् भक्ति की छूट नहीं थी। ऐसी मर्यादा जो समता-अभेद की विरोधी हो त्याज्य है। ब्राह्मणों-पंडितों ने धर्म पर अपना अधिकार कर रखा था—शूद्रों-स्त्रियों-अपढ़ों को वर्जित किया गया था परमपद पाने के लिए। गीता के अनुसार सारी सृष्टि में भगवान व्याप्त है और सब प्राणी समान हैं पर ब्राह्मण-पंडित आचरण में इसके विपरीत थे। कबीर इनके विरोध में खड़े हुए ज्ञानदेव-नामदेव की पंक्ति में। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द ने भक्ति के लिए जाति का बन्धन तोड़ा। रामानन्द के राम सबके लिए समान रूप से सुलभ थे। राम की दृष्टि में न कोई ऊँचा और न कोई नीचा—सोना-लोहा बराबर, अंबरीष-अजामिल बराबर। भागवत धर्म में हृदय की पवित्रता मुख्य है—कोई भी राम सुमिरण कर, गुरु की बात मानकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कबीर कोरीकमीन इसी धर्म के अनुयायी थे।

इतिहासकार शुक्ल जी ने कबीर को मुसलमान माना है। उनके अनुसार कबीर मुसलमानी जोश के साथ बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्ति पूजा का खडन करते थे। पर कबीर के राम वही हैं जो सूर-तुलसी के हैं। कबीर 'हरिगुण' सूर-तुलसी की ही तरह ही गाते हैं। कबीर ने विष्णु-मुकुन्द-राम-गोविन्द सभी का यश गाया है। कबीर के इष्ट भक्त अंबरीष की रक्षा करनेवाले भगवान् हैं। कबीर के आदर्श नारद हैं। कबीर ने भागवत कथा कहनेवाले शुक को सर्वोत्तम भागवत माना है। कबीर के राम-कृष्ण वही हैं जो नामदेव के। नाभादास ने भक्तमाल में कबीर को रामानन्दी वैष्णव बताया है। नाभादास ने यह भी कहा है कि कबीर निष्कपट जीवन व्यतीत करते थे। रामानन्द के शिष्य कबीर वैष्णव ही थे। क्या कबीर हिन्दू कोरी थे—मुसलमान जुलाहा नहीं? जुलाहे का व्यवसाय था। हिन्दू कोरी अपने को जुलाहा कह सकता है पर मुसलमान जुलाहा अपने को कोरीकमीन नहीं कहेगा।। कबीर ने अपने को मुसलमान नहीं बताया है—कोरी कहा है। व्यवसायिक दृष्टि से कोरी-जुलाहा एक हैं। कबीर ने जुलाहे के 'धीर' की बार-बार

प्रशंसा की है और ताने-बाने के साथ अपने ध्यान को जोड़ा है। अतः, कबीर कोरी वैष्णव थे।

वैष्णव का धर्म है सेवा, विनम्रता, समता, तृष्णा-अभिमान रहित होना, सहिष्णुता, हरिभगत का दासानुदास होना, हरि सुमिरण करना, संसार में आसक्त न होना। कबीर-काव्य में ऐसे ही वैष्णवों की महिमा है, आचरणविहीन भक्त वैष्णव की नहीं। कबीर ने दम्भी-पाखंडी, अनीश्वरवादी की निन्दा की है। सभी भक्त वैष्णव थे। इस दृष्टि से नामदेव-कबीर-सूर—तुलसी सभी समान हैं। कबीर का विरोध उन मूर्तिपूजकों से है जिनका आचरण वैष्णव सा नहीं है। कबीर जब हरि गुणगान करते हैं तब अवतारवाद को वे कैसे इन्कार कर सकते हैं? भभूति लगाकर लोगों को गुमराह करनेवालों को वे फटकारते हैं। इसीलिए कबीर क्रांतिकारी हैं। शुक्ल जी ने कबीर को 'लोक धर्म'-'लोक मर्यादा' का विरोधी कैसे माना? हाँ, क्रांतिकारी मर्यादा तोड़ता है—अंधविश्वास-रूढ़ि के विरोध में खड़ा होता है। वह सत्य का प्रचारक होता है। कबीर ऐसे ही सत्याग्रही थे।

कबीर युग-पुरुष थे। युग-पुरुष सीमा लांघकर आगे बढ़ता है और समाज को अंधकार से, दूषित परम्परा से मुक्त कर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। ज्ञानदेव, चोखामेला, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, तिलक, रवीन्द्रनाथ, अरविन्द-गाँधी सभी ने प्रगति के लिए अनैतिकता के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। कबीर-काव्य समाजपरक है रामचरित मानस की भाँति। रहस्यवादी किसी भी देश का हो, किसी भी जाति का हो वह जनहित को सर्वोपरि मानता है। रहस्यवादी (मिस्टिक) किसी में भेद नहीं करता है। कबीर सच्चे वैष्णव रहस्यवादी भक्त थे।

क्षमा यस्मिन् दमस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम॥

मैं उसको छोड़कर किसका सहारा लूँ जो क्षमावान् है, जिसने इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया है, जिसमें अनासक्ति है, तथा जो सत्य, कर्त्तव्य-पालन और कृतज्ञता का प्रतीक है।

—रामायण

३. भक्ति की कसौटी—लोक-जीवन

कबीर परम वैष्णव थे—उनके दर्शन और आचरण में एकता थी। इसी से वे कबीर और रामदास कहलाये। कबीर का तत्त्वज्ञान सम्यक् आचरण से संबंधित है और आचरण सम्यक् विचार से। समाज में हम कैसे जिएँ, और समाज के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या हो यह कबीर वाङ्मय से सीखना होगा। **कबीर समाज सुधारक नहीं समाज को आत्मज्ञान देकर उसको ऊँचा उठाने के लिए वे प्रयत्नशील थे।** उनका सुधार आत्मसुधार था इसलिए उन्हें समाज सुधारक न कहना चाहिए। सामाजिक समस्याओं के हल करने की ओर उनका ध्यान था पर वे मानव के बुनियादी मूल्यों की प्रतिष्ठा चाहते थे। वे वैष्णव उसी को मानते जो हृदय-बुद्धि के लिए भक्ति का सहारा ले। उनके अनुसार राम-भक्ति ही एकमात्र उपाय है जीवन में संतुलन और समन्वय का। सहिष्णुता की आवश्यकता है जीवन-व्यवहार में और सहिष्णुता-सहनशीलता तभी संभव है जब दूसरे को अपना माने। आत्मीयता की भावना ही रोष-क्रोध-घृणा-वैमनस्य को दूर कर सकती है। हम सामान्यतया जरा-जरा सी बात पर उखड़ जाते हैं, रुष्ट हो जाते हैं, मन में घृणा-भाव पाल लेते हैं और दूसरे के दृष्टिकोण अथवा उसकी मानसिक स्थिति को समझने की कोशिश नहीं करते। यह असहिष्णुता का प्रभाव है। इस प्रभाव से हम अप्रसन्नता पाल लेते हैं और दूसरों को भी दुःखी करते हैं। कबीर इन दुर्बलताओं से बचने का एक ही उपाय मानते हैं भगवद्भक्ति—सर्वत्र उस राम की अनुभूति—जिससे समानता का दर्शन विकसित हो सके। कबीर के दर्शन की जिन समीक्षकों ने विवेचना की है वे माया-जीव-ईश्वर पर ही विचार करते रहे; वस्तुतः, दर्शन का संबंध जीवन से जुटना चाहिए।

कोई भी दर्शन जीवन से कटकर नहीं समझा जा सकता और न समझना चाहिए। दर्शन जीवन का पूरक है। दर्शन हमारे मानसिक भावों-शारीरिक अनुभावों को उचित दिशा देता है। दर्शन हमें क्रोध-लोभ-मोह-मत्सर-ईर्ष्या विकारी भावों से दूर रखने में मदद करता है। जो तत्त्वदर्शी है, जिसने भगवान को सर्वत्र देखने का अभ्यास कर लिया है वह कंचन-लोहा को, कष्ट-सुख को, नीच-ऊँच को 'समसरि' देखता है। वह न भगवान् की चापलूसी करता है और न असहाय की उपेक्षा। वह किसी के ऐश्वर्य से आकृष्ट नहीं होता। और न वह किसी के आतंक से भयभीत होता है। वह निर्भय होता है भगवद्भक्ति के कारण। वह मानता है कि सत्य एक ही है। उसके अतिरिक्त सब नश्वर-सामर्थ्यहीन। सत्य से भय नहीं। सत्य का अनुसरण करने से असत्यपरक भाव विक्षिप्त नहीं कर सकते।

कबीर मानते हैं सामाजिक समानता, बिना अध्यात्म की भूमिका के संभव ही नहीं—व्यक्ति उदार-परोपकारी-निःस्वार्थी बनेगा तभी समानता का उदय होगा। और मानवीय गुण मनुष्य के भीतरी जगत् से संबंधित हैं। अन्तर्जगत् परिष्कृत करना होगा और एतदर्थ हृदय में भगवान के प्रकाश का दर्शन करना होगा। कबीर अपनी भावनाओं को निर्मल बनाकर हिंसक-विनाशक मनोवृत्तियों से मुक्त हो सके—

जब मैं आतमतत बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं काम क्रोध गहि डारा।।

अपने आत्मतत्त्व के रहस्य का वे अगली पंक्ति में स्पष्टीकरण करते है :

ब्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै को पंडित को जोगी।
राजा रंक कवन सूं कहिये कवन बैद को रोगी।।
इनमें आप आप सबहिन में आप आप सूं खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भांड़े रूप धरे धरि मेले।। 33 रामकली।।

कबीर का व्यक्त जगत् उसी परम सत्य में समाया है। यही उपनिषदों का रहस्या-वाद है। कबीर का 'मिस्टिसिज्म' इसी अनुभव को पुष्ट करता है। इस अनुभव के बाद भेद मिट जाता है। और सर्वत्र वही ब्रह्म दिखाई पड़ता है। भक्त समदर्शी बन जाता है। वह सृष्टि को भगवान की लीला मानता है और सर्वगुणों के अधिष्ठाता श्री रामकृष्ण की लीला का गुणगान करता है—वह निरंजन के प्रति श्रद्धा रखते हुए अंजन-व्यापक को उसकी माया समझकर उससे भागता नहीं प्रत्युत् उसमें रस लेता है। कबीर के निरगुण-सगुण में समन्वय है :

सोचि बिचार सबै जग देखा निरगुण कोई न बतावै।
कहै कबीर गुणी अरु पंडित मिलि लीला जस गावै।। 33 रामकली

कबीर लीला-जस गाते हैं। वे परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों के भक्त हैं। ज्ञानी ऊँच-नीच के प्रति समदृष्टि रखता है। वह माया-आसक्ति-लोभ-तृष्णा-अज्ञान में फँसकर पथ-भ्रष्ट नहीं होता है। कबीर भक्ति द्वारा माया के पाश से मुक्त हैं—वे समदृष्टि से कबीर कहलाये :

दीपक एक अभंगा तामैं सुर नर पड़ै पतंगा।
ऊँच नीच समसरिया ताथैं जन कबीर निसतरिया।। 32 रामकली

समदृष्टि के लिए वे रामनाम को सतत स्मरण रखते हैं और चेतनता (अवयरनेस) बनाए रखते हैं :

हरि नामैं दिन जाइ रे जाकौ।
सोई दिन लेखै लाइ रे ताकौ।। 32 रामकली

कबीर मानते हैं कि दर्शन और जीवन का सम्यक् समन्वय बड़ी भारी साधना का फल है। भगवान को मानना आसान है पर भगवान बनना कठिन। भगवान का

गुणगान करना सरल है पर उनके गुणों को जीवन में उतारना दुष्कर इसीलिए वे कहते हैं :

तेरा जन एकाध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभविवर्जित हरिपद चीन्है सोई ॥

जन-भक्त-शरणागत वही है जो हरिपद की मर्यादा की रक्षा करे और जीवन को विनाशकारी भावों से मुक्त करे । पंडित होना एक बात है और 'काम क्रोध लोभविवर्जित' होना दूसरी बात । सच्चा भक्त सतत संघर्ष करता है 'हरिपद' के लिए । हरिपद प्राप्त करना अर्थात् साम्य स्थिति में बाधक भावों से मुक्त होना । जो सतत जूझता है बाहर-भीतर सत्य के लिए वही हरिजन है :

राजस तामस सातिग तीन्यूं ये सब तेरी माया ।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हें तिनहिं परमपद पाया ॥
अस्तुति निंदा आसा छांड़ै तजै मान अभिमाना ।
लोहा कंचन समि कर देखै ते मूरति भगवाना ॥

कबीर की कसौटी संसार है—जगत् में जो साम्य स्थिति बनाये रखे वह रामदास है, वही भगवान है, वही संत-साधु है, वही मनुष्य है :

तृष्णा अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा ॥ 31 रामकली

अध्यात्मवादी मानता है कि सम्पत्ति का बँटवारा मात्र समानता नहीं ला सकता । सबकी संदूक मुद्रा से भरी रहे तब भी संतोष नहीं हो सकता । तृष्णा मूल है संचय का और संग्रह शोषण से ही संभव है । अतः विवेक जाग्रत करना होगा प्रत्येक में । व्यक्ति का निर्माण समाज का निर्माण है । व्यक्ति को चाहिए कि वह परस्वारथी बने, रामस्वारथी बने—दूसरों का गला काट कर, उन्हें पीड़ित कर अथवा उनके साथ धोखा कर संग्रह न करे । यह धर्म-बुद्धि तभी संभव है जब थोड़ी उदासीनता हो स्वार्थ के प्रति और तत्परता हो परमार्थ के प्रति ।

पारमार्थिक जीवन की चेतनता बनी रहे इसलिए राम की चेतनता अपेक्षित है । राम प्रतीक हैं सारे मानव गुणों के । राम का सुमिरन मानव-मूल्यों का सुमिरन है । सुमिरन का क्रम टूटने न पावे क्योंकि क्रम टूटा नहीं कि मन पर से अधिकार हटा नहीं । मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि मन-मस्तिष्क को यदि सद्भावों से भरे रखेंगे तो कुभाव नहीं आ सकेंगे । आत्मनिरीक्षण प्रतिक्षण रहे—निरीक्षण (इन-विजिलेशन) में ढिलाई हुई कि नकल शुरू हुई । असत्य को अवसर तभी मिल सकता है जब अंधकार हो । अतः सतत प्रकाश में, शुभ विचारों में, रहने के लिए भक्त परमसत्य को भूलना नहीं चाहता ।

कबीर को 'निरगुनिया' कह कर उनको संसार से काट देना है । कबीर गुणों के उपासक हैं । वे हरिगुण गाते हैं । वे पक्के रामभक्त हैं । भारतीय भक्ति को निर्गुण-सगुण धारा में बाँटकर हम कबीर को निर्गुण धारा का और सूर-तुलसी

को सगुण धारा का भक्त मान लेते हैं। वस्तुतः, कोई भी भक्त अव्यक्त-अंतर्यामी परमेश्वर अथवा ब्रह्म को इन्कार नहीं करता—वह जानता है कि मूल अप्रत्यक्ष रहस्यमय है। अतः परम सत्य की पकड़ के लिए भक्त व्यक्त का सहारा लेता है। बीज और वृक्ष देखने में अलग हैं पर हैं एक। सच्चा अध्यात्मवादी वृक्ष को नकारता नहीं क्योंकि छाया वृक्ष से ही मिलती है। पर वृक्ष की छाया में पड़े-पड़े वह आलसी-अकर्मण्य न हो जाय इसलिए उसको ध्येय भूलना न चाहिए। वृक्ष जहाँ से पोषित होता है उस मूल को खोजना ही रहस्यवाद है। तर्क हमें बीज तक ले जाता है पर बीज के अणु-परमाणु इन आँखों से नहीं देखे जा सकते—हमें सश्रद्ध निराकार का भक्त होना पड़ता है। प्रकट प्रसार है अप्रकट का।

———

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं
पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

यह परमेश्वर शरीर के भीतर प्रकाशमय और शुद्ध है, अर्थात् सब के भीतर यह साक्षी है। उसे वही यतिजन देख पाते हैं जिनके दोष नष्ट हो गए हैं।

—मुण्डकोपनिषद्

●

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

जब कोई समझ लेता है कि भूत मात्र सर्वव्यापी परमात्मा ही है तब वह सब वस्तुओं की एकता का अनुभव करता है और शोक-भ्रम का नाश हो जाता है।

—ईशावास्योपनिषद्

●

अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम्।

प्रत्येक का धर्म है कि वह पूरी शक्ति से प्राणियों की रक्षा करे। —रामायण

४. भागवतधर्मी कबीर

हिंदू धर्मावलम्वी पुनर्जन्म में, स्वर्ग में, मोक्ष में, सत्याचरण में, परम सत्य की खोज में, भगवान् की सर्वत्र व्याप्ति में, आत्मा-परमात्मा के ऐक्य में आस्था रखता है। कबीर क्या हिंदू कोरी थे ? कबीर कहते हैं मुसलमान एक खुदा में विश्वास करता है पर हिंदू का ईश्वर घट-घट में समाया है—उसके बिना किसी का अस्तित्व नहीं है :

जोगी गोरख गोरख करै। हिन्दू राम नाम उच्चरै॥
मुसलमान कहै एक खुदाई। कबीरा को स्वामी घटि-घटि रह्यौ समाई॥6 भैरूं

इससे स्पष्ट है कि कबीर गोरखपंथी न थे। उनकी रामनाम पर सुदृढ़ आस्था थी—वे रामदास-हरिजन थे। वे अद्वैतवादी-वेदांती थे। उनका ब्रह्म घट-घट में प्रत्येक शरीर में—निवास करता है अर्थात् जीव और परमत्मा भिन्न मालूम पड़ते हुए भी अभिन्न हैं। श्रीमद्भागवत में उक्त दर्शन को इस प्रकार भगवान द्वारा उद्धव को समझाया गया है :

"जब निरंतर सभी नर-नारियों में मेरी ही भावना की जाती है तब थोड़े ही दिनों में साधक के चित्त से स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अंहकार आदि दोष दूर हो जाते हैं।

उद्धव जी ! जब इस प्रकार से सर्वत्र आत्मबुद्धि—ब्रह्मबुद्धि का अभ्यास किया जाता है तब थोड़े ही दिनों में ज्ञान से सब कुछ ब्रह्मस्वरूप दीखने लगता है। ऐसी दृष्टि हो जाने पर सारे संशय-संदेह अपने आप निवृत्त हो जाते हैं और सब कहीं मेरा साक्षात्कार करके भक्त-ज्ञानी संसारदृष्टि से उपराम पा जाता है।

मेरी प्राप्ति में जितने साधन हैं उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थों में मन-वाणी और शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय।

यही भागवत धर्म है।"

कबीर भागवत थे—उनका अभेदभाव, उनकी समदृष्टि, उनकी व्यक्त और अव्यक्त दोनों में श्रद्धा, उनका मानवमूल्यों के प्रति आदर–ये सभी तथ्य उन्हें सच्चे वैष्णव भागवत प्रमाणित करते हैं।

कबीर की जीवनपद्धति-जीवनदृष्टि से प्रभावित होकर हिंदू-मुसलमान दोनों ही उनके भक्त हुए। किसी ने उन्हें 'कबीर' कहा किसी ने 'रामदास'। सर्वत्र एक ही आत्मानुभूति करने वाला निश्चय ही महान्—कबीर—है। कबीर, 'कबीर'

हम सब माँहि सकल हम मांहीं।
हम थें और दूसरा नाहीं॥
तीन लोक मैं हमारा पसारा। आवागमन सब खेल हमारा॥
षट दरसन कहियत हम भेषा। हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा॥
हमहीं आप कबीर कहावा। हमहीं अपना आप लखावा॥ 8 भैरू

कबीर का जीवन वेदांती है—'**हम सब माँहि सकल हम माहीं**' यह इस्लाम की विचारधारा नहीं है, यह शुद्ध सनातन धर्म का दर्शन है। कबीर की उक्त बानी उनकी अनुभूति की उपज है। '**हम सब माँहि**', '**सकल हम माहीं**'—तथा '**हम थे और दूसरा नाहीं।**' यही ज्ञान भगवान कृष्ण अर्जुन को देते हैं। **भागवत में** यही इस प्रकार है :

मैं सर्वात्मा हूँ और समस्त प्राणियों में तथा अपने हृदय में भी स्थित हूँ :
"**सर्व भूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः।**" 11, 27, 48

'**हमहीं आप कबीर कहावा**' में 'कबीर' ब्रह्म अथवा परमेश्वर का पर्याय है। हिंदुओं के लिए 'राम' और मुसलमानों के लिए 'कबीर' का प्रयोग साभिप्राय है। 'राम' अथवा 'कबीर' बाहर नहीं भीतर है :

ब्रह्मा खोजत जनम गँवायौ। सोइ राम घट भीतर पायौ॥ 10 भैरू

अथवा, **है हजूरि क्या दूरि बतावै। 6 भैरू**

कबीर हृदयनिवासी राम से सम्बद्ध रखने अथवा—'ब्रह्मअग्नि' प्रज्वलित रखने की चेतावनी देते हैं—

काजी सो जो काया बिचारै। अहनिसि ब्रह्म अगनि परजारै॥ 6 भैरू

ब्रह्मअग्नि अथवा ब्रह्मानुभूति तभी बनी रहेगी जब मन को चारों ओर से हटाकर उसे अन्तर्जगत् से जोड़ें :

सो मुल्ला जो मन से लरै। 10 भैरू

मन को वस में करने का एकमात्र साधन है हरि सुमिरन—नाम स्मरण। नाम चिन्तामणि है। तुलसीदास कहते हैं।

'**पायौ नाम चारु चिंतामणि उर कर ते न खसैहौं।**'

कबीरदास भी कहते हैं :

सो धन मेरे हरि का नाउं।
नाउं मेरे खेती नाउं मेरी बारी। भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी।
नाउं मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई। कहैं कबीर जैसे रंक मिठाई॥ 9 भैरू

कबीर राम भक्त हैं, नाम भक्त हैं—'भगति करौं मैं सरन तुम्हारी।' कबीर सनातनधर्मी वैष्णव हैं। वे भगवान की बताई शरणागति में ही कल्याण मानते हैं :

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। गीता

कबीर योगी हैं, निष्काम कर्मयोगी हैं और भगवद्भक्त हैं। योग-कर्म-उपा-

मना तीनों ही अध्यात्म में अपेक्षित हैं क्योंकि जीवन की सफलता के लिए तीनों की अपेक्षा है। शरणागत वही है जिसने अपने को सर्वभावेन समर्पित कर रखा है भगवान के चरणारविंद में।—शरणागत अहंकार नहीं करता, वह अपना कुछ नहीं मानता—जो कुछ है सब उसी को समर्पित है, सब उसी का है। इसीलिए कबीर कहते हैं 'नाउं मेरी खेतो नाउं मेरी वारी।'

कबीर अपने को 'कबीर' इसलिये कहते हैं कि उनका मन राम में रंग गया है। वे ब्रह्म से अद्वैतता प्राप्त कर चुके हैं। भागवत के अनुसार समर्थ, स्वतन्त्र और 'ईश्वर' वह है जिसकी चित्तवृत्ति विषयों में आसक्त न हो :

'गुणेष्वसक्तधीरीशो।' 11, 19, 44

कबीर इसलिए कबीर हैं कि राम से एक हैं :

कहु कबीर छूटी सब आसा। मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा॥ 10 भैरूं

उनका मन प्रेम भगति से सराबोर है—

अब हरि हूँ अपनौं करि लीनौं।
प्रेम-भगति मेरौ मन-भीनौं॥

कबीर हर एक सनातनधर्मी की भाँति मुक्ति को अपना लक्ष्य मानते हैं। और मुक्ति भगवान देते हैं—

बिना निरंजन मुकुति न होई। 12 भैरूं

मुकुति का दार्शनिक अर्थ है विषय-वासना की सक्ति से छुटकारा, सर्वत्र राम की अनुभूति, अथवा घट-घट में राम का दर्शन :

निरंजन सब घटि रह्यौ समाई। 12 भैरूं

उस निरंजन से मन लगाना ही मुक्ति है :

कहै कबीर भरम सब भागा एक निरंजन सूं मन लागा। 13 भैरूं

निरंजन से मन लगने पर ही परमानन्द :

आतमा अनंदी जोगी।
पीवै महारस अमृत भोगी॥

अथवा, **आतमलीन अखंडित रामा कहै कबीर हरि मांहि समानां। 2 आसावरी**

---

५. अविगत का अनुभव

चाहे अव्यक्त की उपासना हो चाहे व्यक्त की दोनों ही स्थितियों में अनुभव का बुनियादी महत्त्व है। अनुभव हृदय द्वारा की गई आन्तरिक अनुभूति है। सत्य का अनुभव इन्द्रियों से परे जाने पर ही संभव है। बाह्य ज्ञान मूल सत्य की खोज की ओर प्रेरित करता है। व्यक्त के बिना अव्यक्त तक पहुँचने की बात ही नहीं उठती। व्यक्त में अव्यक्त की खोज वैसी है जैसी वटवृक्ष-फल के बीज को देखकर उसके मूल के खोजने की सूझ। यहीं पर श्रद्धा की अपेक्षा होती है। जहां तक इन्द्रियों की पहुँच है वहाँ तक बुद्धि का काम है उसके अनन्तर अव्यक्त के अनुभव के लिए श्रद्धा ही सीढ़ी है। इस प्रकार बुद्धि आरम्भ में अनिवार्य है पर गूढ़स्थ सत्य की खोज श्रद्धा का विषय है। श्रद्धा अर्थात् विश्वास (फेथ)। व्यक्त, अव्यक्त के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और अव्यक्त के प्रति प्रगाढ़ अनुराग-अनुरक्ति ही भक्ति है। अतः भक्ति परमज्ञान की भूमिका है। बाह्यज्ञान→भक्ति→विज्ञान यह विकास-क्रम है। भक्ति का फल है **ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान**। यही विज्ञान है। यह अनुभव की वस्तु है। सब भूतों के मूल में जो ब्रह्म है, जो अव्यक्त सत्य है उसका अनुभव ही ज्ञान है; वह न देखने की वस्तु है, न सुनने की और न कहने की। केन उपनिषद् (2.11) में ऋषि का अनुभव है—

"वह मुहँ बंद करके बताया जा सकता है, आँखों से न दिखाई पड़ने पर उसे देखा जा सकता है और समझ न आने पर भी वह ज्ञात होने लगता है।"

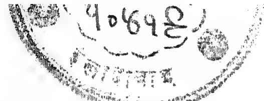
सूरजदास ने व्यक्ताव्यक्तसम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान-आनंद को बड़े सहज ढंग से रखा है—

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।
परमस्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन कहो कित धावै।
सब बिधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन लीला पद गावै॥ 2

अविगत की उपासना क्लेशकर है—ऐसा भगवान ने गीता में स्वयं कहा है—

क्लेशोऽधिकतरतेषां अव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥12,5

अविगत की गति कहते नहीं बनती—मात्र अनुभव की बात है। उस अनुभव तक पहुँचने के लिए 'सगुण लीला' का सहारा लेना अपेक्षित है। इस प्रकार निर्गुण और



सगुणोपासना में तात्त्विक अन्तर नहीं। दोनों का लक्ष्य एक ही है: ब्रह्म-सत्य की सर्वत्र और सब में अनुभूति।

सूरज की जो अव्यक्तानुभूति है वह कबीर के शब्दों में इस प्रकार है—

कबीर मैमंता अविगतरता अकलप आसा जीत।
राम अमलि माता रहै जीवत मुकुति अतीत ।। 6।6

'अविगतरता' भक्त इस जीवन में ही मुक्त है क्योंकि वह आसा-अतीत है—निष्काम है। कबीर सूर की ही तरह मानते हैं कि अव्यक्त को समझना, उससे लौ लगाना साधारण बात नहीं :

अविगत की गति का कहूँ जसकर गाँव न नांव।
गुनबिहून का पेषिए काकर धरिए नांव ।।5 अष्टपदी रमैणी

'सूषिम मारग कौ अंग' में कबीर अविगत की अनुभूति की कठिनाई का बोध कराते हैं—

अविगत पुरिस की गति लखी न जाइ।
दास कबीर अगह राम रहे ल्यौ लाइ ।। 1 एकपदी रमैणी

तथा, **जाइबे के जाइगह नहीं रहिबे कौं नहीं ठौर।**
कहै कबीर संत हौ अबिगत की गति और ।।14,5

तथा, **कबीर चलौं चलौं सब कोइ कहै मोंहि अंदेसा और।**
साहिब सूं परचा नहीं ए जांहिंगे किस ठौर ।।14,4

'अविगत की गति और' अर्थात् अव्यक्त की गति अगम्य है। पर, उसका अनुभव होता है। गुरु कृपा से उस रहस्यमय की अनुभूति की जा सकती है। गुह्य ज्ञान का परिचय वही करा सकता है जो उससे परिचित है :

कबीर मारग अगम है सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहाँ कबीर चलि गया गहि सतगुर की साषि ।।14.9

सतगुरु का माहात्म्य, भागवत धर्म में विशिष्ट है। कबीर अपने को श्रेय नहीं देते अपनी सिद्धि का, श्रेय है सतगुरु को। यही 'अहंकारहीनता' भक्ति का उपक्रम है।

कोई उस परमात्मा को 'कबीर' कहता है कोई 'राम'—

कोई कहै कबीर कोइ कहै रामराई हो ।।

कबीर-राम अभेद हैं। यहाँ यह भी ध्वनि है कि 'कबीर' और 'राम' दोनों ही उस कवि के अभिधान थे—हिंदू उन्हें 'राम' और मुसलमान 'कबीर' (महान्) कहते रहे होंगे। कबीर अद्वैतानुभूति के कारण ही 'रामराइ' भए—

त्रिगुणरहित फल रमि हम रावल तब हमरौ नाउँ रामराई हो। 50 गौड़ी

अनुभवात्मक ज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार की स्थिति को कबीर जुलाहे की प्रक्रिया

तेरा हरि नामैं जुलाहा ।
मेरे राम रमण का लाहा ।।
दस लै सूत्र की पुरिया पूरी चन्द सूर दोइ साखी ।
अनत नाउं गिनि लई मजूरी हिरदा कंवल मैं राखी ।।
सुरित सुमृति दोइ खूँटी कीन्हीं आरम्भ कीया बमैंकी ।
ग्यान तत की नली भराई बुनत आतमा पेषी ।। 26 सोरठि

'बुनत आतमा पेषी' साधना के पूरे स्वरूप का परिचय कराता है—बुनने का आशय है 'अनत नाउं गिनि लई मजूरी ।' उस सत्य के अनंत नाम हैं फिर भी उनमें परस्पर भेद नहीं । जुलाहे का काम है ताने में बाना भरना—वस्त्र ओतप्रोत विधि से ही तैयार होता है । ज्ञानी जुलाहा–बुनकर है । वह अपने जीवन के ताने में हरिनाम का ओत (बाना) डाल-डालकर चादर तैयार करता है । जब जीवन भगवान से ओतप्रोत हो जाता है तब उस परमात्मा का सर्वत्र दर्शन होता है—वह सब में है और सब उसमें हैं । इसी अनुभव को कबीर इस प्रकार कहते हैं—

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब । 50 गौड़ी

तथा, **कबीरा को स्वामी घटि-घटि रह्यौ समाइ ।** 6 भैरू

ज्ञानी हो अथवा भक्त दोनों उस अद्वैत का चराचर में साक्षात्कार करते हैं—व्यक्ति और समष्टि दोनों में एक ही आत्मा का वास दिखाई पड़ता है । यही अभेद-अद्वैत भाव अनुभवात्मक ज्ञान है । यही 'अनभै पद' है ।

बैंठि बेगारि बुराई थाकी अनभै पद परकासा ।
दास कबीर बुनत सचु पाया दुख संसा सबनासा । 26 सोरठि

कबीर ने अपने व्यवसाय में ही—अपनी वृत्ति में ही–सदन कसाई, माली सावंत, नरहरि सोनार की भाँति भगवान का अनुभव किया । तुकाराम ने अपने अभंग में लिखा है—भगवान ने "कबिरा चे मागें (करघा) विणी शेले (वस्त्र) ।"

---

६. हरि-सुमिरन—हरि-गुणगान

सगुणभक्ति में सुमिरण-स्मरण एक आधारभूत अंग है। ज्ञानी-योगी ध्यान से मन पर अंकुश रखता है और भक्त मन को भगवान् के चरणारविंद में लगाकर। वह अपने कानों से हरिगुण सुनता है, नेत्रों से भगवत्स्वरूप देखता है और मन वाणी से इष्ट का सतत सुमिरन करता है। इस सुमिरन से तन्मयता आती है—उसका मन माया-भ्रम से हटकर परमात्मा में रमता है। सुमिरन सीढ़ी है लक्ष्य से जुड़ने की। आस्तिक को ईश्वर-प्राप्ति के लिए हृदय को मलरहित करना पड़ता है, सतत सुमिरन इसमें सहायक है। मन को आधार चाहिए—यदि आप अपने को निर्माणात्मक विचारों से भरे रहेंगे तो विनाशात्मक विचार नहीं धावा बोल सकेंगे। कबीर कहते हैं—

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत।। 2·30

जिह्वा से राम मंत्र को—रामनाम को—जपे और मन को उसी में केन्द्रित करे ताकि एक क्षण के लिए भी वह हरि से विमुख न हो सके। संसार में अनेक प्रलोभन हैं—अनेक छोटे-बड़े आकर्षण हैं जहाँ लगता है कि शांति-सुख है पर संसार छीलर (गंदे जल से भरा गड्ढा) से न प्यास बुझेगी न मन निर्मल होगा, उससे भव-विभव (अभ्युदय-निःश्रेयस) किसी की प्राप्ति न होगी। हरिभक्ति सागर है उसमें गोता लगाने से रत्न हाथ लगेगा और परमसुख मिलेगा। **छीलर** (प्रा० छिल्लर) से टीकाकारों ने देवी-देवता का भाव लिया है पर छीलर सांसारिक विषय-सुख हैं—सागर छोडकर अपवित्र गड्ढे में विहार करना ज्ञान नहीं है।

सुमिरन का प्रयोजन है मन को भगवान् से युक्त करना। मन का दोष, मन का चांचल्य सुमिरन से ही मिटेगा। राम से लौ लगाकर मन को सामान्य सुखों से विमुख करना होगा :

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत-गुण गाइ।
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ।।2·31

संधे संधि मिलाइ :

'संधे' (सं० सन्धि=दरार, छिद्र, चोरों के द्वारा बनाया गया सेंध) पंजाबी में यह इसी आशय में प्रयुक्त होता है। डॉ० वासुदेव सिंह ने 'कबीर वाङ्मय' में 'संधि हि संधि मिलाइ' पाठ दिया है पर 'संधे संधि मिलाइ' कबीर की भाषा के अनुकूल है। कबीर की सीख है कि मन में बैठे हुए चोरों (विनाशकारी भावों) से जो सेंध बन गई है उसे मिटाना होगा। नामस्मरण, हरिगुणगान से 'निगेटिव' को 'पाजिटिव' बनाना होगा।

कबीर जानते हैं कि योग-पद्धति से—ध्यान से, मन पर नियन्त्रण करके मनको स्थिर किया जा सकता है पर है यह मार्ग दुरूह। भक्ति का मार्ग सुगम है। भक्त अपने को भगवान को समर्पित कर उन्हीं के सहारे जीता है। अब बात रही भगवान को प्रसन्न करने की। उन्हें रिझाने के लिए—उनका गुणगान-सुमिरन करना होगा। किसी को रिझाने—अनुकूल बनाने—के लिए हमें उसका बखान करना ही पड़ता है। सगुण परमात्मा मनुष्य रूप में ईश्वर है। उनके गुण-कर्म मनुष्य जैसे ही हैं। उनकी उदारता का लाभ उठाने के लिए हमें उनकी स्तुति करनी चाहिए। जब हम उनके होंगे तो वे हमारे होंगे अतः मन में कोई भी छिद्र न रह जाय जिससे भगवान से प्रेम करने में बाधा पड़े। कबीर की भाषा बड़ी सामर्थ्यपूर्ण है। मणि (जेम) प्रकाशपूर्ण रतन है। मन मणिसदृश है हमारे शरीर में। मन पवित्र ज्योतिमय बनी रहे यही प्रयास है सारे अध्यात्म का। इसलिए हमारा धर्म है मणि को अविकारी बनाए रखना। यदि कहीं कोई संध (संधि= छिद्र) है तो मार्ग-दोष है। उसे भगवद्भक्ति से भगवान की कृपा से दूर करने का उपाय करना चाहिए मणिकार की भाँति। कबीर की भाषा अनगढ़ नहीं, 'गँवार' की बोली-बानी नहीं; वह शब्द-मणि के पारखी की भाषा है।

भागवत में कहा गया है, "यदि देश काल एवं वस्तु से अपरिच्छिन्न भगवान श्री कृष्ण के नाम, लीला-गुण आदि का संकीर्तन किया जाय अथवा उनके प्रभाव-महिमा आदि का श्रवण किया जाय तो वे स्वयं ही हृदय में आ विराजते हैं और श्रमण-कीर्तन करनेवाले पुरुष के सारे दुःख मिटा देते हैं ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अंधकार को और आँधी बादलों को तितर-बितर कर देती है—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविष्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥ 12,12,47

भगवान का गुण गान अमृत है। वह मन को निर्मल कर सारे पाप-ताप को मिटा देता है। भगवान् गुणगान से हृदय में स्वयं आ विराजते हैं।"

वैष्णव कबीर 'सुमिरन कौ अंग' में प्रतिपादित करते हैं कि स्मृति ही सतत चेतनता है।

महर्षि अरविन्द ने लिखा है—परमतत्व की सतत अनुभूति ही सच्ची चेतना है। यही जीव और ईश्वर की एकता है। यह ऐक्य अनुभव से ही संभव है। कबीर इसी चेतना के लिए गुण कीर्तन-स्मरण पर बल दे रहे हैं।

भागवतकार के अनुसार—भगवान के गुण-लीला नाम का श्रवण-कीर्तन उनके श्रीचरणों की अविचल स्मृति प्रदान करता है।

अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः। 12,12,53

स्मृति का मूल है—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धि परमात्मभक्ति ज्ञानंच विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ 10,12,54

भगवान् श्री कृष्ण के चरण कमलों की अविचल स्मृति सारे पाप-ताप और अमंगलों को नष्ट कर देती और परम शांति का विस्तार करती है। अंतःकरण शुद्ध हो जाता है, सतत स्मृति से भक्ति प्राप्त होती है एवं परम वैराग्य से युक्त भगवान् के स्वरूप का ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है। कबीर इसी 'चरन पंकज' की अविस्मृति चाहते हैं—

भजि नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी। 3 मालीगौड़ा

कबीर का उद्घोष है कि राम कहने से ही भला होगा—

कबीर कहता जात है सुनता है सब कोइ।
राम कहे भल होइगा नहिंतर भला न होइ॥ 2,1

ब्रह्मा-महेश जिस 'तत्वसार' को कहते आए हैं वही कबीर दोहराते हैं—

कबीर कहै मैं कथि गया कथि गए ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है सब काहू उपदेस॥ 2,2

ततसार (तत्त्वसार) भागवत (12, 12, 56) का **'आत्मतत्त्व'** है। इस 'आत्मतत्त्व' से कबीर राम हो गए—

मेरा मन सुमिरै राम को मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रहा सीस नवावौं काहि॥ 2,8

भक्ति की परमावस्था है एकात्मभाव। **मेरा मन रामहि ह्वै रहा** यही सतत चेतनता है—यही विकारों से हमें दूर रखती है, यही शांति देती है। यही चेतनता सारी सृष्टि को राममय देखने के लिए प्रेरित करती है :

तूँ तूँ करता तू भया मुझ में रही हूँ।
वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूँ॥ 2,9

रामभक्त कबीर चाहते हैं सभी को राम का अमृतरस मिले और सभी जगत् को उस परमात्मा का रूप समझें—समदृष्टि से व्यवहार करें। उनका उद्-बोधन है—

कबीर निरभै राम जपु जब लगि दीवै बाति।
तेल घटे बाती बुझै सोवैगा दिन राति॥ 2,10

परममंगलमय-कल्याणमय का सतत सुमिरन ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए ताकि उस राम की भाँति ही हम भी जगत् के कल्याण के लिए तत्पर रहें। जब तक **'दीवा बाति'** है—प्रकाश है तब तक निरन्तर दूसरों को प्रकाश देने में ही सार्थकता है। **'दीवा बाति'** (शरीर-आत्मा) का युग्म राम बनने के लिए ही मिला है। राम बनने के लिए राम को एक क्षण के लिए भी न भूलें। निर्भय होकर सन्मार्ग पर चलें। जो निर्भय होगा वही सत्य पर चलेगा, वही सबको समान मान सकेगा।

जाका संग तैं बीछुरा ताही के संग लागि । 2,12

रात दिन राम को पुकारेगा तो राममय हो ही जाओगे और राम सुनेंगे ही—

रात दिवस कै कूकनैं कबहुँक लगै पुकार ॥ 2,16

भागवतकार कहता है—जो वाणी और वचन भगवान् के गुणों से युक्त से हैं, वे ही पावन हैं, वे ही मंगलमय हैं और वे ही सत्य हैं—

तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् । 12,12,48

जिस वचन के द्वारा भगवान् के परम पवित्र यश का गान होता है वही रमणीय, रुचिकर, एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है । उससे अनन्त काल तक महोत्सव की अनुभूति होती है; मनुष्यों का सारा शोक चाहे वह समुद्र के समान लम्बा गहरा क्यों न हो उस वचन के प्रभाव से सदा के लिए सूख जाता है—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥12,12,49

कबीर इसी को दोहराते हैं—

जिहि घटि प्रीति न प्रेमरस पुनि रसना नहिं राम ।
ते नर इस संसार में उपजि खये बे काम ॥ 2,17

आत्मसमर्पण और ईश्वर-गुणगान

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ।
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमंति च ॥

जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं व मुझमें चित्त लगाते हैं, मेरे लिए जीवित रहते हैं, मेरा गुणानुवाद करते हैं और मेरे विषय में परस्पर बोध कराने में आनन्द और परम संतोष प्राप्त करते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकाम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

उन सतत योगयुक्त और प्रीतिपूर्वक भजनेवालों को मैं 'बुद्धियोग' =सम्यक् ज्ञान देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं। गीता 10.9-10

७. जीव-ईश्वर की एकता

भगति-प्रीति सहज आकर्षण से ही संभव है—यदि मन पूरा न लगे, यदि मन इष्ट के साथ रंग न जाय तो सहज आनंद नहीं ही मिल सकता है। इसे ही कबीर **'सहज समाना'** कहते हैं :

कहै कबीर सुख सहजि समाऊँ।

समाना अर्थात् एक हो जाना अथवा इष्ट से एकात्मभाव होना। जब तक द्वैत है, जब तक जरा भी अलगाव या दूरी या आवरण या कपट है तब तक अखंड आनंद अथवा अमृतत्व नहीं। समर्पण, ऐक्य कैसा हो इसका आदर्श भी कबीर ने बता दिया है :

ज्यूं मृग नादै बेध्यौ आइ। प्यंड परे वाको ध्यान न जाइ। 13 कल्याण

मृग नाद में भावविभोर हो उठता है। उसे किसी और की सुधि नहीं रह जाती। यह है चित्त-एकता की अवस्था। **तुकाराम** ने भी यही आदर्श रखा है—

बान न देखे मिरगा रे चित्त मिलाया नाद। 119 अभंग

चित्त मिलाना—लौ लगाना ही आनन्द का मूल है। एक और आदर्श है मछली-पानी का। मछली पानी से बिछुड़कर जीवित नहीं रह सकती—

ज्यूं जल मीन हेत करि जानि। प्राण तजै बिसरे नहीं बानि।

ऐसी ही प्रीति भगवान के साथ। एक क्षण का विरह भी असह्य होना चाहिए। तभी भक्ति-प्रीति सच्ची कही जायगी अन्यथा वह कपट भक्ति है। कबीर कहते हैं :

ऐसे मन लाई ले राम सनां।
कपट भगति कीजै कौन गुनां। 13 कल्याण

कबीर देखते हैं सच्ची भक्ति की जगह कपट-भक्ति का बोलबाला है—अद्वैतभाव की जगह द्वैत। दिखावटी भक्त स्वार्थ की उपासना करता है राम की नहीं। कबीर चाहते हैं कि लोग **'राम सवारथी'** बनें।

भगवान से एक होने का आशय है भगवान हो जाना—भक्त भगवान में अन्तर न होना। **एकनाथ वचनामृत** के संपादक मेरे गुरु प्रो० रानाडे, उक्त भाव को इस प्रकार रखते हैं—

स्वामित्व बिसरे रघुनाथ। दासत्व बिसरे हनुमंत।

यह अनन्य-एकात्म भाव ही भक्ति है। भक्त भगवान कैसे बन जाता है इस एकता के लिए कबीर उदाहरण देते हैं—

भ्रिंगी कीट रहै त्यों लाइं। ह्वै लौ लीन भृंग ह्वै जाइं। 13 कल्याण

कीट भृंग के सम्पर्क में भृंग हो जाता है—यह है व्यक्तित्व का परिवर्तन। **एकनाथ** ने राम और हनुमान के अनन्यभाव को आदर्श माना है :

हनुमान आणि रघुनन्दन। अनन्य भावें पडले आलिंगन।।

अभिन्नता-अद्वैतता-समरसता से मनुष्य ब्रह्म हो जाता है। **भावार्थ रामायण में एकनाथ** कहते हैं।

अहं कोहं सोहं ज्ञान तें समरस गेले बिसरोन।

यह एकता इतनी प्रगाढ़ होती है कि :

स्त्री पुंभाव आत्मामध्ये नाहीं

अद्वैतता परम सुख है : "द्वैत तितुके केवल दुःख। परमसुख अद्वैती"—तत्त्वज्ञान एकनाथ का बल **'जीवेश्वरांची'** ऐक्य पर है। सारे संत-भक्त अद्वैत के ही उपासक हैं। **तुकाराम** एक अभंग में कहते हैं—

तुका म्हणे मना श्री रंगा चा रंग।'

कबीर ऐक्य के लिए एक गुरु बताते हैं—संसार से उदास हो जाओ और राम के सम्मुख हो जाओ, अपने को उलट लो—

आपा जानि उलथि ले आप, तो नहीं ब्यापै तीन्यूं ताप।

तुकाराम कहते हैं कि प्रीति पतंग की भाँति हो—

तुका प्रीत रामसु तेसी मिठी राख। पतंग जाय दीप परै रे।
करै तनकी खाक। 1284 अभंग

अपनी राम-प्रीति के सम्बन्ध में तुका कहते हैं—

लोभी के चित धन बैठे। कामीन चित काम।।
माता के चित पुत बैठे। तुका के मन राम।।

राम में मन रमना ही अभयपद-परमपद-मुक्ति है। कबीर कहते हैं—

कहै कबीर सुख सहजि समाऊँ।
आप न डरौं न और डराऊँ।।

तथा, **पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।**
प्रेम प्रीति गोपाल, भजि नर और कारण जाइ रे।।

यही 'हरिभगति' है—

कहै कबीर हरिभगति वांछू जगत गुरु गोब्यंद रे।

हरिभगति भीतर की चीज है। भीतर की निर्मलता बिना प्रीति-एकता होगी ही नहीं :

अभिअंतर भेदे नहीं, कोई बाहिर न्हावै नीर रे।

लौ उसी से लगती है जिस पर शुद्ध प्रीति हो। गोपियाँ प्रिय कृष्ण का सतत चिन्तन करतीं—फलतः वे तद्रूप हो गईं। किसी से चित्त लगाने के लिए उसके गुण-कर्म का श्रवण-सुमिरन करना चाहिए। भागवत में परीक्षित को उपदेश देते हुए कहा गया है :

" जो, भगवान् श्री कृष्ण के चरणकमलों की सेवा का अधिकार प्राप्त

करना चाहे उसे उनकी लीलाओं का श्रवण करना चाहिए। परीक्षित ! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्ण की, मनोहरिणी लीलाकथाओं का अधिकाधिक श्रवण कीर्तन और चिन्तन करने लगता है तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान् के परम-धाम में पहुँचा देती है।" 10।90।49-50

स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रीति के अद्वयत्व भाव को 'अद्वयतत्त्व समाहित 'चित्त कहा है।

शंकराचार्य ने इस तल्लीनता को इस प्रकार कहा है :

'शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रगटित विभवे ज्योतिरूपे पराख्ये।'

स्वान्त (मन-हृदय अथवा मस्तिष्क) उस ज्योति रूप परम ब्रह्म में घुल-मिलकर जब शांति प्राप्त करता है तब परमानन्द की स्थिति होती है।

भगवान से एक होने का अर्थ है—उनका दर्शन संसार के सभी रूपों में करे। शंकराचार्य ने शंकर की प्रार्थना करते हुए उन्हें 'सकलतनुगतं' कहा है। अर्थात् संसार के समस्त तनु (रूप) उसी को व्यक्त करते हैं। भारतीय वाङ्-मय का यही निचोड़ है। जो अपने में ब्रह्म का निवास मानता है वह दूसरों में भी वही देखता है। यही अध्यात्म दृष्टि कबीर की है। उनका 'अभेद' इसी की पुष्टि करता है। भेद मिट जाने पर ही अहं ब्रह्मास्मि की अनुभूति होती है।

भगवान के साथ सम्बन्ध

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयेत्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

हे देव ! मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूँ। आप से प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ। जिस तरह पिता पुत्र को, सखा सखाको और प्रेमी अपनी प्रिया को सहन करता है वैसे ही आप मुझे सहन करें। गीता 11·44

८. निर्वाण : हरिपद

कहै कबीर विचार करि, वो है पद निरबाण ।
सति लै मन में रखिये, जहाँ न दूजो आन ।।

'पद निरबाण' परमपद, अभयपद, सत्यपद है। निर्वाण अर्थात् शांति। शांति तभी सम्भव है जब सत्य को ही मन में स्थान दिया जाय जहाँ असत् है वहाँ शांति कहाँ ! हम मन में, चाहे पवित्र-रचनात्मक विचारों को स्थान दें अथवा कलुषित-हिंसात्मक-विनाशात्मक विचारों को; 'निगेटिव' दृष्टिकोण की जगह 'पाजिटिव' जीवन-दृष्टि होना ही अभयपद पाना है।

कबीर का निर्वाण (वा = बहना, 'ब्लो') समाप्त होने, बुझने, के आशय में नहीं है। यह मात्र जन्म-मृत्यु से छूट नहीं है बल्कि निर्वाण नैतिक जीवन का एक पद है, एक भाव है, अथवा शांति की एक स्थिति है। निर्वाण तभी सम्भव है है जब मन में सत का आलोक हो। जिसका मन इतना निर्मल हो चुका है कि वहाँ सत के अतिरिक्त, ब्रह्म के अतिरिक्त, राम के अतिरिक्त अथा समता के सिवा किसी और भाव को स्थान नहीं है, वह निर्वाणपद पा चुका है।

अन्यत्र कबीर कहते हैं—

कबीर करता की गति अगम है तू चलि अपणै उनमान ।
धीरे धीरे पाव दै पहुँचैंगो निरवान ।।

निरवाण की प्राप्ति सतत साधना से ही संभव है—सत पकड़ने की वस्तु नहीं अपनाने की चीज है। यह एक जीवन-पथ है। सत्य पर चलने वाले को समचित्तता अपनानी होगी। कबीर यह भी कहते हैं कि सत का मार्ग स्वयं बनाना पड़ता है। यह व्यक्ति के आत्मबल-श्रद्धा-दृढ़ता का विषय है। सत को मन में कैसे रख सकते हैं—उस पर कैसे चल सकते हैं ? इसका उत्तर है :

कुल अभिमान बिचार तजि खोजौ पद निरबान ।
अंकुर बीज नसाइगा तब मिले बिदेही थान ।। लहुड़ी रमैणी अष्टपदी

अभिमानी अथवा अहंभाव रखनेवाला सत्य-आतमा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। अभिमानी शरीर-मन में बँधकर आतमा से विमुख होता है—वह देह भक्त होता है विदेह नहीं। अहंभाव के विनाश पर ही सत्य की प्रीति-प्रतीति होती है। इसीलिए गर्वशून्य होने पर बल है। पर यह स्थिति भगवत्कृपा से ही संभव है :

अतिगुन गरब करैं अधिकाई । अधिकैं गरब न होइ भलाई ।
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी । सो क्यूँ सकइ गरब सहारी ।।—वही

'गरब' रामभक्ति, रामसुमिरन से ही जा सकता है। जिसके हृदय में सत-राम है

उसे निर्वाण मिला रखा है। कबीर जीवन में ही मुक्ति चाहते हैं और उसका उपाय बताते हैं राम की शरण में जाना। राम दास होने पर ही गर्व से छुटकारा :

तेरा जन एक आध है कोई।
कामक्रोध अरु लोभबिर्वाजित हरिपद चीन्है सोई॥

तथा, **राजस तामस सातिग तीन्यू ये सब तेरी माया।**
चौथे पद में जे जन चीन्है तिनहिं परमपद पाया॥

हरिपद, निर्वाण परमपद समानार्थी हैं। रज-तम-सत से परे चौथा पद है—संसार में रहते हुए संसार से परे। अहंभाव राजसी वृत्ति है। तम आलस्य-प्रमाद है। सतोगुण परिशुद्ध है पर है त्रिगुण जगत् से संबन्धित। चौथा पद साम्यावस्था है :

अस्तुति निंद्या आसा छांड़ें तजै मान अभिमाना।
लोहा कंचन समकरि देखें ते मूरति भगवाना॥

जब तक मान-अभिमान-गर्व है तब तक समदृष्टि संभव नहीं—भेदरहित होने पर ही **हरिपद** मिलता है। कबीर का बल अद्वैत भाव पर है—'**लोहा कंचन सम करि देखें।** जिसे समता-समदृष्टि मिल गई वह भगवान हो गया। मनुष्य भगवान ही है यदि कामक्रोध-अभिमान-मोह से मुक्त हो सके :

च्यंतै तो माधौ चिन्तामणि हरिपद रमैं उदासा।
तृष्णा अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा॥ 31 **रामकली**

कबीर का तत्त्वदर्शन है हरिपद प्राप्त करना, हरि में रमना, माधव की ही चिंता करना ताकि विनाशात्मक भाव स्थान न पा सकें। तृष्णा-अभिमान को उस मन में स्थान कहाँ जो हरिभक्ति में रमता है। गीता में है :

युञ्जनेवं सदात्मनं योगी नियतमानसः।
शांति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥ 6, 15

'**युञ्जनेवं सदात्मानं**' अर्थात् सतत चिंतन माधो का; '**नियतमानसः**' का भी यही आशय है। यदि मन कहीं और न भटके केवल राम में रमे—सत में रमे, तो शांति-सुख-निर्वाण निश्चित है :

केऊ केऊ तीरथ व्रत लपटाना। केऊ केऊ केवल राम निज जाना।
अजराअमर एक अस्थाना। ताका मरम काहू बिरलै जाना॥ रमैणी

जो केवल राम को ही अंतिम सत्य मानकर सश्रद्ध उनका चिंतन करता है वही अजर-अमर पद—हरिपद प्राप्त करता है। अतः राम में लौ लगाना निःश्रेयस है :

राम नाम ल्यौ लाइ करि चित्त ह्वै जागि।
कहै कबीर ते ऊबरे जे रहे राम ल्यौ लागि॥ रमैणी

'**ते ऊबरे**' अर्थात् वे ही मुक्त हुए—निर्वाण पद उन्हें ही मिला। '**राम नाम ल्यौ लाइ**' यही **तत्त्वसार** है। सतसंगति इसका साधन है :

सब थे नीकी संतमंडलिया हरि भगतनि को भेरो रे ।
गोब्यंद के गुन बैठे गैहैं खैहैं टूको टेरो रे ।। 5 गौड़ी

कबीर संतमंडली के सत्संग को—राम गुण गाने को—प्राथमिकता देते हैं । मनुष्य यदि अध्यात्म-पथ पर चलना चाहता है तो उसे 'नियतमानसः' होकर सतत जुटा रहना चाहिए उस परिवेश से । कर्म-व्यापार में जितना ही उलझाव बढ़ेगा उतना ही मन भटकेगा । मन की चंचलता पर काबू पाना अनिवार्य है सत्पथिक के लिए ।

कबीर के सत्संग का लक्ष्य है अहंकार का विनाश और भगवान् की अनुभूति । मैं, मेरा अथवा शरीर से आसक्ति ही 'अंकुर बीज' है सारे विकारों—बंधनों का । 'अंकुर बीज' के निर्मूल होने पर हरिपद मिलेगा ही । जिसमें भेद-भाव है, जिसमें समदृष्टि नहीं है, जो सर्वभूतों में भगवान की उपस्थिति नहीं देख पाता है वही बँधा हैं ।

मुण्डकोपनिषद में है—

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।"

उस आत्मा अथवा उस शुभ्र साक्षी परमेश्वर की अनुभूति सत्य-ज्ञान-तप-ब्रह्मचर्य से ही संभव है । जिनके दोष क्षीण हो गये हैं ऐसे यति उसे देखते हैं ।

अनन्त रूप

तस्मादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धामं त्वया ततं विश्वमनन्त रूपं ।।

आप आदि देव हैं । आप पुरातन पुरुष हैं । आप इस विश्व के परम आश्रयस्थान हैं । आप जाननेवाले और आप ही जाननेयोग्य हैं । आप परमधाम हैं । हे अनन्त रूप ! उस जगत् में आप व्याप्त हो रहे हैं । गीता 11·38

६. अव्यक्त और सगुण के भक्त कबीर

कबीर की मुक्ति का आशय है राम में रत होना—राम में मतवाला होना, आशा-पाश से मुक्त होना;

कबीर मैमंता अविगत रहा अकलप आसाजीत।
राम अमलि माता रहै जीवत मुकुति अतीत ।। 6।6

कबीर इसी जीवन में 'मुकुति' चाहते हैं—मुक्ति-छुटकारा काम-क्रोध अभिमान से जो चोर की तरह हमारे भीतर घुसकर हमारी बरबादी के कारण हैं।

अविगत कहीं दूर नहीं—वह आभ्यंतर है। उसी भीतरी राम में रमना मुक्ति है :

अनहद बाजै नीझर झरैं उपजै ब्रह्म गियान।
अविगत अंतरि प्रगटैं लागै परम धियान ।। 5.44

तथा, **कहै कबीर रहु संग साथ। अभिअंतर हरि सूं कहौ बात।**
मन ग्यानि जानि कैं करि विचार। रामरमत भौ तरिबौ पार ।।87 बसंत

'भव तरना' वैतरणी पार करना नहीं हैं और न इस लोक से स्वर्ग को जाना है। 'भव तरना' अज्ञान से उबरना है—ज्ञान के भीतरी राम को पहचानना उससे बात करना। यही प्रत्यक्षानुभूति है। कबीर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

जागे सुक उधव अक्रूर। हणवंत जागे लंगूर।
संकर जागे चरन सेव। कलि जागे नामा जैदेव ।। 10 बसंत

कबीर जिनका नाम गिना रहे हैं ये सभी भक्त हैं योगी-ज्ञानी-वैरागी नहीं। हनुमान के हृदय में राम थे—इसका अनुभव उनको सदा था। यही आत्माराम होना है :

आत्माराम कौ मन विश्राम। कहि कबीर भजि राम नाम। 10 बसंत

आत्माराम का अर्थ है,

'अभिअंतर हरि सूं कहो बात ।।'

आत्मा में लीन होने वाले को क्रोध-अभिमान नहीं सता सकते क्योंकि उसका मन उधर जाता ही नहीं—

ए अभिमान सब मन के काम। ए अभिमान नहीं रहै ठाम। 10 बसंत

शंकर, भागवत के अनुसार, सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं—

"वैष्णवानां यथा शम्भुः" 12।13।16

नाभादासकृत भक्तमाल के अनुसार कबीर 'रामानन्दी वैष्णव' थे।

कबीर-काव्य में वैष्णवों की ही महिमा है :

भजि नारदादि सुकादि बन्दित चरन पंकज भामिनी। मालो गौड़ा

वैष्णव, विष्णु-राम-कृष्ण के चरण की वन्दना करता है उसे ही ,अपना विश्राम-स्थान मानता है—

कहै कबीर दासनि को दास। अब नहीं छाड़ौ चरन निवास। 13 कल्याण

भगवान के चरणारविंद की महिमा में कबीर कहते हैं **'संकर जागे चरन सेव'**। भागवत के अन्त में भगवान् के चरण की महिमा इस प्रकार है :

"सर्वेश्वर ! आप ही हमारे एकमात्र स्वामी एवं सर्वस्व हैं। आप ऐसी कृपा करें कि बार-बार जन्म ग्रहण करते रहने पर भी आप के चरणकमलों में हमारी अविचल भक्ति बनी रहे—

भवे-भवे यथाभक्तिः पादयोस्तव जायते—12।13।22

चरणों की महिमा अन्यत्र इस प्रकार है :

'भगवान के गुण लीला, नाम आदि का श्रवण, कीर्तन उनके श्री चरणकमलों की अविचल स्मृति प्रदान करता है और यह स्मृति ही सारे पाप-ताप और अमंगलों को नष्ट कर देती और परम शांति का विस्तार करती है। 12।12।54

संकीर्तन की महिमा भागवत में इस प्रकार है :

"भगवान सकीर्तन-भजन से हृदय में आ विराजते हैं और उनकी कीर्ति श्रवण करनेवाले के सारे दुःख मिटा देती है—सूर्य अन्धकार को और आँधी बादलों को तितर बितर कर देती है।" 12-12-47

कबीर अपने राम के अंधकारविनाशक बल का अनुभव करते हैं और उसका बार-बार उद्घोष करते हैं। **रामदास** होने से ही **'कबीर'** बने, उन्हीं की शक्ति से उनके विरोधी सांख्य (साखत)=तार्किक, संशयवादी आस्थावान् बने—

जुरा मरण थैं भए धीर। राम कृपा भइ कहै कबीर ।। 9 बसंत।

अथवा, **जब थैं उलटि भया है राम। दुख बिसराया सुख कीया विश्राम।**
बैरी उलटि भये हैं मीता। साखत उलटि सुजन भये चीता।
15 गौड़ी।

भीतरी रास-धारा से दुःख निःशेष हो जाता है और पूर्ण विश्राम मिलता है यही समाधि-सुख है :

'सुख समाधि सुख भया हमारे।'

कबीर समाधि में अपने राम से बात करते हैं—

'अभिअन्तर हरि सूं करौ बात।'

यही उलटि समाना है। यही मछली का खजूर पर चढ़ना है। यही अभयपद है—

जल में सिंघ जु घर करै, मछली चढ़ै खजूर। 5,46

कबीर आत्मसाक्षात्कार को प्रकाश से स्पष्ट करते हैं—

कबीर कवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर।
निसि अन्धियारी मिटि गई जब बाजे अनहद तूर। 5।43

यह ध्यानावस्था, अनुभूति की अवस्था भीतरी, प्रकाश का अनुभव ही मुक्ति है :

कबीर जुलाहा भया पारखी अनभै उतर्‌या पार । 5।47

ब्रह्मज्ञान की इस अवस्था में त्रिताप कहाँ; दुःख सुख में बदल गया :—

दरसन भया दयाल का सूल भई सुख सौड़ि । 5,48

समाधि में विदेह की स्थिति हो जाती है—जन्म-मृत्यु से छुटकारा :

कबीर हरि रस यूं पीया बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुंभार का बहुरि न चढ़ई चाकि ।। 6·1

ऐसी समाधि में रहते-रहते व्यक्ति चेतनता में प्रतिक्षण रहने लगता है यही कलस-घट का पक्का होना है । जब मन वासनाओं की ओर दौड़ना छोड़कर भीतरी सुख की ओर मुड़ता है तब वह रामरस का आनंद पाता है । यही सतत लौ लगाना है :

रैणि दिवस का गम नहीं तहाँ कबीर रहा ल्यौ लाइ । 10·1

कबीर भक्त थे, योगी थे । भक्ति और योग विरोधी नहीं—संत जीवन में दोनों ही मन को स्थिर करने में सहायक हैं । सगुणोपासक भीतर बैठे राम का अनुभव करता है । यही अविगत (अव्यक्त) की भक्ति है । योगी आत्मप्रकाश में लीन होकर समाधिसुख पाता है । यही मुकुति है ।

कर्त्तव्य-कर्म की पूजा

यतः प्रवृत्ति र्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यचर्य सिद्धि विन्दति मानवः ।।

अपने कर्त्तव्य-कर्म को करना ही उसकी पूजा है जिससे सब प्राणियों का आविर्भाव हुआ है । और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है ।

इस प्रकार की पूजा से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है । गीता 18·46

१०. हरिजन वही जो समाज का सुहृद् हो

भागवत धर्म का निचोड़ है सब प्राणियों का हितैषी होना। भारतीय अध्यात्म लोक से संबंधित है। कबीर-काव्य में यही लोक-कल्याण है। शुक्ल जी कबीर-काव्य में 'लोकधर्म' नहीं पाते—लगता है उनका 'लोकधर्म' लोकहित का पर्याय नहीं। उनके शब्द-प्रयोग को उन्हीं की रचनाओं से समझा जा सकता है। कबीर का दर्शन स्पष्ट है—मन में तृष्णा न हो। तृष्णा स्वार्थी को होती है परमार्थी को नहीं। भक्त सत्य बोलता है असत्य बोलकर ठगता नहीं—उसकी दृष्टि भेद पर नहीं, अभेद-समदृष्टि पर आधारित रहती है। ये सब मानवीय गुण की व्यक्ति को 'राम सवारथी' बनाते हैं।

जन को काम क्रोध ब्यापै नहीं त्रिश्ना न जरावे।
प्रफुलित आनन्द में गोब्यंद गुण गावै।
जन कौं परनिंदा भावै नहीं अरु असत न भावै।
काल कलपना मेटिकरि चरन चित राखै।
जन समदृष्टि सीतल सदा दुबिधा नहीं आवै।
कहै कबीर ता दास सूँ मेरा मन भावै॥ 2 बिलावल

कबीर की भक्ति अथवा उनके रहस्यवाद का सीधा संबंध चरित्र-कर्त्तव्यपालन से है। चरित्रहीन व्यक्ति समाज का शोषण करता है। गीता के अनुसार समाज का सच्चा सेवक वही हो सकता है जो—

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। 1848

अर्थात् जो आसक्ति रहित हो, जिसने मन पर अधिकार कर लिया है और जो कामनाओं से मुक्त हो गया है। सच्चा समाजधर्मी ऐसा काम करता है जो आत्मा के लिए श्रेयस्कर—कल्याणकर हो। परमगति तभी मिलती है :

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्। 16·22

जो आचरण पर ध्यान नहीं देता वह 'अपनपौ' आत्मतत्त्व खो देता है :

अति अभिमान लोभ कै घालै चलै अपनपौ खोई। 19 केदारौ

सम्यक् आचरण का अर्थ है मैं 'मेरी' से मुक्ति—

मैं मेरी करि यह तन खायो समुझत नहीं गँवार। 19 केदारौ

सदाचारी भेद नहीं जानता, समता से व्यवहार करता है। समता अर्थात् निरपेक्ष रहनि—आसक्ति रहित जीवन। भगवान् महावीर ने समता की प्राप्ति के लिए ही 'सामायिक' का संदेश दिया है—सामायिक अर्थात् एक निश्चित समय के भीतर रागद्वेष के मुक्त होने का अभ्यास। रागद्वेष से मुक्त होना ही कबीर का 'पख

छाड़ै निरपष रहै। (3·93) है। जो राग-द्वेष से भरा है वह दूसरों को ठगेगा ही। ठगना सबसे बड़ा दुष्कर्म है। समाज के हित में कबीर कहते हैं—

कबीर आप ठगाइए और न ठगिये कोइ।
आप ठग्या सुख ऊपजै और ठग्या दुख होइ। 54·9

सच्चा समाजवाद इसी पर आधारित हो सकता है। भक्त ठगता नहीं, ठगा जाने में सुखी होता है। स्वार्थी ठगता है 'राम सवारथी' ठगाता है—कैसी उदात्त स्थिति है आचरण की। भारतीय भागवत धर्म—वैष्णव धर्म, सनातन-धर्म के मूल में यही पवित्र आचरण है। योग, ध्यान, तप चाहे जो आत्मसाक्षात्कार के लिए करे पर आचरण-कर्त्तव्य पालन को नहीं छोड़ना होगा। हृदय की निर्मलता बिना सम्यक्-शुद्ध व्यवहार के संभव ही नहीं और यदि भीतर स्वच्छता नहीं तो सब ढोंग—सारी साधना बालू की भीत।

भगवान् भागवत धर्म में जनहित की बात को समझाते हुए कहते हैं—

सर्व भूत सुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः॥ 11,7,12

ज्ञान-विज्ञान (ज्ञान और अनुभव) से जो सम्पन्न हो जाता है वह समस्त प्राणियों का हितैषी सुहृद् होता है और उसकी वृत्तियाँ सर्वथा शांत रहती हैं वह समस्त प्रतीयमान विश्व को मेरा ही स्वरूप अथवा अभेदभाव से आत्मस्वरूप देखता है। और फिर वह जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता है।
इस प्रकार परमगति वही प्राप्त करता है जो प्राणिमात्र का सुहृद् हो।

कबीर जागरूक थे। वे समाज और व्यक्ति को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाना चाहते थे। कबीर चाहते थे कि लोग 'आपस्वारथी' न बनें; **'रामसवारथी, भगति सवारथी'**=परमार्थी बनें। कबीर समाजसुधारक मात्र नहीं, विवेकानन्द की भाँति भारतवासियों को आध्यात्मिक चेतना देने के लिए व्याकुल थे। वे व्यस्त थे लोगों को अभिमान-लोभ के पंजे में जकड़ा देखकर। वे हर एक को समझाते पर कौन सुनता! उनका एक पद है:

कहूँ रे जे कहिबे की होइ।
नां को जानैं, नां को मानैं, ताथैं अचिरज मोहि।
अपने अपने रंग के राजा मानत नाहीं कोइ।
अति अभिमान लोभ के घाले चले अपनपौ खोइ। 19 केदारौ

कबीर पाखंडियों—दिखावा करनेवालों के विरोध में खड़े हैं। मन राम में नहीं रंगा तो चोला रँगाने से क्या, मन से अभिमान नहीं गया तो संन्यासी-अवधूत कैसा? आसापाश और कामनों से छुटकारा न मिला तो वन में उदास बने रहने से क्या? मुक्ति तो मन बुद्धि पर, निर्मल विचारों पर, भीतर बैठे राम को पहचानने पर मिलती है। कबीर कहते हैं कोरी-[illegible]

रखे कभी न कभी भगवान का प्रकाश मिलेगा ही। राम का गुण निर्मल है—पावन है। उनका सतत सुमिरन-अनुगमन सबको निर्मल बना देगा। निर्मलता प्राप्त करने के लिए हरि भगतों का संग अपेक्षित है। जो सच्चे साधु हैं उनकी चरण-धूलि भी पावन कर देती है। उनका संग कीजिए और पूरे मन से उमंग के साथ राम के गुणों में रमें—

निर्मल निर्मल राम गुण गावै।
सो भगता मेरे मन भावै॥
जिंहि घट राम रहे भर पूरि ताकि मैं चरनन की धूरि।
जाति जुलाहा मति को धीर हरषि हरषि गुण रमै कबीर। 123 गौड़ी

'जाति जुलाहा' में 'जुलाहा' बुनकर के आशय में है। कबीर कोरी (कौलिक) थे। अन्यत्र भी जुलाहा इसी आशय में है—

मेरे राम की अभैपद नगरी कहै कबीर जुलाहा। 133 गौड़ी

अभयपद 'परमपद' है। परमपद प्राप्त करने के लिए 'आतमराम' को पहचानना होगा और यह अहंकार के समाप्त होने पर ही संभव है। अहंकार भगति में रमने परमात्मा से प्रीति करने से ही जायगा—मूंड मुड़ाने या भस्म लपेटने से कुछ नहीं हाथ लगेगा :

मूंड मुँडाइ फूलि का बैठे काननि पहरि मंजूसा।
बाहरि देह खेह लपटानी भीतर तौ घर मूसा। 133 गौड़ी

तथा, **स्वांग सेत करणी मनि कालो। कहा भयौ गलि माला घाली।**
बिन ही प्रेम कहा भयौ रोयैं। भीतरि मैल बाहरि कहा धोयैं॥
कहा भयौ तिलक गरैं जयमाला।
मरम न जागैं मिलन गोपाला॥ 135 गौड़ी

कबीर मानते हैं जो कपट-पाखंड करेगा उसे वही मिलेगा :

जाइ मरौ हमरौ काकरिहै।
आप करैं आपैं दुख भरिहै॥ 142 गौड़ी

अतः, अभिमान छोड़कर भक्त बनना होगा—

कहै कबीर जिनि गये अभिमान। सो भगता भगवंत समान॥ 136 गौड़ी

अतः, सच्ची साधना—सच्ची प्रीति होनी चाहिए निर्मल बनने के लिए अन्यथा,

का नागैं का बांधे चाम।
जो नहीं चीन्हसि आतमराम॥ 131 गौड़ी

भागवत—एकादश स्कन्ध (18, 40) में उद्धव जी को समझाते हुए भगवान कहते हैं—

"जिसने पाँच इन्द्रियाँ और मन; इन छहों पर विजय नहीं प्राप्त की है, जिसके इन्द्रियरूपी घोडे और बुद्धिरूपी सारथी बिगड़े हुए हैं, और

और न तो वैराग्य वह यदि त्रिदण्डी संन्यासी का वेष धारण कर पेट पालता है तो वह संन्यास-धर्म का सत्यानाश कर रहा है और अपने आप को और हृदय में स्थित मुझे ठगने की चेष्टा करता है।''

कबीर व्याकुल थे समाज को सत्पथ पर लाने के लिए :

मोहि अग्या दई दयाल दया करि काहू कूँ समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हार्‌यौ अब मोहि दोस न लाइ ॥ 19 केदारौ

'मैं कहि कहि हार्‌यौ' में कबीर की भीतरी आकुलता प्रकट है। कबीर अपने अनुभव की बात कर रहे हैं पर उस 'अनुभौ' को समझनेवाले, उस पर विश्वास कर चलनेवाले नहीं हैं। कबीर समाज से सम्बन्धित थे—वे क्रांतिकारी थे। लोग, धर्म के नाम पर, दूसरों के प्रति असहिष्णु थे। कबीर इस स्थिति से दुःखी थे। कबीर आध्यात्मिक थे साथ ही यथार्थवादी। उनकी जीवन-दृष्टि मानव मूल्यों पर थी। कबीर मानते थे कि सारा भेदभाव संकीर्णता की देन है 'अति अभिमान लोभ के घाले'। लोग सचाई का नहीं असत्य का पोषण कर रहे हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही परमतत्व को नहीं समझ पा रहे हैं और 'अपने अपने रंग के राजा' हैं—जाति-धर्म-वर्ण-धन का अहंकार समाज और व्यक्ति को विनाश की ओर ले जा रहा है। कबीर, महाबीर-बुद्ध की श्रेणी के महान् व्यक्ति हैं। महाबीर ने कहा था, अहंकार प्रेम तोड़ता है, स्वामित्व के प्रासाद खड़े करता है। कबीर का विरोध स्वार्थ और अहंकार से ही है।

●

मैत्री समेषु न च मेऽस्ति सदाऽपि नाथ
दीने तथा न करुणा मुदिता च पुण्ये।
पापेऽनुपेक्षणवतो मम मुत्कथं स्यात्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥

हे स्वामी! मैंने कभी मैत्री-व्यवहार नहीं किया अपने लोगों से, मैंने कभी सहानुभूति-दया नहीं दिखाई पीड़ितों के प्रति, मैंने कभी सुख की साँस न ली दूसरों के अभ्युदय पर, मैंने कभी कुकर्मियों की उपेक्षा न की—मैं 'निरपष' नहीं रहा। मेरे स्वामी, कैसे आनंद-लाभ कर सकता हूँ! हे अशरण-शरण! दीनबन्धु! आप ही मेरे रक्षक हैं।

4

११. कबीर के राम

सनातन धर्म का मूल आधार है सत्य की सर्वत्र अनुभूति, सत्य में ही आस्था और सत्य को प्राप्त करने के लिए सत्पथ। असत्य अज्ञान है, संशय है, भेद है, अशान्ति है। सत्य का स्वरूप प्रकाश है और प्रकाश के अनुभव का सुख आनन्द है। जहाँ प्रकाश है वहाँ आनन्द होगा ही अथवा जहाँ आनन्द है वहाँ ज्योति होगी ही। ज्योति और आनन्द दोनों की सतत अनुभूति ही विज्ञान है। आनन्द का सम्बन्ध तर्क से नहीं श्रद्धा-विश्वास से है। तर्क बुद्धि की देन है और अनुभव हृदय की। प्रकाश हृदय-गुहा में है। जो इस परम प्रकाश का अनुभव करता है वही आत्मानन्दी है। उसे संसार के क्षणिक आकर्षण बन्धन नहीं। वह लोभ-मोह से पीड़ित नहीं होता—जीवन का अंधकार पक्ष उसके पास नहीं फटकता। वह सदा प्रकाशपूर्ण-निर्माणात्मक 'पाजिटिव' विचारों से ओतप्रोत रहता है। उसके मन में दुखदायी-विनाशक-संशयात्मक 'निगेटिव' विचार आते ही नहीं। वह जानता है कि सत्य ही 'पाजिटिव' है। सत्य के रूप हैं: उदारता, करुणा, सेवा, त्याग, आनन्द, अक्रोध। वह जानता है कि असत्य अथवा वितथ अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करेंगे पर राम के प्रति अटूट आस्था और रामभक्ति से वह भवसागर से पार जाने में समर्थ होगा।

कबीर सत्पथिक थे। उनकी प्रत्येक पंक्ति प्रकाश-आनन्द से पूर्ण है। मैं कविता उसी को मानता हूँ जो सौंदर्य-प्रकाश-आनन्द से संयुक्त हो। जो कला मनुष्य को आलोक न दे सके वह व्यर्थ है। कला मनुष्य को सँवारने—उसे सुरुचि-पूर्ण बनाने के लिए है। कला को 'पाजिटिव' होना चाहिए 'निगेटिव' नहीं। कला का उद्गम सत्य से है। अतः उसका व्यक्त रूप सत्य-आनन्द के निकट होना चाहिए। जो सौंदर्य विराट की ओर उन्मुख करे, जो कृति उस प्रकाश से युक्त करे, जो बहुजनहिताय हो, जो हृदय-ग्रंथि को खोल सके, जो मानवता के निकट लाने में सहायक हो वही शुभ-सुन्दर-सरस है। कला वही जो व्यक्ति को, समाज को, सत्य रूप को समझने में सहायक हो। जो कला आत्मज्ञान में बाधा उत्पन्न करे वह त्याज्य है। कला यथार्थ-सत्य पर खड़ी होती है और परमार्थ की ओर इंगित करती है। यथार्थ और परमार्थ दोनों जीवन के अंग हैं। यह अन्नमय शरीर यथार्थ पर जीता है पर परमार्थ के लिए कर्त्तव्यरत रहता है।

कबीर की कला यथार्थ से जुटी और परमार्थ से पोषित है। वह असुन्दर को सुन्दर बनाने का प्रयास है। कबीर की भाषा-शैली की कसौटी अलंकार नहीं—शब्दों का कलात्मक प्रयोग नहीं, उसका मापदण्ड उनकी अनुभूति है। वह जिस ईश्वर की प्रत्यक्षानुभूति करते हैं उसी का गुणगान करते हैं और उसी के

आलोक को सब तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। कबीर ने भारतीय परंपरा के उस पक्ष को पूरा-पूरा आत्मसात् किया है जो शुभ-कल्याणमय है—वहाँ भेद नहीं अभेद है।

कबीर 'क्षीणदोष' होने के लिए पाठक को प्रेरित करते हैं। उसे सचेत करते हैं स्वार्थ से, लोभ से, आसक्ति से मुक्त होने के लिए। वे बार-बार समझाते हैं कि संग-आसक्ति दुःख का मूल है। असंग-अनासक्ति ही जीवन का निर्माणात्मक तत्व है। आगे बढ़ने की इच्छा में दूसरों का शोषण न करो। जनता में पूज्य बनने के लिए आडंबर-पाखंड न करो। बाहर की पवित्रता दिखावा मात्र है। भीतर को निर्मल करो। चाहे पंडित हो, चाहे मुल्ला कोई बाहरी उपदानों से सत्य नहीं प्राप्त कर सकता है और न वह समाज को सत्योन्मुख कर सकता है। संस्कृति का संबन्ध भीतरी शुचिता से है। सत्य पाना है तो पवित्र बनो—मन की मैल को धोते रहो, मन को माँजते रहो, दूसरों को जटो नहीं, धोखा न दो। सत्य एक है, उसके अनुभव का अधिकार सबको है। सत्य का पथिक भेद में विश्वास नहीं करता। वह किसी कर्मकाण्ड का, किसी आचार-विचार का, किसी बाहरी पूजापाठ का पक्षधर नहीं होता। वह 'निरपष' होता है। कबीर 'निरपष' थे और जीवन भर हिन्दू-मुसलमान को अभेद की सीख देते रहे। इसीलिए उन्हें हिन्दुओं की त्रुटियों को बार-बार इंगित करना पड़ा और मुसलमानों को यह समझाना पड़ा कि ईश्वर एक है और वह अव्यक्त है। उसी का व्यक्त रूप संसार है—वह मनुष्य नहीं, परन्तु सारे गुणों का अधिष्ठाता है। राम-कृष्ण-नारद-शुक-सनकादि ये सभी मानवीय गुणों के उपासक रहे हैं—मानवता इनका धर्म रहा है। कबीर गुणगान करते हैं इन सभी का और मन की पवित्रता के लिए रामनाम के जप की संस्तुति करते हैं। नाम प्रतीक है सत्य का—उस सत्य को समझने-ग्रहण करने के लिए किसी डोरी को पकड़ना अपेक्षित है यह डोरी है नामस्मरण। नाम से जुड़े रहने पर सतत चेतनता-जागरूकता बनी रहनी स्वाभाविक है। आदमी को सत्य से—राम से—योगयुक्त होना पड़ेगा अन्यथा बाह्य आकर्षण उसे समर्पित न होने देंगे सत्य के प्रति। पंचतत्त्व का महत्त्व है सत्य की प्राप्ति में। शरीर इसीलिए है। इसका पोषण करके इससे अनाचार न करावें। शरीर में आत्मा का निवास है। संसार में परमात्मा का निवास है। अणु-अणु में वही है ऐसा अनुभव ही विज्ञान है।

कबीर का सम्पूर्ण बल ईश्वरानुभूति के माध्यम से ऐक्य पर है—तत्कालीन माँग भी यही थी—विभिन्न व्यक्तियों में अविरोध, विभिन्न धर्मों-संप्रदायों में सद्भाव; विभिन्न मान्यताओं में स्वरैक्य तभी संभव था जब मूल सत्य के प्रति सबमें श्रद्धा उत्पन्न की जाय। कबीर ने इसीलिए बाह्य अन्तरों को दूर करने का बीड़ा उठाया और वे सफल भी रहे। कबीर वैष्णव थे, कबीर के राम दाशरथि थे साथ ही परब्रह्म थे। राम का

रूप को स्वीकारते थे। रामनाम जपने पर बल, राम गुनगान पर बल, राम सुमिरन पर बल, राम-रसायन पर बल—यह सर्वगुणसम्पन्न राम का चित्रण है। कबीर अपने को राम को समर्पित कर, उनके भक्त बनकर ही 'रामराइ' और 'कबीर' बने।

वाल्मीकि ने राम गुणगान किया रामायण के माध्यम से। रामायण नीति-श्लोकों से भरा है। रामायण बालकाण्ड (12-32) में वाल्मीकि कहते हैं मैं किससे प्रेरणा लूँ, किसे आदर्श स्वीकारूँ उस (राम) को छोड़कर जो क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म ('वरचू') कृतज्ञता का साक्षात् रूप है—और जो किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाता :

क्षमा यस्मिन् दमस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम॥

वाल्मीकि के आश्रय थे राम। वे ही उनकी 'गति' थे। वाल्मीकि अपने आदर्श का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"राम से बढ़कर लोक में कोई न वीर्यवान् है, न धर्मज्ञ है, न कृतज्ञ है, न सत्यव्रती है, न सच्चरित्र है, और न उनसे अधिक कोई आत्मवान्, प्रियदर्शी और अक्रोधी है—असत्य तो राम जानते ही नहीं—

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥

—बालकाण्ड

ये सारे दिव्य गुण मानव देहधारी राम में ही संभव है। वाल्मीकि बार-बार कहते हैं कि विष्णु ने रावण के वध के लिए मनुष्य रूप धारण किया है—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुस्सनातनः॥

तथा

रामः सत्पुरुषो लोके सत्यधर्म परायणः।

राम **पुरुषोत्तम** हैं क्योंकि उनमें षड्गुण हैं—

आनृशस्य मनुक्रोशः श्रुतं शील दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषोत्तमम्॥

वशिष्ठ कहते हैं वह राष्ट्र नहीं जहाँ राम न हों। राम वन में हों तो वन ही राष्ट्र है :

न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः ।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ।।

ब्रह्मा राम की स्तुति में उन्हें 'अक्षर, ब्रह्म, सत्य' कहते हैं—

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।।

मंदोदरी कहती है—

मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ।

वाल्मीकि के राम मानुषी रूप में ब्रह्म हैं । ब्रह्मा कहते हैं :

सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्षः सहस्रदृक् ।
त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ।।

कबीर-काव्य में यही निर्गुण-सगुण राम हैं । वाल्मीकि की परम्परा के कवि हैं 'राम कबीर' । वे विभीषण के शब्दों में अपने राम की शरण में हैं—

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणागतः ।

कबीर के राम भी शरणागत वत्सल हैं ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ।

—कठोपनिषद्

अध्यात्म अथवा निःश्रेयस पथ पर चलना वैसे ही है जैसे छूरे की तेज धार पर चलना । यह पथ दुर्गम है और इसका पार होना कष्टसाध्य है ।

●

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानाखिलन्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च ।।

हे रघुपति ! आप ही सब में परमात्मा रूप में हैं । आप जानते हैं कि मेरे मन में एकमात्र यही अभिलाषा है कि आप की परमभक्ति मिले और मन कामादि दोष से मुक्त हो सके । मेरा मन पवित्र निर्मल हो कुछ ऐसा करो हे राघव !

—रामचरितमानस

१२. अव्यक्त और अवतार

हमारी संस्कृति का मूल आधार है सर्वात्मभाव—समस्त प्राणियों के मूल में ईश्वर की कल्पना। जो अनीश्वरवादी हैं वे भी समता-एकता-समानता को सारी नैतिकता का फल मानते हैं। ईश्वरवादी अभेदभाव के लिए अध्यात्म का सहारा लेता है। वह मानता है कि वही एक है और सब उसी में है—वही नित्य सत्य है समस्त सृष्टि उसी का विस्तार है। जब सब एक हैं तब सबके हित की बात ही परम श्रेय अथवा धर्म है। जाति-धर्म-वर्ण के भेद व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित हैं। उपनिषद् (वेदांत) उसी एक परमब्रह्म की उपासना की सीख देते हैं और सर्वत्र उसी का साक्षात्कार करने की प्रेरणा देते हैं। उसका ध्यान ही समाधि है। उस चेतनता से युक्त होने से मनुष्य तुच्छ स्वार्थ-लोभ में नहीं फँसता है। वेदांत मानता है कि अध्यात्म का आधार अनिवार्य है समानता और सद्व्यवहार के लिए। तर्क से अभेद-समानता को सिद्धांत रूप में मान लेने पर भी मनुष्य कर्त्तव्यच्युत हो जाता है और मैं-मेरा का शिकार हो जाता है। इसलिए समता को धर्म रूप में स्वीकारना चाहिए—धर्म श्रद्धा की अपेक्षा रखता है। मनुष्य मात्र के प्रति श्रद्धा-स्नेह बना रहे इसके लिए उस परम सत्य 'अखिलान्तरात्मा' का बोध अपेक्षित है।

कबीर का अभेद गीता-उपनिषद्-श्रीमद्भागवत का दर्शन है। इसीलिए मैं कबीर को सनातनधर्मी वैष्णव कहता हूँ। ईश्वर में आस्था रखना ही भक्ति है। भक्ति से यही ज्ञान विकसित होता है कि प्राणिमात्र को समान समझे। इस ज्ञान को कर्म में रूपान्तरित करना कर्मयोग है। अतः अध्यात्म और व्यवहार अथवा श्रेय और प्रेय दोनों के लिए भक्ति—सतत चेतनता—अपेक्षित है। ज्ञान इसी चेतनता का नाम है। ज्ञान से श्रद्धा का योग भक्ति है। भक्त समर्पण कर देता है अपने को इष्ट के चरणों पर। ज्ञानी को अपने विवेक का बल होता है। पर, विवेक कभी-कभी अंधकार से आच्छादित हो जाता है और मनुष्य मानसिक विकारों से पीड़ित हो उठता है। उन क्षणों में भगवान का सुमिरन ही मानसिक विक्षिप्तता से बचा सकता है। क्रोध-काम-लोभ का वेग कब किसे सता देगा इसका कोई ठिकाना नहीं। इसलिए भक्त विनम्र होकर आत्मबल और भगवान के सहारे की प्रार्थना करता है। उसे विनय से बल मिलता है और वह बाधा को पार कर जाता है।

कबीर-काव्य में भक्ति-ज्ञान-वैराग्य, संयम-समाधि, प्रीति-रस सब का समुच्चय है। जो कबीर समता पर बल देता है वह राम-कृष्ण को क्यों न माने? जो अभेद के लिए ही जिए वह पृथ्वी के भार को उतारनेवाले को क्यों न माने? कबीर यदि अव्यक्त से जुटे हैं तो राम-गोविन्द से भी। कबीर ईश्वरभक्त नारद-सनक आदि से जुड़े हैं। नारद भक्ति के साकार रूप हैं। उनका एक ही कर्म है भगवत् चर्चा—प्राणी को निराशा-उदासीनता से बचाकर सत्य के प्रकाश की ओर उन्मुख करना। कहा जाता है नारद के उपदेश से ही प्रह्लाद और ध्रुव ने अचलपद-

अमरपद अथवा परम स्थान प्राप्त किया। भागवत-महात्म्य में कहा गया है कि भक्ति के दो पुत्र हैं—ज्ञान और वैराग्य। ज्ञान-वैराग्य होते हुए भी मनुष्य सदाचार से डिग जाता है तब भक्ति ही मुक्ति देनेवाली होती है। सनकादि ऋषि जिनकी कबीर-काव्य में बार-बार महिमा गाई गई है परमभागवत थे। उन्होंने ही नारद को श्रीमद्भागवत-कथा सुनाई थी। सनकादि मुनीश्वर भक्ति के अग्रदूत हैं। कबीर ने शुकदेव को बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। शुकदेव ने परीक्षित को श्रीमद्भागवत सुनाया था। और परीक्षित परमगति प्राप्त कर सके। भागवत-महात्म्य में योगेश्वर शुकदेव ने कहा है कि वेदरूप कल्पना का परिपक्व फल श्रीमद्-भागवत है। अतः कबीर को निर्गुणवादी मानकर उनके सगुण पक्ष को नकरना उचित नहीं। कबीर भक्त हैं, वैष्णव हैं, भागवत हैं। जिस निष्काम और वैराग्य युक्त जीवन और निरपेक्ष भाव पर कबीर का बल है वह भक्ति पर ही आधृत है। कबीर जिस 'अनुभौ' की बात करते हैं उसे भागवत (प्रथम स्कन्ध) में सूत जी इस प्रकार कहते हैं—

> "ऋषियों, मनुष्यों के लिए श्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान श्रीकृष्ण के प्रति हृदय में भक्ति अंकुरित होते ही साधकगण निष्काम ज्ञान और वैराग्य भक्ति से अपने हृदय में उस परमतत्व परमात्मा का साक्षात् अनुभव करते हैं...
>
> ......जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्ति से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं तब भगवान के प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है।... तब हृदय आनंद से भर जाता है और भगवान के तत्त्व का स्वतः अनुभव होने लगता है।"
>
> भागवत के अनुसार "अद्वैत परमात्मा ने ही इस संसार की स्थिति, उत्पत्ति और विनाश के तीनों गुणों को स्वीकार कर विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र, ये तीन नाम ग्रहण किए।"

अतः, अद्वैत भारतीय धर्म का आधार है। उस अद्वैत के ही रूप हैं पालन करनेवाले विष्णु, सर्जन करनेवाले ब्रह्मा और संहार करनेवाले रुद्र। भागवत में ये उस विराट् विशुद्ध सत्यमय के ही अंग हैं। उस विराट् के अंग-प्रत्यंग में ही समस्त लोकों की कल्पना की गई है। गीता (ग्यारहवें अध्याय) में विश्वरूप-दर्शन का प्रतिपादन है।

सनक-सनंदन-सनातन और सनत्कुमार अवतार हैं भगवान के। कबीर सनकादि को सश्रद्ध आदर्श मानते हैं अतः कबीर अवतार के विरोधी नहीं। नरसिंह और प्रह्लाद की भी चर्चा है कबीर-काव्य में। व्यास सत्रहवें अवतार हैं। अठारहवाँ अतवार राम का और उन्नीसवाँ-बीसवाँ अवतार बलराम और श्रीकृष्ण का है। भागवत मानता है कि 'इस स्थूल रूप से परे भगवान का सूक्ष्म अव्यक्त रूप भी है।" कबीर अव्यक्त और अवतार दोनों के उपासक हैं।

१३. शरणागत कबीर

भगवान ने गीता में कहा है—'जो सारे कर्म मुझे समर्पित करते हैं, मुझमें परायण हैं और एकनिष्ठा से मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं—अर्थात् जिनका चित्त मुझमें ओतप्रोत है उन्हें मैं जीवन-मृत्यु के बंधन से अविलम्ब मुक्त करता हूँ :

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।
तेषामहं समुद्धर्ता मत्युसंसार सागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ।। 12.6-7

कबीर मृत्यु-जन्म से मुक्त होने की प्रार्थना करते हैं। वे जानते हैं कि यह मनुष्य-शरीर दुर्लभ है। यदि इसमें भगवान से प्रीति न की गई तो मुक्ति संभव नहीं। इसीलिए वे कमलाकांत (विष्णु) से यही वरदान चाहते हैं कि अब जनम-मरन अथवा सांसारिक व्याधि से छुटकारा दें :

ऐसा अवसर बहुरि न आवै ।
राम मिलै पूरा जन पावै ।।
जनम अनेक गया अरु आया । की बेगारि न भाड़ा पाया ।
भेख अनेक एक धूं कैसा । नाना रूप धरै नट जैसा ।
दान एक मांगौ कवलाकंत । कबीर के दुख हरन अनंत ।109 गौड़ी

कबीर की एक ही आकांक्षा है कि **'राम मिले तो पूरा पावै ।'** संसार में रहने पर जो अनेक यातनाएँ हैं उनसे उद्धार राम के पाने से ही है। कबीर जन-भक्त हैं, उन्हें भगवान के व्रत को देखते हुए ऐसा वरदान माँगने का पूरा हक है। भारतीय अध्यात्म जन्म की सार्थकता इसी में मानता है कि मनुष्य भगवान को प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त कर ले, मनुष्य-जन्म दुर्लभ है यह पूरे भारतीय वाङ्मय में है। 'राम मिलें' यही 'पूरा पाना' अथवा जीवन की सार्थकता है।

बहुरि=फिर। मा० हि० को० में बहुरना को सं० 'प्रघूर्णन' से विकसित बताया गया है, पर 'घूर्णति' चक्कर काटना के आशय में है; प्राकृत 'घुण्णइ' है। कबीर में घुरडि=इधर उधर घूमने-फिरने के आशय में है—'भावै घुरडि मुंड़ाइ ।' हिंदी घूमना (प्रा० घुम्मइ) धातु घुर् से ही सम्बन्धित है। **बहुरना**=लौटना सं० **व्याघुटन** से विकसित है (घुट्=लौटना)।

कबीर भाषा के धनी हैं। **'ऐसा औसर बहुरि न आवै'**—मन को सचेत करने के लिए बड़े प्रभविष्णु ढंग से कहा गया है। कबीर पूरे मन से इस तत्त्व का अनुभव कर रहे हैं। **'राम मिलै पूरा जन पावै'** उपनिषद् की शैली है। कबीर

थोड़े से शब्दों से तत्त्व–बोध कराने में सक्षम हैं। जीवन के दुरुपयोग की बात जन भाषा में कितने सरल–सहज ढंग से कही गई है—

जनम अनेक गया अरु आया। की बेगारि न भाड़ा पाया॥

जन्मते गए-मरते गए, पर जीवन को सार्थक न बना सके। 'की बेगारि'= बेगारी किया। **बेगार** (फारसी) तत्कालीन जनता में प्रचलित था। समाज शास्त्र और भाषा शास्त्र के अध्ययन में 'बेगार'–'भाड़ा' महत्वपूर्ण हैं। **सं० भाटक**, भाट= मजदूरी–किराया के आशय में है। बेगार वही है जिसमें परिश्रम का फल न मिले। कबीर की जीवन-दृष्टि में 'भाड़ा' हरि को पाना है।

'नट' (नृत्) महाभारत-काल से नर्तक=अभिनेता के अर्थ में है। कबीर का कहना है मनुष्य अपने को नहीं पहचानता और जीवन नाचने, नाटक करने—बहु-रूपिया बनने—में बीत जाता है—**'नाना रूप धरे नट जैसा।'** सूर इसी भाव को 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल' में व्यक्त करते हैं। कबीर के नट की व्याख्या सूर से समझी जा सकती है। कबीर सूत्र शैली में अभिव्यक्त करने में निपुण हैं।

कबीर अन्य पद में भी 'दुख हरन' विष्णु भगवान् से भव-दुःख निवारण की याचना करते हैं :

बीनती एक राम सुनि मोरी।
अब न बचाइ राखि पति मोरी॥
जैसे मंदला तुमहि बजावा। तैसे नाचत मैं दुख पावा।
जे मसि लागी सबै छुड़ावौ। अब मोहि जिनि बहु रूप कछावौ।
कहै कबीर मेरी नाच उठावौ। तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ॥78 गौड़ी

लगता है कबीर का यह पद उनकी जरावस्था का है। उनको इस संसार में बार-बार आकर नाचने का दुख है। कबीर चाहते हैं कि यह नाच अंतिम हो 'कहै कबीर मेरी नाच उठावौ।' **'नाच उठाना'**=नृत्य समाप्त करना। मा० हि० को० में यह प्रयोग नहीं है। **बहुरूप कछाना**=नाना भेस से नाचना नट की भाँति। **कक्ष्या** ऋग्वेद में प्रयुक्त है। काछना अर्थात् काछा कसना। नट आज भी काछा मारकर नटैती करता है। **'कक्ष्या'** और 'नृत्य' नृत्यकला और वेशभूषा सम्बन्धी अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री देते हैं। कबीर का शब्द-भांडार प्रभूत ऐतिहासिक सामग्री देता है। कबीर जनता के सम्पर्क में थे उनकी शब्दावली यथार्थ से जुड़ी है। कबीर अपने राम से 'थोड़ी सी विनती' करता है—अब भक्त की **पति राखो**, मर्यादा-लज्जा रखो। **'पति'** का विकास डॉ० गुप्त सं० प्रत्यय=विश्वास से मानते हैं पर 'प्रत्यय' से 'पतियाना' सम्बन्धित है। ऋग्वैदिक पति=स्वामी से इसका विकास होना चाहिए। सूर ने भी प्रयोग किया है—'सभा माँझ पति राखी'। 'पति रखना' मुहावरा मा० हि० को० में नहीं है। आज भी **पत-पति** का प्रयोग है। पति, पत्नी की मर्यादा रखता था। 'पति रखना' में मर्यादा-लज्जा के रखने की बात है। 'पा' धातु का अर्थ रक्षा करना है।

कबीर कहते हैं, यह माया तो हे कमलाकांत तुम्हारी ही है—**'जैसे मंदला तुमहि बजावा। तैसे नाचत मैं दुख पावा।'** जरामरन' में भटकना ही नाचना है :

जहाँ जाऊँ तहां सोगसंताप। जरामरन कौ अधिक बियाप। 79 गौड़ी

माया में फँसे रहने के करण जो चेहरे पर **मसि**=कालिख लगी है उसे आप ही छुड़ा सकते हैं—आपकी शरण में हूँ **'कहै कबीर चरन तोहि बन्दा।'** 79 गौड़ी। **मसि**=कालिख का प्रयोग सूर ने भी इसी भाव में किया है—

अपनौ मुख मसि मलिन मंदमति देखत दर्पन माहीं।
ता कालिमा मेटबे कारन पचत पखारत छाहीं॥ 368

अकर्त्तव्य करने से लगी मसि तब तक नहीं छूटती जब तक 'सतसरूप' का बोध न हो—

जौ लौं सत सरूप नहि सूझत।
तौ लौं मृगमद नाभि बिसारे फिरत सकल बन बूझत। वही

कबीर का आशय वही है जो सूर का—आत्मसाक्षात्कार से ही मुँह की कालिमा मिट सकती है। कबीर की भाषा सहज़ होते हुए भी मार्मिक और रहस्यमय है—उनके अर्थ-बोध के लिए पूरे अध्यातम साहित्य और भक्ति-परम्परा को समझना होगा।

कबीर की याचना है—

टिकुरी भई कान्ह कै कारणि भ्रमि भ्रमि तीरथ कीन्हा हो।
सो पद देहु मोहि मदन मनोहर जिहि पदि हरि मैं चीन्हां हो॥77 गौड़ी

कबीर जिस (स्थान) **'पद'** की भीख माँग रहे हैं वह अभय-पद, हरिपद, परमपद है जिसे प्राप्त करने पर भटकना छूट जाता है। **'टिकुरी भई कान्ह के कारणि'** अर्थात् कान्हा को खोजने के लिए कितनी तीर्थ यात्रायें की पर 'हरिपद' अथवा मुक्ति की शांति नहीं मिली। कृष्ण और गोपियाँ आत्मा और जीव के सम्बन्ध के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों को समझना रहस्यवाद को समझने के लिए अपेक्षित है। **टिकुरी** < सं० तर्कु पारस्करगृह्यसूत्र में है। तर्क् का अर्थ है चक्कर काटना, चक्कर करना (रिवाल्व)। सं० तर्क=जाँच-सन्देह, तर्क् से बना है। टिकुरी भई अर्थात् भ्रम-संदेह में भटकती रही, चक्कर करती रही। तकुआ, टिकुरी (स्पिंडिल) मैथिली, ओड़िया, भोजपुरी में बहु प्रचलित शब्द है।

———

१४. पष छाड़ै निरपष रहै

कबीर सीतलता तब जाणिये, समिता रहै समाइ।
पष छाड़ै निरपष रहै सबदि न दूष्या जाइ ।। 39।3

समत्व-संतुलन से ही सामञ्जस्य (कनकार्ड, हारमोनी) संभव है। संतुलन बनाने के लिए किसी पक्ष से अपेक्षा-आसक्ति न होनी चाहिए। जो शीतलता (परमानन्द) का इच्छुक है उसे 'साम्य' किसी भी कीमत पर बनाये रखना होगा। साम्य तभी संभव है जब क्रोध-रोष-व्यस्तता-आसक्ति और अहंकार न हो। मनुष्य अपने को ही कर्त्ता मानकर आसक्ति के पाश में बँध जाता है। आसक्ति सुख-दुःख दोनों का कारण है। इसलिए अनासक्त रहकर साम्य स्थिति को प्राप्त करना सत्य-खोजी अथवा संत-भक्त-साधु का काम है। जो निरपष (इमपारशियल) है उसे कटु शब्द नहीं दुखी करते 'सबदि न दूष्या जाइ।' कबीर ऐसे बिरले साधु हैं जिन्हें कटु शब्द नहीं बेध पाते। भागवत (11.23.2) में है, "ऐसे संत प्रायः नहीं मिलते जो दुर्जनों की कटुवाणी से बिंधे हुए अपने हृदय को सँभाल सकें।"

श्रीमद्भागवत में भगवान उद्धव से कहते हैं—

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयो गुणाः ।।11,13,40

[मैं समस्त गुणों से रहित हूँ और किसी की अपेक्षा नहीं रखता। फिर भी, साम्य-असंगता आदि गुण मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं। मैं सबका सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हूँ।]

भगवान् के कथन में विरोधाभास है—वे गुण रहित हैं। फिर भी साम्य-निरपेक्षता के भाव उनमें हैं। भगवान् असंगयुक्त होते हुए भी सबके सुहृद् हैं—सब पर कृपालु हैं। मनुष्य को भी इसी प्रकार साम्य-समिता में रहकर समाज के प्रति उदार-कृपालु होना चाहिए। '**निरपष**' ही सत्य के प्रति प्रतिबद्ध हो सकता है पक्षधर नहीं। 'निरपष' का ध्यान 'साम्य' (इक्वलिटी) पर रहेगा। 'मानक हिन्दी कोश' में 'निरपष' नहीं है।

कबीर मनीषी-कवि-चिंतक और पक्के साधु थे। वे अपढ़ नहीं सुसंकृत थे। उपर्युक्त साखी गीता-भागवत में प्रतिपादित दर्शन का 'ततसार' है। कबीर की साखी व्यावहारिक जीवन पर बल देती है। वे साम्य और निरपक्षता का महत्त्व इसलिए बतला रहे हैं ताकि धर्म-जाति-राष्ट्र का भेद मिटाकर मनुष्य मात्र एक हो।

टीकाकारों ने '**पष**' और '**निरपष**' को 'पक्ष' और 'निरपक्ष' माना है। '**पष**'

संग है, आसक्ति है और **'निरपष'** असंग होना है। भगवान् 'निरपष' हैं। भक्त को भी 'संग' (आसक्ति-वासना) छोड़कर निष्काम होना चाहिए। जो निष्काम, संगरहित होगा वही कटु शब्द—कुशब्द—से दुःखी न होगा और न वह किसी दूसरे के लिए कुशब्द का प्रयोग करेगा।

भगवान् उद्धव को समझाते हुए कहते हैं—"उद्धव जी श्रेष्ठ एवं महान् निःश्रेयस (परमकल्याण) निरपेक्षता का ही दूसरा नाम है। जो निराशिष (निष्काम-निरपेक्ष) होता है उसी को मेरी भक्ति प्राप्त होती है :

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम्।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत्॥11,20,35 भागवत

निरपेक्षता, निराशिष (इच्छा रहित) का ही दूसरा नाम है। निःश्रेयस (मोक्ष) का यही व्यावहारिक स्वरूप है। संत का व्यावहारिक जीवन ही उसके निश्रेयस की कसौटी है। कबीर व्यास की परंपरा के श्रेयस् कवि हैं। कबीर का दर्शन जीवन से सम्बन्धित है। कबीर को निर्गुण संत-कवि माना गया है पर कबीर का समभाव इससे आच्छादित हो जाता है। जिस प्रकार गीता में ज्ञान-भक्ति-कर्म परस्पर पूरक हैं उसी प्रकार कबीर की रचना में। कबीर अविगत-अव्यक्त से व्यक्त को अभेद मानकर वेदांती जीवन जीने पर बल देते हैं। वेदांती सर्वत्र, सब स्थितियों में उस सत् का अनुभव करता है और अहंभाव (अहंकार) से मुक्त होने के लिए अपने को भगवान् को समर्पित कर निराशिष जीता है।

सीतलता—ठंडक नहीं यह चिंता - इच्छा रहित निर्द्वन्द्व जीवन है। **'समिता रहे समाइ'** अर्थात् सतत साम्य-संतुलन रखना। **निरपख**=अपेक्षा रहित (निर् + अपेक्षा)। अपेक्षा इच्छा है। जब व्यक्ति सत् का खोजी बन जाय—उसे कोई भी अपेक्षा न हो अथवा उसे किसी की अपेक्षा न हो—तब उसका मन स्वतः शांति-लाभ करता है।

वेदांत का निचोड़ है :

"इन्द्रियों के द्वारा भोक्तृत्व में प्रवृत्त होकर मनुष्य अन्तर्निवासी आत्मा—अपने स्वामित्व का—ज्ञान खो देता है और बंधन में पड़ जाता है और जब वह स्वामित्व का अनुभव करता है तब प्रत्येक बन्धन से मुक्त हो जाता है।"

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

पष छाड़ै अर्थात् विषयों से आसक्त न हो; **निरपख** अर्थात् अनासक्त।

निरपष आत्म-साक्षात्कार करके 'आनन्दरूपममृत' का अनुभव करता है :

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपममृतं यद् विभाति।' (मुण्डकोपनिषद्)

पष-निरपष का आशय यदि पक्ष-निष्पक्ष है तो भी ठीक है। कबीर किसी धर्म विशेष, वर्ण विशेष के समर्थक नहीं। वे नामदेव की भाँति ज्ञान-भक्ति

का दरवाजा सबके लिए खुला रखना चाहते थे। आत्मानुभूति किसी वर्ग विशेष के हिस्से में नहीं हैं। धर्म को सर्वजनवादी होना चाहिए। धर्म नैतिकता पर आधृत होता है। नैतिक जीवन ईश्वर-भक्ति की भूमिका है। नैतिकता भेद नहीं स्वीकारती। कबीर का दर्शन अभेदवाद है। उनका धर्म मानव मूल्यों पर आधारित है। हिन्दू-मुसलमान अपने-अपने पक्ष के पैरोकार होते हैं जबकि सचाई यह है धर्म का कोई 'पष' नहीं। परमात्मा का अनुभव सब के लिए समान रूप से सुलभ है। कबीर का संदेश है कि धर्म को जीवन से जोड़े और जीवन को मानव मूल्यों से। मानवता सर्वोपरि है।

———

"जिस तरह लवण का कण अपने अहंकेन्द्रित या निजी लावण्य का परित्याग करके सागर में कूदने का खतरा मोल लेता है और अपार लावण्य पा लेता है, उसी प्रकार मैं अपने 'मैं', 'मेरे' का मोह त्यागकर शंभुतंमवी (शिव-शक्ति, जीवन-प्रकृति, परमात्मा-ब्रह्माण्ड) से तदाकार हो गया हूँ।" —ज्ञानदेव

●

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजता दधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥

समस्त संसार शांतिमय हो। खल सज्जन बनें। समस्त प्राणिजगत् परस्पर सद्भाव से रहें। सब के मन में शुभ-कल्याण विचार बसें। और हमारा हृदय निःस्वार्थ प्रेम से सराबोर हो उस परमपिता के लिए।

—भागवत

●

१५. कहै कबीरा कोरी

परहरि काम राम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी ।
हरि कौ नाउँ अभैपद दाता कहे कबीरा कोरी ।। 21 भैरू

'परिहरिकाम' का अर्थ टीकाकारों ने किया है 'कामों (कर्मों) को छोड़कर'। पर यहाँ 'काम' विषय-वासना है। कबीर का कथ्य है कोई अन्य इच्छा नहीं केवल रामदास होने की लालसा होनी चाहिए। **'हरि नाउँ'** का सतत सुमिरन ही चेतनता है। **कोरी** (कौलिक) कबीर डंके की चोट पर उद्घोष करते हैं कि केवल हरि-माधव-राम का नाम ही शांति दे सकता है—वही दुविधा-द्वैत को मिटा सकता है, वहीं दृष्टि दे सकता है भेदरहित समदृष्टि का। कोरी, जुलाहा हैं। हिंदू कोरी का व्यावसायिक नाम जुलाहा हैं। तुकाराम ने कबीर को मोमिन (मुसलमान) कहा है। कबीर कहते हैं :

सुख समाधि सुख भया हमारे मिल्या न बेगर होइ ।
जिहि लाधी सो जानिहै राम कबीर और न जानै कोइ ।। रमैणी दुपदी

'राम-कबीर' दोनों समानार्थी हैं यहाँ—कबीर ही राम हैं। लगता है हिंदू उन्हें राम और मुसलमान कबीर कहते थे— उनका घरेलू नाम कुछ और ही था। कबीर **'रामदास'** थे। कबीर के अभेद दर्शन को ये नाम सुस्पष्ट करते हैं। कबीर हिंदू संस्कृति के कवि हैं। उनके काव्य में गीता-भागवत की परम्परा है। कबीर के लिए एक ही धर्म है सत्य—हिंदू-मुस्लमान दोनों का धर्म एक है ईश्वर-चिंतन और अंतःकरण-शुद्धि :

मन मुसले की जुगति न जानै मति भूले द्वै दीनबखान । रमैणी अष्टपदी

भगवान के यहाँ जातिभेद, वर्ण भेद, धर्म भेद नहीं है :

सुंनि मैं सबद समाइगा तब कासनि कहिये जाति ।। वही

'सुनिं मैं सबद समाइगा' का भाव है **मिल्या राम रहा सहजि समाई ।।**

कबीर के अभेदभाव का उपजीव्य भागवत है। कबीर का 'अनुभौ' भागवत धर्म की देन है। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव को तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं—

मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् । भागवत 11.7.6

तुम अनन्य प्रेम से मुझमें अपना मन लगाकर समदृश् होकर पृथिवी में विचरण करो।

भगवान् कहते हैं—

नानात्व का भ्रम हो जाने पर यह गुण है और 'यह दोष' इस प्रकार कल्पना का जन्म होता है—इसलिए उद्धव ! तुम अपनी समस्त

> इन्द्रियों को अपने वश में कर लो, चित्त की वृत्तियों को रोक लो,और यह अनुभव करो कि यह जगत् अपने आत्मा में ही फैला हुआ है और आत्मा मुझ सर्वात्मा इन्द्रियातीत ब्रह्म से एक है—अभिन्न है। तब तुम ज्ञान और विज्ञान (अनुभवरूप विज्ञान) से भलीभाँति सामान्य होकर अपने आत्मा के अनुभव में ही आनन्दमग्न रहोगे—तुम्हें कहीं अन्तर भेद न दिखाई देगा (11.7.28)

वैष्णव कबीर की कसौटी है आन्तरिक आनंद, आंतरिक सुख, आभ्यांतरिक शीतलता और इसका प्रमाण है सर्वत्र समभाव—सब में उसी परमात्मा की अनुभूति। कबीर परम अद्वैतवादी 'हिंदू' थे। उनका हिंदुत्व समुद्र की तरह विशाल था जिसमें वर्ण-जाति-सम्प्रदाय का भेद नहीं। उनके राम प्रकृति से अतीत, पर थे—परम उदार, कृपालु, समदर्शी, जन-जन के हितैषी। राम को किसी रूप में मानें—गुरु, पिता, माता, सखा, स्वामी वे आप के साथ हैं—हाँ यह अनुभव की बात है। जो ऐसा सतत अनुभव करता है उसे ताप नहीं, क्लेश नहीं, चिंता नहीं, भय नहीं। शीतलता अहंकार में नहीं—स्व को सब कुछ मानने में नहीं—अहं भाव को मिटाकर समर्पण में है। जो समर्पित है उसमें अहंकार अभिमान कैसे। अहंकार-अहंभाव नहीं तो प्रीति-समता का राज्य रहेगा ही।

कबीर-काव्य अनुभव-काव्य है इसमें कृत्रिमता नहीं। इसमें कलात्मक सौष्ठव है सहजता के कारण। कबीर ने किसी कथा का सहारा लेकर न महाकाव्य की रचना की न खंडकाव्य की, उनकी आन्तरिक निर्झरिणी से जो बहा वही काव्य बन गया। कबीर आपको प्रिय लगते हैं अपनी निर्मलता-सहजता-ठेठपन के कारण। उन्हें पढ़कर आपको शीतलता मिलती है, आप उदात्त बनते हैं, आप ऊपर उठते हैं, आप मैं-मेरा के बंधन से मुक्त होकर समस्त सृष्टि से—मानव से—प्रेम करते हैं। किसी के प्रति घृणा नहीं, रोष नहीं, कटुता नहीं—भगवान् की तरह सबके प्रति कल्याण की भावना। कबीर-काव्य अध्यात्मपरक जीवन-दर्शन है, गीता है—उपनिषद् है। इसमें सर्वत्र साक्षी-परमात्मा का दर्शन होता है जो व्यक्त और अव्यक्त—लीलाधारी और लीला से परे दोनों रूपों में है। वह बीज भी है और विस्तार भी—वह कारणरहित है पर मानव-कल्याण के लिए प्रकट होता है।

कबीर प्रकाशपुंज हैं—प्रकाश में ही उनका स्थान है। जहाँ आलोक है वहीं समता है, वहीं शीतलता है—

> **कबीर झल बांवें, झल दाहिणै, झल ही मांहि व्यौहार।**
> **आगै पीछैं झलमई राखै सिरजनहार॥** 38.7

झल यहाँ आतमप्रकाश है जो गुरु अथवा भगवान् की कृपा का फल है। अन्यत्र भी **झल** इसी भाव में है :

मन रे मनहीं उलटि समाना।
गुर प्रसाद अकल भई तोकौं नहीं तर था बेगाना।
अनभै कथा कवन सूँ कहिए है कोइ चतुर बबेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता सो झल बिरलै देखी।। 8 गौड़ी

झल का मूल अर्थ चमक, ज्योति है। झल की व्युत्पत्ति ज्वल् से नहीं है। **झल** का प्रयोग सभी आधुनिक आर्य भाषाओं में है।

कबीर ने माया की ज्वाला के अर्थ में भी झल का प्रयोग किया है—

कबीर जीव बिलंब्या जीव सौं अलख न लखिया जाय।
गोव्यंद मिलै न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ।। 17।1

तथा, **कबीर माया की झल जग जल्या कनक कामिनी लागि।**
कहुँ धूं किहि बिधि राखिए रूई लपेटी आगि।। 16।32

जब तक माया की झल है अथवा कनक-कामिनी में मन फँसा है तब तक शाँति-शीतलता-समता कहाँ?

कबीर सीतलता भई जाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जलै सो मेरे उदक समान।। 39।4

वैश्वानर=अग्नि के विरोध में ब्रह्म ज्ञान की शीतलता है। संसार क्रोध-ईर्ष्या-अभिमान की ज्वाला में जल रहा है उससे मुक्ति तभी सम्भव है जब मनुष्य आध्यात्मिक बने—समदृष्टि को अपनावे अथवा सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति करे। ताप का कारण बाहर नहीं—भीतर है—अपने ही विकार हैं। टीकाकारों ने **बैसंदर** का अर्थ 'दुर्वचन रूपी अग्नि' अथवा 'कुशब्द की ज्वाला' किया है पर कबीर **बैसंदर** का प्रयोग व्यापक अर्थ में कर रहे हैं—परस्पर कटुता, अविश्वास, घृणा, क्रोध, अग्नि हैं जिनमें मानव मूल्य भस्म हो जाते हैं। कबीर मानव मूल्यों के राखनहार हैं—मानव-कल्याण के प्रति वे समर्पित हैं। कबीर अपने युग के ही नहीं सदा के लिए जीवंत संदेशवाहक हैं।

कबीर को अपने 'निरपख' भाव के कारण हिंदू-मुसलमान दोनों के कटु वचन सुनने को मिले होंगे और उन्होंने समदृष्टि से सहन किया होगा—उसी की प्रतिक्रिया में वे कहते हैं—

खोद खाद धरती सहै काटकूट बनराइ।
कुटिल बचन साधू सहै दूजै सहा न जाइ।। 39।2

कुटिल बचन अथवा कुसबद की चोट भीतर तक पहुँचती है, सेल (भाला) की नोंक से भी अधिक पीड़ादायक होती है :

अनी सुहेली सेल की पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की तास गुरु मैं दास।। 39।1

कबीर की एक-एक उक्ति मनोविज्ञान एवं व्यवहार जगत् से संबंधित है। हमारी प्रतिक्रिया कटु-अप्रिय बात सुनकर कैसी हो इस पर उक्त सीख है। साधु-संत-हरिजन की पहचान है कि वह स्वयं कटु बानी का प्रयोग न करे और यदि कोई दूसरा उसे भला-बुरा कहे तो उसे समदृग्भाव से सहन कर ले। क्रोध-रोष का मूल अहंकार ही है। जो 'स्व' (सेल्फ) का पक्षधर है—वही पर को गाली दे सकता है। साधु को समझना चाहिए कि सामान्य व्यक्ति अज्ञानी होता है—वह दुर्वचन बोल सकता है। ज्ञानी-भक्त-सज्जन को जवाब में कुशब्द-दुर्वचन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। साधु ऐसी बानी बोले जिससे कोई उत्तेजित-प्रक्षिप्त-व्यस्त न हो, जिससे किसी की शीतलता न जाय। संतुलन ही साधुत्व है। कबीर की साखियाँ उपनिषदों की सूक्तियों से आज अधिक उपादेय हैं। वे बताती हैं कि हम सत्य-विनम्रता-श्रद्धा-प्रेम-तत्परता-समर्पण-सेवा को जीवन में कैसे उतारें। कबीर अध्यात्म के बल पर मनुष्यमात्र को सुखी बनाना चाहते हैं। आज कबीर ऐसे व्यावहारिक-आध्यात्मिक संत-वैष्णव-कवि की अपेक्षा है जो संसार को कटुता से मुक्त कर उसे समता का पाठ पढ़ा सके। समता-समरसता-एकता के लिए अपेक्षित है उदारता।

कबीर जिस समता-समदृष्टि की सीख देते हैं वह वैष्णव का परमधर्म है। भगवान् श्रीमद्भागवत में कहते हैं—

> जिनकी बुद्धि समदर्शिनी है और हृदय पूर्ण रूप से मेरे प्रति समर्पित है उन साधु पुरुषों के दर्शन से बन्धन होना ठीक वैसे ही संभव नहीं है जैसे सूर्योदय होने पर मनुष्य के नेत्रों के सामने अंधकार होना :

> **साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।**
> **दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥** 10।10।41

———

The national ideals of India are Tyaga–Sacrifice and Seva—Service. Intensify her in those channels and the rest will take care of itself.

—स्वामी विवेकानन्द

१६. व्यावहारिक जीवन : विवेक-ज्ञान की कसौटी

कबीर का अध्यात्म व्यवहार पक्ष से संबंधित है—कबीर जीवन की सफलता की कसौटी संसार मानते हैं। उनकी हरि-भक्ति मानव-भक्ति है। उनकी हरिप्रीति जनजन-प्रीति है। कबीर का सहज जीवन उनकी परिशुद्धता है। राम-कबीर राममय हैं, अभेदमय हैं, उनका आनंद सब का आनंद है—वे आतुर हैं सबको उस आनंद-आत्मसुख की अनुभूति कराने के लिए। वे बाँटना चाहते हैं अपनी मस्ती, अपनी ज्योति। वे सुख, संग्रह में नहीं वितरण में मानते हैं—उनका अपना कुछ नहीं है जो कुछ है सब 'उसका' है, इसलिए वह सबका है। मानव-मात्र सम है कोई भेद नहीं—वे मानते हैं कि सब को अधिकार है निश्चित जीवन बिताने का, दुःखरहित जीवन जीने का।

कबीर संसार को वह विवेक-ज्ञान 'विज़डम' देना चाहते हैं जो उन्हें पूर्ण बनाता है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों संतुष्ट हों, जिससे असमानता मिटे, जिससे मानव छल-छद्म-चतुराई-ठगी छोड़कर सबका हित करे। उनकी एक ही दृष्टि थी कि मनुष्य के भीतर यदि प्रकाश होगा तब वह दूसरे को प्रकाश दे सकेगा। व्यक्ति स्वयं अच्छा बने, निर्मल बने, शिष्ट-उदार, 'नाइस' बने तभी वह कृत्रिम शिष्टाचार को छोड़कर सहृदय बन सकेगा। कबीर भौतिक जगत् की सीमाओं को जानते हैं पर यह मानते हैं कि अभ्युदय के लिए भी अध्यात्म अपेक्षित है—नैतिकता आधार होगा तभी मानव भ्रातृभाव की ओर बढ़ सकेगा। कबीर चाहते हैं कि मनुष्य एक साथ जगत् और परमार्थ दोनों पर ध्यान रखे। केवल भौतिक दृष्टि नैतिकता के विकास में बाधक है। भौतिकता के प्रति आकर्षण से मनुष्य कर्त्तव्य-कर्म से हट जाता है और समाज का जीवन संतुलित नहीं रह जाता है। सम्पूर्ण जीवनदृष्टि 'विज़न' वही है जिससे इहलोक और अध्यात्मलोक दोनों में तालमेल बैठ सके। अध्यात्म के बिना यह संसार स्वार्थी लोगों की दुनिया हो जायगी और इस संसार के बिना अध्यात्म का कोई मूल्य नहीं—अध्यात्म का निकष संसार है और संसार का आधार सत्य है। कबीर जानते हैं कि इस पंचभौतिक शरीर में सत्य-ब्रह्म-परमात्मा का निवास है—मनुष्य को दोनों की रक्षा करनी है और यह तभी संभव है जब ज्ञान, सत्कर्म, सहृदयता के साथ जिया जाय।

कबीर का परमार्थ स्वर्ग के प्रति आकर्षण नहीं—वह परलोक के सुख से संबंधित नहीं। कबीर मानते हैं मनुष्य यहीं—इस धरती पर स्वर्ग बनावे अपने शुभ विचारों-कर्मों से। स्वर्ग यहीं है यदि हम उसकी अनुभूति करें और वही करें जिससे व्यक्ति और समाज स्वर्ग का सुख ले सके। कबीर मानते हैं कि इस दुनिया को छल-छद्म से मुक्त करना होगा और यह तभी संभव होगा जब प्रत्येक व्यक्ति अपने को सतत परिशुद्ध करे और इस बात का प्रयास करे कि उसे स्वार्थ की

भावना न सतावे। मनुष्य 'मैं' 'मेरा' को केन्द्र में न रखे, केन्द्र में 'पर' को रक्खे। परोपकार-परसेवा की भावना से ही हृदय निर्मल बन सकेगा। इस धरती पर ही पूर्ण बनना है—इसके लिए योग-भक्ति-कर्म किसी मार्ग को अपनावे। हिंदू-मुसलमान सभी को अधिकार है पूर्णत्व पान का और सबको बाह्य पूजा पद्धति की जगह अन्तरंग शुद्धि की ओर ध्यान देना चाहिए। बाह्य आचार को महत्त्व देने से भीतर की नैतिकता छूट जाती है—अतः हमारा लक्ष्य होना चाहिए आत्मिक उन्नति अर्थात् सहजता—निष्कपटता। कर्मकाण्ड हमारा ध्यान शुभ-श्रेय से हटाकर बनावटी जीवन पर केन्द्रित करता है। बाह्याचार आवरण बन जाते हैं लोगों को ठगने—धोखा देने के। कबीर पंडित-ज्ञानी उसे मानते हैं जो समदृष्टि वाला हो, वे मुल्ला उसे मानते हैं जो मन पर काबू रखे। उनके हिंदू-मुसलमान की कसौटी एक ही है सच्चे दिल से परमसत्य को मानना और नैतिकतापूर्ण जीवन जीना। कबीर संसार से पलायन की बात नहीं करते हैं। वे संसार की समृद्धता चाहते हैं पर आध्यात्मिकता छोड़कर नहीं। समाज का सच्चा सुख लोभ-क्रोध-अहंकार से संभव नहीं। हम क्रोध करते हैं जब हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं होती—इच्छा बुरी हो या अच्छी उसके साथ आसक्ति क्रोध, व्यस्तता का कारण बन जाती है। कर्त्तव्य करें कर्त्तव्य समझकर, निसंग होकर। यदि हर एक अपनी आसक्ति की पूर्ति में लगेगा तो शुभ संभव ही नहीं। 'आप सवारथी' नहीं, 'राम सवारथी' बनें यही कबीर का व्यावहारिक जीवन है। यही उनका ज्ञान—'विज़डम'—है। आज इस 'विज़डम' की कितनी अपेक्षा है यह राष्ट्रनायक स्व० पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में इस प्रकार है—

"We grow in learning, in knowledge and in experience, till we have such an enormous accumulation of them that it becomes impossible to know exactly where we stand. We are overwhelmed by all this and at the same time, somehow or other we have a feeling that all these put together do not necessarily represent a growth in the wisdom of the human race.

I have a feeling that perhaps some people who did not have all the advantages of modern life and modern science were essentially wiser than most of us are whether or not we shall be able in later times to combine all this knowledge, scientific growth and betterment of the human species with true wisdom, I do not know."

—जवाहर लाल नेहरू

प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र का उत्तरदायित्व है कि वह आनेवाली पीढ़ी को सच्चरित्र और धर्म पर आधारित अभ्युदय के लिए तैयार करे। कबीर की कसौटी सम्यक् चरित्र है। कबीर जीवन भर जुटे रहे अपने लक्ष्य की पूर्ति में। यह उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

१७. कबीर का अद्वैत भाव

कबीर मानवी सम्बन्धों के भक्त-कवि हैं। वे स्वामी के प्यार पर मुग्ध होकर कहते हैं—

> कबीर कूता राम का मोतिया मेरा नाउँ।
> गलै राम की जेवड़ी जित खैंचै तित जाउँ ॥ 14—लै कौ अंग

मालिक उनको 'मोती' कहता है—यह स्वामी के प्यार का पर्याय है। 'मुतिया' 'मुक्त' के अर्थ में नहीं जैसा डॉ० गुप्त ने अपनी टीका में किया है। मुक्त अर्थ करने पर कबीर जिस प्यार को व्यक्त करना चाहते हैं वह सम्भव नहीं होगा। कबीर-काव्य में प्रेम सर्वोपरि है, मुक्ति नहीं।

कबीर के गले में जो जेवर है वह रस्सी प्रेम की है, भावभगति की है, हरिदास की है। उनका मालिक **'माधौ'** है, **'राम'** है, **'हरि'** है। मन को भगवान में लगाने के लिए प्रेम की जेवर अनिवार्य है। भक्त प्यार का भूखा होता है—प्यार कोई अव्यक्त नहीं दे सकता। भक्ति भावना का फल है; भावना के लिए आलंबन चाहिए। अनुभाव, आलंबन बिना संभव नहीं। आलंबन से सजीव सम्बन्ध होना ही आनन्द है। इस दृष्टि से कबीर-सूर-तुलसी एक ही श्रेणी में हैं। जायसी जिस प्रेम की बात करते हैं वह भी साकार से ही सम्बन्धित है—प्रेम-प्यार के लिए प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों की अपेक्षा है। मिलन का सुख और विरह का दुःख किसी देहधारी से ही होता है। कुत्ते के गले में जंजीर या रस्सी डालकर मालिक उसे अपने काबू में रखता है—मालिक से वह एक प्रकार से बँधा रहता है। 'मानक हिंदी कोश' में कुत्ता का लाक्षणिक अर्थ तुच्छ, दुष्ट, लुच्चा या लोभी दिया गया है पर श्वान-वृत्ति, मुद्राराक्षस और मनुस्मृति में, स्वामी की सेवा-वृत्ति है। 'कुत्ता' को स० कुक्कुर से व्युत्पन्न बताया गया है जो अशुद्ध है—'कुत्ते' (प्राकृत) से हिन्दी मराठी-गुजराती में कुत्ता-कूता आया है। यह ध्वन्यात्मक शब्द है।

कबीर कूता राम का कबीर की भक्तिभावना को सम्यक् समझने में सहायक है। कबीर का राम भले ही अव्यक्त हो पर कबीर ने उसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा है वह सगुणोपासना का है। जहाँ भी प्यार-सेवा-शरणागति की अभिव्यक्ति है वह शरीरधारी राम से ही है। मन को बाँधने के लिए प्रेम से बढ़कर कोई जंजीर नहीं—उसे स्थिर करने के लिए प्रेम ही एकमात्र उपाय है। जब राम से प्रेम लग जायगा तब व्यक्ति संसार से न बँधेगा। कबीर का पद है—

> धोरौ मेरे मनवां तोहि धरि टांगू।
> तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूं खांगू ॥
> प्रेम जेवरिया तेरे गलि बांधू। तहां लै जाउं जहाँ मेरौ माधौ।

काया नगरी पैसि किया मैं बासा । हरिरस छाड़ि विषैरसि माता ।
कहै कबीर तन मन का वोरा । भावभगति हरि सूँ गठजोरा ।। 11 आसावरी

मन और खसम (स्वामी, परमात्मा) में जो मेल होना चाहिए वह न हो तो अशांति है । भावभगति उस अद्वैतता की प्राप्ति के लिए ही है । परमात्मा अथवा स्वामी इस घट (काया) में है । उससे प्रीति करने पर हरिरस मिलता है । पर, मन उससे प्रीति न कर विषय-रस का स्वाद लेता है । विषय-रस अंततः पतन का कारण है इसलिए राम-खसम से गाँठ जोरना चाहिए । भक्त को पातिव्रत धर्म स्वीकारना चाहिए—सदा सेवक भाव । कबीर का खसम माधव है, राम है । राम से कबीर का सम्बन्ध प्रेम का है । प्रेम मनुष्य का मूल स्वभाव है—वह प्यार करना चाहता है और चाहता है कि उसे कोई प्यार करे । यह प्यार की वृत्ति जीवन के आनन्द के मूल में है । कबीर इसीलिए कहते हैं कि प्रेम का रिश्ता उस खसम से करो जहाँ नित्य आनन्द है । उसकी इच्छा का अनुसरण करो जैसा कुत्ता मालिक का अनुसरण करता है । एक बार गाँठ जोरने पर उसकी मर्यादा की रक्षा करना पति-पत्नी दोनों का धर्म है । कबीर का माधव-हरि अपने भक्त की उसी प्रकार फिक्र करता है जैसे पति को करनी चाहिए । मालिक का उत्तरदायित्व है कि वह अपने आश्रित को अभाव न होने दे । चाकर को कोई फिक्र नहीं । यही भक्ति है । कबीर का राम-माधव अव्यक्त है पर प्रेम के लिए वह व्यक्त है । भक्त की भाव-भगति अव्यक्त को व्यक्त करने में समर्थ है :

धीरौ मेरे मनुवां, तोहि धरि टांगू ।

'धीरौ' अर्थात् रुको, ठहरो, मैं अब तुम्हारा उपाय करता हूँ—जब तू स्वामी की सतत चेतनता छोड़कर इधर-उधर भागता है तो मैं तुम्हें इष्ट से ऐसा सम्बन्धित कर दूँगा बस तुम वहीं अँटके रहोगे । यह उद्‌बोधन बड़ी ही प्राणवंत शब्दावली में है । कबीर की भाषा सधुक्कड़ी नहीं, संयत-परिमार्जित-प्रभविष्णु है—वह उनकी भाव-भंगिमा को सम्यक् व्यक्त करने में समर्थ है । उनसे कोई भी साधक बल प्राप्त कर सकता है । कबीर आत्मचिंतक हैं, अंतर्मुखी, हैं जागरूक हैं—'तागा ज्यों टूटे त्यौं जोरि' का पूरा-पूरा अमल है उनकी बानी में ।

कबीर की भाषा तत्कालीन जनभाषा से जुड़ी है—प्राकृत-अपभ्रंश से विकसित हिन्दी बोली अपना विशिष्ट रूप ले चुकी थी । 'धीरा धर' अवधी का प्रयोग है । माँ जब बच्चे को डाटती है और मारने को धमकाती है तो कहती है, 'अच्छा धीरा धरा, तोहार हम नसियइ तोरिथि, अथवा—तोहका मजा चखाइब, अथवा मरम्मत करिथि ।' यही डाट-फटकार कबीर मन को सुना रहे हैं; अच्छा रुको, अब तुम सीधे नहीं मानोगे मैं तुम्हें टाँग देता हूँ, तुम्हारी यही सजा है—तुमने स्वामी की सेवा में त्रुटि की है—तुम्हारे गले में ऐसी रस्सी बाँधता हूँ कि तू छुड़ा न सकेगा और तुमको मालिक के पास ही रहना होगा । चेतनता छोड़ने की यही सजा है—स्वामी को भुलाना उसकी सेवा में खामी है ।

साधु-सन्त मन को सम्बोधन में **मनवाँ-मनुवाँ** कहते हैं । **टाँगना**—अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी है : गु० टाँगवुँ; मराठी टाँगणे, मै० टाँगब; ओड़िया टाँगिबा । 'मानक हिन्दी कोश' में **टँगना** को 'टंकण' से विकसित बताया गया है जो अशुद्ध है। **धरना**—रखने-पकड़ने के आशय में अवधी में है—'धरपकड़' एक साथ भी प्रयुक्त होता है । सं० धरति (धृ=पकड़ना) से इसका सम्बन्ध है । **धरना** में रखना का अर्थ विकसित हुआ—सामान्यतः कोई वस्तु पकड़कर कहीं रखी जाती है । मन को अँटकाने के लिए कोई सहारा चाहिए, वह सहारा है प्रेम । प्रेम की **जेवर** से उसे बाँधकर टाँगा गया है । ऋग्वेद में **जिया** धनुष प्रत्यंचा के लिए है । **जीवा** भी इसी अर्थ में कोशों में है । **जेवर-जेवरी** सं० जीवा से विकसित है । पंजाबी जेउड़ी-जेउड़ा, नेपाली जिउरी, बिहारी जउरी, अवधी जेवर-जेउरी; **जेवरिया** । सामान्यतः आलोचकों ने कबीर की भाषा को पंजाबी प्रभावित माना है पर अवधी प्रयोगों की बहुतायत है ।
समस्त संत साहित्य में—भक्त की यह लालसा है कि जहाँ उसका प्रिय हो वहीं वह रहे। कबीर की भी यही लालसा है—

'तहाँ लै जाऊँ जहाँ मेरौ माधौ ।'

भावभगति का संयुक्त प्रयोग मेरे बाबा नारायणदास बहुधा करते । वे परम वैष्णव थे । नित्य मंदिर जाकर भगवान की पूजा-अर्चना करना उनका नियम था । भक्ति बिना भाव सम्भव नहीं इसलिए **भावभगति** का संयुक्त प्रयोग है । **गठजोरा** (गाँठ जोरना) भी अवधी है । विवाह गाँठ जोरकर ही सम्पन्न होता है यह अद्वैतता का प्रतीक है ।

कबीर कूता राम का प्रतीक है प्रेम की अभिव्यक्ति का । प्रिय के साथ जो सम्बन्ध है उसे कैसे व्यक्त किया जाय—प्रेम का रूप देने के लिए एक बिम्ब की अपेक्षा है । कबीर अपने भगवान के प्रति पूर्ण समर्पित हैं—उनकी खुशी में अपनी खुशी है—वह जैसे भी रखता है सर्वोत्तम है । यही भाव पूर्ण शांति दे सकता है । मालिक को अपने कूते की फिक्र करनी ही पड़ती है । वह भूखा रहे पर अपने आश्रित को वह भूखा-नंगा नहीं देखना चाहेगा । ऐसा है वह मालिक । और कूता भी ऐसा है जो प्यार के वश दुम हिलाता हुआ मालिक के पास जमा रहता है—उसी के साथ खेलना-कूदना चाहता है । उसका सारा रंग सीमित है स्वामी के लिए । वह स्वामी के प्रेमी-भक्तों को भी प्यार करता है—उनकी उपस्थिति में वह रस लेता है । वह जान जाता है कौन स्वामी का अपना है और कौन उससे भेद करने वाला है ।

प्रेम का कोई रूप हो, कोई सम्बन्ध हो उसके मूलभाव को पकड़ना होगा—उसकी गहराई को छूना होगा तभी प्रेम का अमृत रस मिलता है । सन्त के प्रेम सम्बन्धी ये प्रतीक, ये बिम्ब शब्दों की अभिधा से नहीं पकड़ में आ सकते—

अभिधा से परे जो व्यंजना है वहाँ पहुँचना होगा—गंगा के किनारे-किनारे चलकर गंगोत्री पहुँचना होगा। जंजीर मुक्ति का साधन है क्योंकि बिना बंधे न मालिक मिलेगा और न वह दिव्यप्रेम—बिना शरीर, आत्मा का अस्तित्व प्रकट होने से रहा अतः बंधन मुक्ति के लिए। जो जंजीर में नहीं बँधना चाहता वह प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम, त्याग-तप-कष्ट माँगता है। यही उसका बंधन है। बिना गाँठ जोरे पातिव्रत धर्म हो ही नहीं सकता। पहले बंधना सीखना होगा। जब बंध गये तब प्रत्येक स्थिति दिव्य बन जाती है। बंधन न हो तो नौकर मालिक को और मालिक नौकर को छोड़कर किनारे हो जाय। पर, जिसने गाँठ जोरने की लज्जा समझी है वह पानी-पाथर कुछ पड़े प्रत्येक स्थिति में प्रेम को निबाहता है बलिक यों कहें प्रेम स्वतः निभता जाता है उसके लिए प्रयास-प्रयत्न नहीं करना पड़ता। बंधन यौवन में भी अभीप्सित है और वृद्धावस्था में भी। जहाँ बंधन स्वीकार नहीं वहीं तलाक-अलगाव। भेद का विलीनीकरण बंधन से ही सम्भव है। गले में प्रेम की जेवरी डाल लो फिर तो आनन्द ही आनन्द है। विपत्ति से विपत्ति पड़े दो गंठजोरे साथी अलग नहीं हो सकते। उनका सुख एक दूसरे से मिलकर रहने में ही है। प्रेम अद्वैत का फल है।

कबीर की हिम्मत की दाद देनी चाहिए जो खुले आम स्वीकार करता है अपनी गुलामी को। वह चिल्ला-चिल्लाकर भूँकता है कि मैं राम का हूँ—अपने मालिक का हूँ। मेरा नाता केवल उसी एक से है और उसी के नाते सभी मेरे हैं जो उसके हैं। जिसके-जिसके गले में प्रेम की साँकर है वे सब हमी हैं। उस 'एक' को समझ लेने पर कोई पराया नहीं क्योंकि वही तो सब में है और सब उसी में है। यह है रहस्यवाद कबीर का। कबीर का रहस्यवाद मानवतावादी है। **'साँची सगाई राम की'** माननेवाला अपने को कूता ही कहेगा। **राम** प्रतीक है प्रेम के दिव्य रूप का—वह कोई व्यक्ति नहीं। वह अरूप है पर है प्रेममय। यह विरोधाभास सत्य का ही अंग है।

आज भौतिक युग में—एकता के सारे उपायों के बावजूद—हम अनेक होने में सुख मान रहे हैं। फलतः प्रेम के बाह्य रूप अथवा उसकी चमक-दमक नष्ट होते ही साथ छोड़कर अलग खड़े हो जाते हैं—मानों कभी हमारा नाता ही न रहा हो। भौतिक दृष्टि तलाक का पोषण करती है जबकि अध्यात्म ऐक्य का मंत्र है। यदि हम पारिवारिक बंधन, जातीय बंधन, राष्ट्र का बंधन, मानवता का बंधन छोड़कर समता-सर्वोदय की बात करते हैं तो यह एक स्वांगमात्र है। कबीर बनें तभी **साँची सगाई राम की**।

कबीर की भाषा 'अनुभौ' (अनुभव) की भाषा है उसके साथ कल्पना स्वयं जुट जाती है। उसका अलंकरण उसकी सादगी है। कबीर की भाषा प्रेम की है, उसका शृंगार प्रेम है। दिव्य सौन्दर्य को अलंकरण की अपेक्षा नहीं। वह स्वयं दीप्त

होता है। जो बल **'कबीर कूता राम का'** में है वह आभिजात्य काव्य में संभव नहीं। कबीर की भाषा हृदय की पुकार है—माँ की बानी है जो केवल प्यार जानती है, वह जननी की विह्वलता है जिसमें केवल भाव का सौंदर्य है। भाव का पारखी ही कबीर की भाव-भगति को समझ सकता है—काव्य, विश्लेषण की वस्तु नहीं अनुभव की चीज है।

कबीर-युग प्रेम का, समर्पण का युग था—भेद में अभेद की तलाश का युग था। भारतीय अद्वैतवाद कबीर-जायसी के हाथों विकसित हुआ और उसी का फल है भारतीय संस्कृति समस्त जगत् को आध्यात्मिक दृष्टि देने में समर्थ है। यदि यह अद्वैतवाद न होता तो न भारतीय संस्कृति रह जाती, न आर्य संस्कृति, न हिन्दू संस्कृति। कबीर-जायसी मुसलमान थे पर उन्होंने भारतीय दृष्टि को अपनाया और हिन्दू-मुसलमान दो धर्मों में—दो समाज में—वे सेतु का काम कर सके। कबीर-जायसी संतों के कारण ही मुसलमान, विदेशी होते हुए भी, प्रेम की जंजीर से बँध गए और अकबर के काल में, संतों का अभेदवाद सामाजिक एकता का प्रभविष्णु साधन बन गया। **'भावभगति हरि सूं गठजोरा'** में इच्छा-क्रिया और भावात्मक प्रयास तीनों उपादान सम्मिलित हैं। भाव (फीलिंग-इमोशन) बल है कार्य-सिद्धि में। जो हम चाहते हैं उसे पूरी लगन से, पूरे जोश से, पूरी भक्ति से चाहें। भक्ति के लिए भाव अनिवार्य है।

एक और विशिष्टता है इन संतों की सहज साधना में। इनका प्रेम स्वार्थ रहित है। स्वार्थ सिद्ध न होने पर प्रेम टूट जाता है पर निःस्वार्थ प्रेम एकरस रहता है। कबीर और कुछ नहीं चाहते, एक ही तमन्ना है कि मन मद सदा माधव से जुड़ा रहे—**तहाँ लै जाउँ जहाँ मेरौ माधौ।**

इन संतों के अवचेतन मन में कहीं हीन भावना (इनफीरियारिटी कम्पलेक्स) नहीं। इनमें सुदृढ़ आत्म-विश्वास है राम को प्राप्त करने का। कहीं कोई हिचक नहीं—कहीं कोई दुराव-छिपाव नहीं, कहीं कोई संदेह नहीं, कहीं कोई आवरण नहीं। कहीं 'हतास' का भाव नहीं और न मुसलमान शासकों के प्रति आक्रोश है।

अव्यक्त से प्रेम करने का एक लाभ यह है कि भक्त सदा आश्वस्त है। ऐसा प्रेष्ठ जिसके प्रति कोई उलहना संभव ही नहीं, जिससे न पटने का प्रश्न ही नहीं। हाँ, हम जितनी गहराई से उसे चाहेंगे उससे अधिक गहराई से वह हमें प्यार देगा। वस्तुतः हमारे विचारों की शक्ति ही हमें लौटकर मिलती है। संतों में इच्छा-विचार लगन की शक्ति थी—वे लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं देखते थे।

कबीर-काव्य का वैशिष्टय अलंकार-छंद योजना-चमत्कार में नहीं, उसका लावण्य (चार्म) उसके ऋजुत्व में है। उसकी श्री कवि के भीतर बहनेवाली आत्म-विश्वास-श्रद्धा की धारा है, उसका सौंदर्य उसके श्रेयस् भावों में है; उसका रसत्व उसके प्रेमतत्व में है। जहाँ समर्पण ही सब कुछ है। संत-काव्य का सौंदर्य बाह्य नहीं

आभ्यंतरिक है जैसा स्थायी सौंदर्य का होता है। चमक-दमक की चकाचौंध भले ही नहीं इस कविता में पर मनोवैज्ञानिक शक्ति और नैतिकता से यह पूरी है। संतों ने जीवन जिया है। संतकाव्य एक जीवन-पद्धति है जिसका निकष आत्मानुभूति-स्वानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति है। संत प्रेमी जीव हैं। उनका प्रेम इनकी रचनाओं में भरा है— इसे हरिरस कहें, हरिरंग कहें, रामरस कहें। इसका कोई शास्त्रीय नाम नहीं। इन काव्यों का बल न शब्द में है न अर्थ में है— बल है तो भाव में। इनमें वीर-वीभत्स-भय आदि नवरस नहीं ही होंगे। इनका एक ही रस है प्रेम—निस्स्वार्थ प्रीति। इन काव्यों में स्वामी-सेवक का, सखा-सखा का, पिता पुत्र का, पत्नी-पति का संबंध है—सर्वत्र प्रेम रस।

कबीर कूता राम का—राम व्यक्त भी है और अव्यक्त भी, वह ब्रह्मांड भी है और ब्रह्म भी। ब्रह्माण्ड और ब्रह्म में अद्वैत का सम्बन्ध है—जहाँ द्वैत दिखाई पड़ता है वहाँ अद्वैत है प्रच्छन्न रूप से। अद्वैत से द्वैत और द्वैत से अद्वैत—मूल से पत्ते तक और पत्ते से मूल तक दोनों ही बोध अनिवार्य हैं समग्र की अनुभूति के लिए। कबीर का राम चराचर में व्याप्त है—चराचर ही राम है। मूल शक्ति और उसका विस्तार दोनों में एकता को देखनेवाला ही अभेद-अद्वैत का भक्त है। जो राम का सेवक है वही जन का सेवक हो सकता है और जो जन-सेवक है वही राम सेवक है—यही भारतीय अद्वैतवाद है।

कबीर का प्रत्येक सबद उनकी बेचैनी को प्रकट करता है—वे कभी हिंदुओं की दुर्बलता को उजागर करते हैं, कभी मुसलमानों की संकीर्णता को। राम-रहीम की एकता, भगवान-अल्लाह की एकता पर उनका बल है। रूप अनन्त है पर मूल एक। कबीर के समय में सबसे प्रमुख समस्या थी हिन्दू-मुसलमान के मिलकर प्रेम से रहने की। उसके लिए अद्वैत-दर्शन ही उपचार था। कबीर उसी के प्रचारक थे। उनका वसूल था कि प्राणी सेवक है राम के व्यापक विश्व का; इससे अधिक उसे और कुछ नहीं मानना चाहिए अपने को। स्वामी का और उसकी सृष्टि का जिसमें कल्याण हो वही करना है भक्त जन को। यदि मनुष्य अपने को स्वामी मानकर चले तो वह अहंकार का शिकार हो जायगा और फिर अहंकार के साथी जुटकर उसके व्यक्तित्व का विनाश कर देंगे। अहंकार से मुक्ति का मार्ग है सेवा भाव। जो सेवक हनुमान है उसे अहंकार छू भी नहीं सकता। सेवा के साथ अहंकार कहाँ? व्यक्तित्व के विकास, आत्मसाक्षात्कार, एवं मानवता के उत्थान के लिए सेवक-भाव को ग्रहण करना होगा।

अतः, कबीर का कूता-भाव अद्वैतवाद से पुष्ट है। आज हम सेवक का ढोंग रचते हैं पर सेवक नहीं बनते। हम कुरसी के लिए हाथ जोड़े खड़े रहते हैं सेवा के लिए नहीं। यह छद्म सच्चा सेवक नहीं कर सकता। सच्चा सेवक नेता नहीं 'कूता' बनना चाहता है। वह जन-जन का होना चाहता है—जनता का प्रेम

जनता का हित, उसे जहाँ ले जाय। **'गले राम की जेवड़ी'** का यही भाव है। राम की जेवड़ी प्रेम की जेवड़ी, जन-जन की सेवा की जेवड़ी है। भक्त का मालिक जन-जन है। सेवक का स्वामी प्रत्येक प्रजा है। सच्चा प्रजातंत्र यही है—प्रजातंत्र अद्वैतवाद दर्शन के बिना संभव ही नहीं। कबीर मानवमूल्यों के महाकवि हैं। वे बिना लाग-लपेट के सचाई कहने में सिद्ध हैं।

कबीर कूता राम का—कबीर की विनम्रता, उनकी अहंकारहीनता की अभिव्यक्ति है। कुत्ता स्वामिभक्त होते हुए निकृष्ट पशु माना जाता है क्योंकि वह दर-दर का जूठन खाता फिरता है, सब उसे दुर-दुर कहकर दुरियाते हैं। कबीर मानते हैं कि समाज उनके आदर्श-धर्म का सामान्यतः स्वागत नहीं करेगा—हिंदू मुसलमान सब उन्हें दुरियायेंगे। पर, उन्हें इस उपेक्षा से सरोकार नहीं—वे स्वयं अपने को 'कुत्ता' कहते हैं। कबीर का भाव है कि मैं निकृष्ट हूँ, दोषों-विकारों से भरा हूँ, दर-दर की ठोकर खाता हूँ पर मैं हूँ अपने मालिक का। मुझे उसकी चाकरी मिले बस यही मेरे लिए सब कुछ है। मैं अपने स्वामी का सेवक बनने में ही गौरव मानता हूं। भक्त वही है जो अपने को नगण्य माने—विनय-विनम्रता (सेल्फइफेसमेंट) पहली शर्त है भक्ति की।

प्रेम की जंजीर जिसके गले में पड़ी हो वह भटक सकता ही नहीं—प्रेम ही सेतु है स्वामी और सेवक में। कबीर का स्वामी आतंक से नहीं प्रेम से अपने सेवक को बस में किए रखता है। जहाँ प्रेम है वहाँ द्वैत कहाँ, भेद कहाँ—कोई भी रिश्ता मान लें। पर, सेवक बनना सबसे सच्चा सम्बन्ध है क्योंकि सेवक अपने अहं की तुष्टि के लिए कुछ नहीं करता। उसका मन अपने में नहीं अपने प्रिय स्वामी में लगा होता है। जब मन को बाँध दिया है प्रेम रज्जु से तो अद्वैत-आनन्द की धारा बहेगी ही।

The sense-bound man with his time-bound life is not the highest excellence that man is capable of. In religion man seeks and finds something beyond the world of eonditioned existence. After experiencing the pleasure, power and knowledge available in his sense-bound existence, man reaches after the supersensual.

—स्वामी रंगनाथानन्द

१८. भेद का मूल : अहंकार

कबीर के अनुसार ममता छोड़कर 'समिता' में समाना ही ब्रह्म ज्ञान है—ममता आसक्ति है और समिता 'मैं', 'मेरा' छोड़कर अभेदभाव है। ममता स्वामित्व को जन्म देती है और स्वामित्व भाव अहंकार का मूल है। ममता आपा (अहंकार) है। कबीर काव्य आपा को मिटाने का उपनिषद् है। जगत् की पीड़ा ममता के ही कारण है—अनासक्त रहो मौज करो। अनासक्ति के लिए समर्पण योग ही एक मात्र साधन है, यही भक्ति है। कबीर रामानन्दी वैष्णव थे—उनका धर्म समर्पण है। वे सच्चे रामदास थे। हरिदास पूर्ण समर्पित होता है राम के प्रति। यह समर्पण ही मुक्त करता है भक्त को। कबीर का अनुभव है—

एक कबीरा न मूवा जिनके राम अधार ॥41.7

हरिभगत को अपना बल नहीं इसलिए उसे आपा—अहंकार नहीं—वह तो घास की तरह विनम्र शीलवान् रहता है—

कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या ज्यूं पाऊँ तल घास ॥ 41.13

जहाँ विनम्रता है, शील है वहाँ न अहंकार, न स्वामित्व :

कबीर आपा मेट्या हरि मिलै हरि मेट्या सब जाइ। 41.10

अथवा, **कबीर मन मारया ममिता मुई अहं गई सब छूटि ॥**

ममता आसक्ति मर जाने पर व्यक्ति संसार में मृतकवत् रहता है—वह उदास रहेगा ही संसार से। कबीर के **'जीवत मृतक होइ'** का यही आशय है।

कबीर घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ। 41.4

'घर' ममता का प्रतीक है। घर जलाने वाला—अहंकार को निर्मूल करनेवाला—ही असली घर (परमपद) को प्राप्त करता है :

कबीर जींवन थैं मरिबो भलौ जो मरि जाणै कोइ।
मरनैं पहली जे को मरै तो कलि अजरावर होइ ॥ 41.8

अजर-अमर की पहचान है स्वार्थ-त्याग। मेरा कुछ नहीं है—जो है सब उस ईश्वर का। इसलिए मन को, ममता को, संकीर्णता को छोड़े। जिसने इसे सिद्ध कर लिया वह अमर है—आत्मज्ञानी है। वही हरिभक्त है। कबीर ऐसे ही महात्मा हैं :

कबीर ममता मेरा क्या करै प्रेम उघाड़ी पौलि।

अहंकार के दूर होते ही—

दरसन भया दयाल का सूल भई सुख सौड़ि। 5.48

'सेल्फ इनटरेस्ट' क्रोध-ईर्ष्या-द्वेष का मूल है—वह विकारों का सम्राट् है। उसको जीतनेवाला निर्द्वन्द्व विचरता है। अहं को मारने पर, आध्यात्मिक दृष्टि से, पुनर्जन्म होता है इसीलिए संत कहता है कि जीवन रहते जो मरना जानता है (अहं को मिटाना जानता है) वह मृत्यु नहीं प्राप्त करता। शरीर-मन-इन्द्रियों के साथ बँधना मृत्यु है।

अहंकार भेद-दृष्टि का मूल है। श्रीमद्भागवत (11.22.32-33) में भगवान कृष्ण कहते हैं :

> "अहंकार के तीन भेद हैं—सात्त्विक, तामस और राजस। यह अहं भाव ही अज्ञान और विविधता का मूल कारण है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। उसका इन पदार्थों से न तो कोई सम्बन्ध है और न उसमें कोई विवाद की बात है। अस्ति-नास्ति (है-नहीं), सगुण-निर्गुण, भाव-अभाव, सत्य-मिथ्या जितने भी वाद-विवाद हैं सब का मूल कारण भेद दृष्टि है।
>
> जो लोग मुझसे विमुख हैं वे इस विवाद से मुक्त नहीं हो सकते।"

कबीर इसी सांसारिक भेद-भाव से मुक्ति की बात करते हैं। कबीर रामभक्त हैं। रामभक्त होने से ही वे कहते हैं **'ममिता मेरा क्या करै।'** भागवत में भगवान् यही तो कहते हैं कि अहंकार से मुक्ति पाने का एक ही मार्ग है मुझमें मन लगाना—अपने तन-मन को मुझे समर्पित कर देना। जहाँ समर्पण है वहाँ अधिकार का प्रश्न नहीं। अधिकार का भाव ही अहं है। अहं है तो तर्क संशय मिटेगा नहीं। कबीर का अनुभव है—

जब लग भाव भगति नहीं करिहौ तब लग भवसागर क्यूँ तिरिहौ।

तथा, **भाव भगति बिस्वासु बिनु कटै न संसै सूल।**
कहै कबीर हरिभगति बिन मुकति नहीं रे मूल॥ 7.4

चौपदी रमैणी

In the Eeast, especially in India, the metaphysical thinkers have tried, as in the West, to determine the nature of the highest truth by the intellect. But, in the first place, they have not given to mental thinking the supreme rank as an instrument of the discovery of truth, but only a secondary status. The first rank has always been given to Spiritual intuition and illumination and spiritual experience; and intellectual conclusion that contradicts this supreme authority is held invalid. —श्री अरबिन्दो

१६. कबीर : धर्म-दर्शन-संस्कृति के सूर्य

कबीर ऐसा व्यक्तित्व और कबीर-काव्य ऐसा काव्य पूरे भारतीय वाङ्मय में नहीं है। कबीर क्या नहीं थे ? वे क्या थे ? यह कहना बुद्धि से बाहर है। कबीर निर्गुणवादी थे, सगुणवादी थे, भक्त थे, प्रेम के उपासक थे, योगी थे, कर्मपरायण गृहस्थ थे, जुलाहे थे, पक्के हिन्दू थे—मुसलमान जाति के रहे हों पर धर्म से वे हिंदू थे। कबीर वेदांती थे, कबीर चरित्र के पुजारी थे, आचरण पर उनका बल था, वे अव्यक्त के प्रति आस्थावान् पर व्यक्त के प्रति उनकी भक्तिभावना थी, वे कट्टर धार्मिक थे पर उनका धर्म सम्प्रदायवाद के विरोध में था, वे सबमें उस परम सत्य का साक्षात्कार करते और समदृष्टि उनकी साधना की कसौटी थी, वे हिन्दू थे पर वर्ण-जाति के भेद के विरोधी थे। वे निंदक थे उन पंडितों-मुल्लाओं के जो शास्त्र की बात करते पर जो सब में उस अद्वैत का अनुभव न करते। कबीर का बल गुरु पर था, सत्संग पर था जिससे ज्ञान का प्रकाश मिले, भक्ति में दृढता आवे और राम गुणगान में प्रीति बढ़े। उनके राम 'अल्लह' हैं, उनके राम निरंजन हैं साथ ही उनके राम गज, अजामिल को तारनेवाले भी हैं। कबीर के राम अनंत हैं; निरपेक्ष हैं पर उदारता, सहृदयता-सेवा में सबसे आगे हैं—वे अंबरीष के रक्षक हैं, वे शंकर के इष्ट हैं, वे गोविन्द हैं, वे उनके पति हैं। कबीर रहस्यवादी हैं, योगी हैं, भक्त हैं, और हैं प्रेमी। कबीर का विरह गोपिकाओं का विरह है—कबीर का सामरस्य राधा-कृष्ण का एकत्व है। कबीर काशी के भी हैं और मगहर के भी। वे हिंदू साधु हैं और मुसलमान फकीर हैं। वे क्या हैं क्या नहीं हैं यह कहना मुश्किल है।

कबीर की साखियाँ साक्षी हैं उस अद्वैत की—भीतर छिपे अन्तरात्मा की, आत्मबल की, भीतर बहती प्रेमधारा की, समचित्तता की, प्रेम के दीवानेपन की, विरह की, मिलन की, सिद्धि की, रामरस की, सत्य-आनन्द के खोजी की, व्यक्तिगत साधना के 'अनुभौ' की, शूरता की, गुरुभक्ति की, सामरस्य के क्षणों की, मन की, उद्‌बोधन की। कबीर की रमैणी जैन-बौद्ध-चार्वाक अनीश्वरवादियों के विरोध में और राम गुणानुवाद के पक्ष में है। कबीर अभक्त-साषित-तार्किक से बचने का संदेश देते हैं क्योंकि वे ईश्वरभक्ति का निन्दक हैं। कबीर के पद रागों में बँधे हैं उनमें उनकी याचना-प्रार्थना-विरक्ति सब कुछ है। 'रामअधार' को वे सतत स्मरण रखते हैं। उनका विश्वास है कि कबीर रामराय की कृपा से 'कबीर' बने। बिना उसकी दया के कुछ सम्भव नहीं—अपना बल व्यर्थ है। अहंकार से मुक्ति भक्ति से ही संभव है, क्रोध-काम की अग्नि से बचने का एक ही उपाय है उस अशरणशरण

गृहस्थ भी हैं—वे 'निरपष' हैं। वे हद में नहीं बेहद में हैं। वे प्रेम करते हैं और फटकारते भी हैं। वे बाह्य आडंबर-दिखावा को अध्यातम में बाधक मानते हैं क्योंकि यह गुमराह करता है। सत्य का शोधक अपने हृदय को शुद्ध करता है—अपने को निर्मल-पवित्र बनाता है।

कबीर की भाषा में वैदिक परम्परा के अनेक शब्द हैं, उपनिषदों के कितने ही प्रयोग हैं, गीता-भागवत के कितने ही सक्षम अभिधान हैं। कबीर एक ओर वैदिक ज्ञान से जुड़े हैं दूसरी ओर अपने समय से। लोक जीवन के जितने जीते-जागते प्रयोग कबीर में हैं उतने किसी रचना में नहीं—व्यापार के, पशुपालन के, जुलाहे के, तेली के, कसाई के, खेती के, प्रचलित कर्मकाण्ड के कितने ही प्राणवंत-रूपक हैं। उलटवासियाँ लोक जीवन की झाँकी हैं—वे एक ओर रहस्यवाद से जुड़ी हैं दूसरी ओर सामान्य जनजीवन से। तत्कालीन समाज में, बोलचाल में जितने भी धार्मिक-घरेलू रोजगारसम्बन्धी फारसी-उर्दू के शब्द स्वीकृत हो चुके थे उनका अच्छा प्रमाण है कबीरकाव्य। सामाजिक रहन-सहन, रीति-रस्म, पूजापाठ, तीर्थयात्रा, कुरबानी आदि से सम्बन्धित शब्द भंडार अद्भुत हैं कबीर की रचनाओं में। कभी-कभी यह निर्णय कठिन होता है कि कबीर हिंदू हैं कि मुसलमान हैं—वे मुसलमानों को उनकी भाषा में और हिंदुओं को उनकी बोली-बानी में फटकारते हैं। कोई हिंदू मुसलमानों को इस तरह खरी खोटी नहीं सुना सकता और न कोई मुसल्मान हिंदू को। कबीर न हिंदू हैं न मुसलमान। वे दोनों से ऊपर 'निरपष'। उनका राम घट-घट में समाया है। उनका एक ही धर्म है सब में उस निरंजन को देखना और उस अविगत को ही व्यक्त का मूल मानना। कबीर 'राम' को नहीं छोड़ते चाहे मुसलमानों से बात करते हों चाहे हिंदुओं से। कबीर सेतु हैं इन दो जातियों में और परंपरागत शास्त्रपोषित हिंदू धर्म और अद्वैत समर्थक विज्ञान में।

कबीर ने मुक्त किया छत्तीसों परजा-पावन को—धोबी-नाई, कुम्हार, दरजी, कोरी सबको छूट मिली भगवद्भक्ति की। राम के सम्मुख कोई जाति नहीं। सब का एक ही पिता है निरंजन। सब अपनी माँ से पैदा होते हैं, सब समान हैं—यह तो लोकाचार है जो जाति-बंधन डालता है। भक्ति आंदोलन की यही देन है। कबीर की यही देन है। कबीर इसीलिए भक्त पहले कवि बाद में। कबीर निर्गुण-सगुण दोनों में अभेद देखते हैं क्योंकि सब उसी का है। कबीर का बल जीवनदृष्टि पर है। कबीर हृदय को निष्कलुष देखना चाहते हैं चाहे वह जिस धर्म के पालन से हो। यदि भीतर तम है, अंधकार है, अज्ञान है तब शास्त्र ज्ञान व्यर्थ है। कबीर के समय में कर्मकाण्ड ने उपनिषद्-वेदांत के रहस्यवाद का स्थान ले लिया था जिससे समाज सत्य से दूर हटता जा रहा था और फल था लक्ष्य का अभाव। कबीर ने क्रांति की महावीर-बुद्ध की तरह, पर ईश्वरवाद को स्वीकार कर।

कबीर व्यक्ति-सुधारक थे। वे समाज-सुधारक, उसी अंश में थे जिस अंश में व्यक्ति का आचरण समाज को विकारग्रस्त करता है। हाँ, सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी थे जो सत्य की खोज में—एकता-समता में—बाधक थे। कबीर सबको एक ही बात बताते—अपने भीतर बैठे राम को पहचानो, अपने को जानो, अपनी आत्मशक्ति पर आस्था करो तथा आनन्द की धारा भीतर है बाहर नहीं। धन का गर्व, शास्त्र का गर्व, जाति का गर्व बाधक है अध्यात्म—आत्मसाक्षात्कार में। प्रत्येक तरह का अहंकार छोड़ना होगा—राम की सहायता मिलेगी पर यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति राम भक्त बने और अपने को उसका सेवक माने : उससे कोई नाता रखे—सेवक का, सखा का, पत्नी का। उसका होकर रहे। ऐसा जो कर सके वह अनुभव करेगा कि यह चेतनता ही मुक्ति है। जीवित रहते मोक्ष इसीलिए सम्भव है कि मनुष्य भगवद्भक्ति से अनासक्त-निसंग होकर रह सकता है।

कबीर का एक ही दर्शन था : सर्वत्र, प्रत्येक कार्य में उसकी अनुभूति। उन्हें अपने ताने-बाने में, करघे पर बैठ ढरकी चलाने में, कपड़ा बेचने में, बनजारा बनकर घूमने में—प्रत्येक भाव में उसकी उपस्थिति का अनुभव होता था। यही उनकी मस्ती थी। इस 'अनुभौ' से जो वाणी निकली वह काव्य बन गई।

कबीर अपढ़ नहीं थे। पक्के सत्संगी थे। उनके युग में सत्संग ही ज्ञान-मोक्ष का साधन था। गीता-उपनिषद्-भागवत-महाभारत ही साधुओं का विषय था। कबीर ने परमसत को ग्रहण किया और भागवत धर्म पर चल पड़े—भागवत धर्म में अजामिल, शबरी, गणिका, गज, पूतना सबका उद्धार हुआ।

कबीर मूल को पकड़ते थे—उस सत्य को पकड़ते जो निर्मल, विकाररहित है; जहाँ भेद नहीं, जहाँ ईर्ष्या नहीं, जहाँ मोह नहीं; जहाँ प्रकाश है आनन्द है चेतनता है। कबीर मानते थे व्यक्ति का पहला धर्म है अपने को उस ब्रह्मज्ञान से युक्त करना। और उसके अनुभव के बाद घट-घट में निवास करनेवाले की एकता का साक्षात्कार करना। कबीर का दृढ़ मत था कि बिना ब्रह्मज्ञान—ब्रह्म अग्नि अथवा उस परम प्रकाश के, मनुष्य अपने को शरीर से अलग नहीं कर सकता—वह विषयों का दास ही बना रहेगा। कबीर के प्रत्येक शब्द सत से भरेपूरे हैं या राम से भरपूर हैं।

जैन-बौद्धों ने समता का प्रचार किया, कर्मकाण्ड का विरोध किया पर वे सामान्य व्यक्ति को परिशुद्धि का मार्ग न बता सके। धोबी-नाई, रैदास (चमार) अशिक्षित थे—शास्त्र का नाम भी ये नहीं जानते थे, पर इनमें भूख थी सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों को तोड़कर ऊपर उठने की। कबीर ने वह मार्ग दिखाया। कबीर ज्योति बने, गुरु बने, प्रकाशस्तम्भ बने, नामदेव की भाँति—ज्ञान को भक्ति से बाँध दिया—योग को भक्ति से युक्त कर दिया। बस, दृष्टि बदल गई सोचने-समझने की। कबीर युग पुरुष थे—वे अवतार थे, वे राम के रूप थे।

कबीर के पद रागों में हैं। सूर के पद, कहा जाता है, मन्दिर में पूजा के विविध अवसरों पर गाए जाने के लिए हैं। पर कबीर का न मन्दिर से सम्बन्ध है और न पूजा से। उनकी आरती हृदय की आरती है। कबीर ने जयदेव का नाम नामदेव के साथ लिया है। जयदेव प्रेमीभक्त थे और उनकी रचनाओं में माधुर्य प्रेम की धारा है। विद्यापति के पद उनके अनुकरण पर ही हैं। हिन्दी-काव्य के इतिहास में कबीर प्रथम कवि हैं जिन्होंने रागों का भरपूर प्रयोग किया है। राग गौड़ी के 150 पद हैं। गौड़ी सायंकालीन राग है। राग रामकली के 46 पद, आसावरी के 54 पद; और विलावल के 9 पद हैं। ये तीनों राग प्रातः 6 से 9 तक गाए जाते हैं। राग भैरूँ में 36 पद हैं जो ब्रह्मवेला-उषाकाल में गाया जाता है। ललित-मल्हार-वसंत अपराह्न में गाए जाते हैं—कबीर-काव्य में ये क्रम से—3, 2, 11 पद हैं। राग केदारौ के 20 पद हैं जो रात्रि में गाए जाते हैं। मारू दोपहर 12 से 3 तक गाया जाता है। इसके पद केवल 3 हैं। सोरठ के 36 पद हैं जो रात्रि के द्वितीय पहर में गाए जाते हैं। धना श्री के दो पद हैं। रागों का समय-चक्र से क्या सम्बन्ध है यह गवेषणीय है। मेरी समझ में कबीर-काल में अन्य भी इस प्रकार की रचनाएँ रही होंगी जिनकी जानकारी अभी तक नहीं हो सकी है। कबीर की भाषा मँजी है—शब्द-भंडार अतुल है, उपमाएँ सटीक हैं, रूपक काव्य-गौरव से युक्त हैं। कबीर, सूर-तुलसी के मार्गदर्शक हैं। सूर सागर में इन्हीं रागों की प्रचुरता है—

बिलावल 630, सारंग 605, धनाश्री 473, मलार 328, गौरी 272, कन्हरौ 251, रामकली 245, केदारौ 174 सोरठ 171 मारू 157, कल्यान 125, आसावरी 12 आदि-आदि। कहा जाता है कि शांत रस अथवा अध्यात्म सम्बन्धी पद सारंग, सोरठ, बिलावल, केदारौ में अधिक बन पड़ते हैं। सूर ने केदारौ और सारंग में उद्‌बोधन और वेदना के गीत गाए हैं। राग मारू वीर रस सम्बन्धी राग है—कबीर ने मन को चेतावनी और हरिपथ पर चलने की दृढ़ता के लिए इसका प्रयोग किया है।

कबीर-सूर के राग-प्रयोग पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। वैसे कबीर, मेरी समझ में, यहाँ भी क्रांतिकारी हैं यथा उनके मल्हार से शृंगार और वर्षा का सम्बन्ध नहीं—उनके पद चेतावनी के हैं। भारतीय संगीत में राग-रागनियों का जो स्थान है इसको दृष्टि में रखकर कबीर-सूर-तुलसी का अध्ययन अभी भी अपेक्षित हैं। संगीत, काव्य का पूरक रहा है। लय संगीत की ही देन है।

जयदेव के **'गीतगोविन्द'** में राग और ताल का निर्देश है। यथा—वसंत राग, यतिताल; भैरवी राग यतिताल आदि। जयदेव (12वीं सदी) का जन्मस्थान उड़ीसा में पुरी (जगन्नाथ) के निकट है।

———

२०. कबीर-दर्शन : प्रेय नहीं निःश्रेयस

कबीर की दार्शनिक विचारधारा अथवा उनकी मान्यताओं को इस प्रकार संकेतिक किया जा सकता है :

(1) कबीर जीव-परमात्मा के अभेद में आस्था रखते थे।

(2) कबीर भीतर बैठे भगवान् के साक्षात्कार पर बल देते थे।

(3) कबीर इस साक्षात्कार-अनुभूति के लिए हृदय की निर्मलता पर बल देते थे।

(4) काम-क्रोध-लोभ-अहंकार विषय-विकार ईश्वरानुभूति में बाधक हैं—इनको निर्मूल करने के लिए राम भक्ति—रामचरण में प्रीति—चाहिए।

(5) अव्यक्त की खोज व्यक्त के माध्यम से ही संभव है—समस्त सृष्टि उसी से व्याप्त है इसलिए सबके प्रति 'समता' होनी चाहिए।

(6) भीतर बैठा आत्मा जब अपने को इन्द्रियों से जोड़ता है तब वह माया के वश जन्म-जन्मान्तर भटकता है और जब वह परमात्मा से युक्त होता है तब मुक्त हो जाता है। मुक्ति अर्थात् विषयासक्ति से छुटकारा। आसक्ति-संग साधना से नहीं राम-कृष्ण-भक्ति से छूटती है।

(7) नामसुमिरन-सत्संग और गुरुभक्ति उत्तम साधन हैं परमपद पाने के लिए।

(8) परमपद-अभयपद प्राप्त करनेवाला सदा आनन्द में निवास करता है और अमर हो जाता है। अमर अर्थात् विषयासक्ति से मुक्त।

(9) कबीर मानते हैं कि कर्मकाण्ड बाधक है परमज्ञान में—शास्त्रज्ञान सहायक नहीं। मुख्य है आचरण—वेशभूषा दिखावा है। मन निर्मल नहीं तो भव-पार होना संभव नहीं है। भवबन्धन अर्थात् लोभ-मोह की माया।

(10) सर्वत्र उस चैतन्य की अनुभूति—वह सब में है यही अनुभव सारे ज्ञान का सार है—यही 'ततसार' मुक्ति का साधन है।

(11) भगवान् भक्तों की रक्षा करता है—उनको प्यार करता है। उसका सेवक होना, दासानुदास होना ही जीवन की सफलता है। कबीर नामदेव को परम भागवत मानते हैं। व्यास-शुक-सनकादि-हनुमान-शंकर-नारद का कबीर ने गुणगान किया है। ये सभी वैष्णवजन हैं। कबीर-काव्य में वैष्णव की स्तुति और साषत-अभक्त-तार्किक का विरोध है। साधना में अनीश्वरवादी का संग बाधक होता है। उससे बचे। हरिसुमिरन, हरिगुणगान से ही मन शुद्ध होता है।

(12) कबीर का बल जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर है—आप संसार को माया की 'झल' मानकर चलेंगे तो ताप-पीड़ा-परेशानी के शिकार होंगे इसके विरोध में यदि आप उसमें उस सत्य का दर्शन करेंगे तो आप सब के प्रति उदार दृष्टि रखेंगे—सब में समदृष्टि रखेंगे, सबके लिए प्रेम होगा आपके मन में। यह समता ही शीतलता है।

कबीर के दर्शन की जड़ कबीरकालीन नहीं, यह उपनिषद् का ब्रह्मज्ञान है। अद्वैतवाद जिसका प्रतिपादन वेदांत में है वही कबीर में है, हाँ कबीर में उस भक्ति का भी मिश्रण है जिसके बीज वेद और उपनिषद् में है। भक्ति का प्रसार आठवीं शताब्दी के बाद, बौद्ध धर्म के पतन के साथ, अत्यंत तीव्रता से हुआ। दक्षिण के अलवार (=भवित) भक्ति-पथ के अग्रणी कहे जा सकते हैं। ज्ञान के साथ प्रेम का योग अलवारों की विशेषता है।

कठोपनिषद् में है :

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥

[विवेक जिसका सारथी है और जिसने मन रूपी लगाम खींच रखी है वह मनुष्य (संसार रूपी) मार्ग के पार को (उस पार को) पहुँचता है—वह स्थान ही विष्णु का **परमपद** है।]

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति' का भाव है :

यः सेतुरीजानानां अक्षरं ब्रह्म यत् परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ॥

[जो यज्ञ करनेवालों का सेतु है, जो परम अक्षर ब्रह्म है, जो (भव सागर पार करने की इच्छा करनेवाले का) **अभयपद** है उस नाचिकेत अग्नि (ज्ञानाग्नि) को जानने में हम समर्थ हों।]

कबीर-काव्य में अभयपद, परमपद और पार जाने का बार-बार उल्लेख है और मन को विष्णु-गोविन्द की शरण जाने के लिए बार-बार प्रेरित किया गया है :

कबीर के कुछ बोल इस प्रकार हैं :

(अ) दास कबीर भजि सारंगपानि, देहु अभैपद माँगौ दांनि ॥ 15 भैरू
(आ) बंकनालि जे समि कर राखै तौ आवागवन न होई ॥ 5 रामकली
(इ) सूरा होइ सु परमपद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥ 6 रामकली

कठोपनिषद् में एक रथ-रूपक है :—

इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर् मनीषिणः ॥

[मनीषी, इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को गोचर (चारागाह) और आत्मा-इन्द्रिय-मन से संयुक्त रूप को भोक्ता कहते हैं।]

कबीर-काव्य में मन-इन्द्रियाँ-आत्मा सम्बन्धी अनेक रूपक हैं जिनमें मन को

विषयों से अलग करने की बात कही गई है। सारे संत मन को एकाग्र करने उसे अनासक्त बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। मनुष्य मन-बुद्धि से नियंत्रित है यदि बुद्धि पर संयम हो तो मनुष्य अनाचार नहीं कर सकता है। इसीलिए हृदय की निर्मलता लक्ष्य है कबीर का :

कहा भयौ तिलक गरें जपमाला।
मरम न जानैं मिलन गोपाला॥
दिन प्रति पसु करै हरिहाई। गरै काठ वाकी बांनि न जाई॥
गलगलस्वाद भगति नांहि धीर। चीकन चँदवा कहै कबीर॥ 135 **गौड़ी**

भगति नांहि धीर—धीर उपनिषद् में इसी भाव में बहुल प्रयुक्त है। **धीर** उसे कहा गया है जो सतत ब्रह्मज्ञान के लिए प्रयत्नशील हो।

कठोपनिषद् में कहा गया है—एकमात्र धीर पुरुष ने ही अंतरात्मा को देखा है :—

"कश्चित धीरः प्रत्यागात्मानमैक्षत्।" तथा,

धीर पुरुष अमृतत्व को जानकर इहलोक के नित्य पदार्थों की आशा नहीं करते :

"अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥

एक अन्य श्लोक में है—"सब शरीरों में रहकर अशरीरी (आत्मा) अशाश्वितों में शाश्वत, महान् और सर्वव्यापक है, 'वह मैं हूँ' ऐसा जानकर **धीर** पुरुष शोक नहीं करता :

अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेषु अवस्थितम्।
महान्तं विभुं आत्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

तथा, "जिसका दर्शन होना कठिन है ऐसे गूढ स्थान में प्रविष्ट, हृदयरूपी गुहा में स्थित निबिड़ अरण्य में रहने वाले, पुरातन आत्मा को अध्यात्मयोग के ज्ञान द्वारा जानकर **धीर** पुरुष हर्ष-शोक का त्याग करता है :

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

अगले श्लोक में—श्रेय और प्रेय मनुष्य के पास आते हैं। **धीर** पुरुष उनका परीक्षण करता है—उनका पृथक्करण करता है। **धीर** पुरुष श्रेय को वरण करता है। और जो गँवार-मंद होता है वह योगक्षेम के लिए प्रेय स्वीकारता है :

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः तौ संपरीत्यविविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसोवृणीते प्रेयो मंदो योगक्षेमाद् वृणीते॥

कबीर **धीर** हैं। उन्होंने प्रेय का नहीं **श्रेय** का वरण किया है। जो प्रेय-अभ्युदय के पीछे पड़ते हैं उन्हें कबीर 'गँवार' कहते हैं। कबीर कहते हैं असली 'बणिजारा'= व्यापारी-वणिक वही है जो मूल को न गँवावे—इस 'हाट' में आकर श्रेय का सौदा करे :—

चोखौ बनज व्यौपार करीजे ।
आइ नैं दिसावरि रे राम जपि लाहि लीजै रे ॥
जब लगि देखौं हाट पसारा ।
उठि उठि बाणिया रे करिले बनिज सबारा रे ।
बेगे हो तुम्ह लाद लदाना औघट घाट रे चलना दूरि पयांना रे ॥
खरा न खोटा नां परिखना लाहे कारनि रे सब मूल हिरानों रे ॥
सकल दुनीं मैं लोभ पियारा ।
मूल ज राखै रे सोई बणिजारा रे ॥ 32 आसावरी

कबीर का यह वणिज्परक रूपक उपनिषद् के प्रेय-श्रेय के चुनाव को बड़े ही काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करता है । यह भाषा सामान्यजन के लिए सुबोध है और उन्हें सत्य की खोज के निकट ले जाती है । **वणिज्** ऋग्वेद में प्रयुक्त है । हिंदी बनिया ⊲वणिज और बनिजारा ∠*वाणिज्याकार=व्यापारी भारत के भूगोल-व्यापार का पूरा परिचय देते हैं। प्राकृत **वणिज्जारय** का विकसित रूप गुजराती, हिंदी, मराठी, पंजाबी सभी में वणजार है। कबीर ने पूरे देश को परमज्ञान की बात उक्त रूपक द्वारा समझाई है। संसार 'देसावर' है, यहाँ बनिया व्यापार करने आया है । 'खरा खोटा' परखना बनिये की जिम्मेदारी है । अन्यथा वह 'मूर' गवाँ बैठेगा । उसका 'लाद-लदाना' छूट जायगा । सच्चा बनिया वही है जो 'लोभ' से प्यार न करे—अपने सत को राखे । 'दुनीं' में रहकर 'दूरि पयान (प्रयाण)' को न भूले । यही 'चोखा बनज' कहा जायगा । जहाँ पयान करना है वह 'औघटघाट' से भरा पूरा है—सरल नहीं वहाँ पहुंचना, सतत सचेत और धर्मनिष्ठ रहना होगा । और एतदर्थ 'राम जप' का सहारा लेना होगा ।
एक अन्य पद है—

यह संसार हाटि करि जानूं सब कोई बणिजण आया ।
चेति सकै सो चेतो रे भाई मूरिख मूल गंवाया ॥
चेति चेति मेरे मन चंचल । जब लग घर में सांसा ।
·········हरि के चरन निवासा ॥ 33 आसा०

'हरिचरण में निवास' हो तभी सफलता संभव है अन्यथा लोभ-मोह पथभ्रष्ट कर देंगे :

मीठी मीठी माया तजणीं न जाई ।
अग्यानी पुरिस कौ भोलवि भोलवि खाई ॥ 30 आसा०

संसार परीक्षा स्थल है—मनुष्य यदि माया के बहकावे में फँस गया तो उसका मूल—सत्य—चला जायगा । माया है बड़ी मीठी—जिस प्रकार चींटी को गुड़ आकृष्ट करती है उसी प्रकार माया जीव को । इस माया के मुख्य अंग हैं 'कनक कामिनी' । ज्ञानी-भक्त वही है जो इसके फेर में न पड़े । काम-लोभ विनाश के मूल हैं ।

कबीर इनसे मुक्त होकर रामदास बने :

कबीर त्यागा ग्यान करि कनक कामिनी दोय। 37/4

कबीर मानते हैं इस माया से छुट्टी तभी मिलती है जब भगवत्कृपा हो :

नां कुछ कीया न करि सक्या नां करणे जोग सरीर।
जो कछु कीया सु हरि कीया तार्थं कबोर कबीर ॥ 38/1

तथा, **कबीर कीया कछु न होत है अनकीया सब होइ।**
जे कीया कछु होत है तौ करता औरे कोइ ॥ 38/2

कबीर को अपने राम का भरोसा है, उनकी करुणा का सहारा है। कबीर को 'ज्ञान' का बल नहीं भक्ति का बल है। कबीर का विश्वास है—

साईं मेरा सुलषनां सूतां देइ जगाइ ॥ 38/4

कबीर कृतज्ञ हैं अपने हरि के—उसकी महिमा अनन्त है :

धरती सब कागद करौं तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ॥ 38/5

आदमी अपनी शक्ति से कुछ कर नहीं सकता—

कबीर साईं सूं सब होत है बंदे थें कुछ नाहिं।
राई थैं परबत करै परबत राई माँहि ॥ 38/12

अतः, कबीर का दर्शन है सब प्रकार से मन को निर्मल कर उच्च भावनाओं से भरना—दूषित भावनाओं से दूर रहना और सत् की प्राप्ति के लिए भगवान का सहारा लेना।

A man's life, in its totality, proceeds from his mind, and his mind is a combination of habits, which he can, by patient effort, modify to any extent, and overwhich he can gain complete ascendancy and control.

Let a man realise this, and he has at once obtained possession of the key which shall open the door to his complete emancipation.

But, emancipation from the ills of life (which are the ills of one's mind) is a matter of steady growth from within, and not a sudden acquisition from without.

Hourly and daily must the mind be traind to think stainless thoughts, and to adopt right and dispassionate attitudes, until he has wrought out of it the Ideal of his holliest dreams.

—JAMES ALLEN

२१. कबीर : कवि और काव्य

कबीर-काव्य की कसौटी कबीर का व्यक्तित्व है जिससे रामरस धारा बहती है। और उस व्यक्तित्व की सुन्दरता, उसकी निर्मलता-पवित्रता समता और समदृष्टि में है। जो व्यक्ति उदात्त होगा उसकी कविता उदात्त होगी यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। संकीर्ण व्यक्तित्ववाला भी ऊँची-ऊँची बातें कर सकता है अथवा सौंदर्य-आनन्द की प्रेरणा दे सकता है अथवा एक से एक आकर्षक बिम्ब-चित्र खींच सकता है पर यह निश्चित है कि उस रचना में वह आत्मतत्त्व न होगा जिसे उदात्त कहते हैं। जिसकी वाणी सत्य से पूत है, जिसने किसी को अपनी भाषा से पीड़ा नहीं दी, जो साधु है, जो सतत क्रोध को निर्मूल करने के लिए प्रयत्नशील है और जो सब में उसी सत् का साक्षात्कार करता है जो उसमें है तो निश्चय है कि ऐसे व्यक्ति के तप का पाठक पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ेगा। भाषा के पीछे वक्ता का सत्य बोलता है। आवरण धोखा दे सकता है पर मुलम्मा छूट जाते ही सचाई प्रकट हो जाती है। सौन्दर्य का बाह्य पक्ष भले ही चकाचौंध कर दे पर स्थायी प्रभाव भीतरी सौन्दर्य का ही होता है। मनुष्य के सद्‌विचारों-सद्‌भावों से व्युत्पन्न शुभ संकल्प पाठक-श्रोता के हृदय में एक सात्त्विक अथवा उदात्त प्रभाव छोड़ते हैं। यह प्रभाव ही वक्ता के संतत्व का प्रमाण कहा जा सकता है। धूर्त भी माया से ठग सकता है पर दिखावा-पाखंड, आडंबर अलंकरण उत्तेजनामात्र उत्पन्न कर सकते हैं। जिस प्रकार किसी भी सुन्दरी के आकर्षण से पुरुष में यौन-प्रीति का आविर्भाव स्वाभाविक है उसी प्रकार किसी भी बिम्ब प्रधान, अलंकार प्रधान, वेग प्रधान, आसक्तिप्रधान कविता के प्रति भी पाठक का आकृष्ट होना अपेक्षित है पर प्रेम-स्नेह की अनुभूति में हार्दिक तत्त्वों-भावों का स्थायी प्रभाव पड़ता है। मदर टेरसा की उदारता-सेवा-करुणा का प्रभाव ही उदात्त काव्य का प्रभाव है। मैं गांधीजी के साथ कुछ क्षण रह चुका हूँ उनकी आंतरिक निर्मलता-सचाई का आकर्षण मैंने अथवा उनके सम्पर्क में आने वाले जवाहर लाल नेहरू ऐसे मेधावी-प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्ववालों ने अनुभव किया है। संत में चुम्बक सदृश एक विशिष्ट छिपी हुई शक्ति होती है; संत काव्य में भी यही आंतरिक शक्ति पाठक पर एक अद्‌भुत प्रभाव डालती है जिससे मन का कायाकल्प हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि के समीप ताप का अनुभव और शीतल जल में शीत का अनुभव सहज है उसी प्रकार संत और संतकाव्य के सामीप्य में शीतलता-पावनता-प्रेरणा मिलती है। यही काव्य का उदात्त-तत्व है। यह अलंकार से बोधगम्य नहीं। अतः कबीर कवि और उनका काव्य दोनों के विषय

के लिए परंपरागत काव्यशास्त्र पर्याप्त नहीं है। आइए, कबीर की कुछ साखियों पर विचार करें—

कबीर मेरे संगी दोइ जण, एक बैश्नों एक राम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै राम ।।28/4

सामान्यतः इसमें काव्यत्व नहीं माना जायगा—एक सपाट उक्ति है पर इसमें एक आदर्श, एक अनुभव, एक समर्पणभाव, एक दृढ़ता की अभिव्यक्ति है। कबीर परमार्थी हैं, सत्य के खोजी हैं, सतत संघर्ष करनेवाले हैं सत्य की प्राप्ति के लिए। उनका सत्य है उन मानसिक विकारों से मुक्ति जो मनुष्य को पथभ्रष्ट करते हैं—विक्षिप्त करके समत्व नष्ट करते हैं। उनके राम सर्वोत्तम मानव हैं, परम सत्य-चेतनता-आनन्द के रूप हैं इसलिए उनका सतत साथ उन्हें राममय बना देने में सक्षम है। यही कार्य हरिजन-वैष्णव-भागवत भगवान के चरित्र का गुणगान करके करता है। जिस लक्ष्य पर किसी को चलना हो उसी में रमे यही सफलता की कुंजी है। अतः कबीर लक्ष्य पर और उसकी प्राप्ति के साधन पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। विरोधी अथवा 'निगेटिव' भावों को वे मन में आने ही नहीं देना चाहते। इसीलिए वे साषत (सांख्यवादी-तार्किक) का, जो ईश्वर को नकारता है, संग नहीं चाहते। कबीर की दृष्टि जीवन की निर्मलता और हृदय की शुद्धता पर है। साषित संसारी है उसे साधन की पवित्रता और आंतरिक शुद्धि से क्या लेना देना। चार्वाक, जैन, बौद्ध ये सभी भक्ति मार्ग के विरोधी हैं—उस अखिलान्तरात्मा पर आस्था नहीं रखते। कबीर की मान्यता है कि अपने लाख प्रयत्न करने पर भी अहंकार-ईर्ष्या-भय (मृत्युभय) आदि से मुक्ति नहीं मिलती—मुक्ति तो भगवान की कृपा का फल है। उसके सतत सामीप्य से ही—उसके सर्वत्र अनुभव से ही व्यक्ति सत के विरोधी भावों से बच सकता है। इसीलिए कबीर को अभक्त निगुरा से परहेज है :

कबीर साखित बाह्मण मति मिले बैस्नो मिले चण्डाल।
अंकमाल दे भेंटिए जानू मिले गोपाल ।।30।9

वैष्णव को भेंटना गोपाल-गोविंद-राम को भेंटना है क्योंकि 'भक्त भगवन्त निरंतर अन्तर नहीं, वदति इति अमलमति दास तुलसी।' कबीर का लक्ष्य 'अमलमति' है—सद्विचार है, सद्भाव है उसके लिए सत्संग-संतसंग ही एकमात्र उपाय है। गुरु प्रेरक है। वही भीतर ऐसा आलोक प्रदीप्त करता है कि व्यक्ति उस प्रकाश को एक क्षण भी नहीं छोड़ना चाहता। साषित का ध्यान निर्मलता-स्वच्छता-भगवद् भक्ति पर नहीं होता इसलिए कबीर उसे काली कमली कहते हैं जो सारी मैल को अपने में छिपा लेता है :

कबीर भगति हजारी कापड़ा तामैं मैल समाइ।
साखित कालो कांमली भावै तहाँ बिछाइ ।।28/13

कबीर की उक्त साखी उनके काव्य की सफलता का प्रमाण है—भक्त और साषित में अन्तर वही है जो हजारी श्वेत कपड़े और काली कमरी में। आभ्यंतरिक साम्य को यह सादृश्य सुगमता से सुस्पष्ट करता है। 'भावै तहाँ बिछाइ' अर्थात् साषित जीवन के मूल्यों की ओर ध्यान नहीं देता। सांख्यवादी मानता है कि पचीस तत्व ही मूल सत्य हैं ईश्वर से लेना-देना नहीं। चार्वाक भोग को ही इष्ट मानता है। जैनी बाहरी शुचिता पर—'पानी पीजै छानकर'—ध्यान देता है और बौद्ध सम्यक् आचरण पर सिद्धांततः बल देते हैं पर, कबीर युग में, तंत्रमंत्र के चक्कर में पड़ गये थे। कबीर का 'साषित' इन सभी अभक्तों को समेटे हुए हैं। 'साषत' शाक्त नहीं जैसा सभी टीकाकारों ने अर्थ किया है। कबीर शिव को परम भक्त मानते हैं और उनके काव्य में शिव-राम-गोविंद के प्रति आदर है। 'साषित' का स्वभाव है :

कबीर साषित सण का जेवड़ा, भीगा सूँ कठ्ठाइ।
दोइ आखिर गुरु बाहिरा बांध्या जमपुरि जाइ॥17/11

शाक्त गुरु में आस्था रखता है पर अनीश्वरवादी को गुरु की अपेक्षा नहीं। कबीर की मान्यता है कि निगुरा की मुक्ति नहीं—उसे स्वर्ग—विष्णुधाम में स्थान नहीं। साषित तार्किक होता है आस्थावान-श्रद्धावान् नहीं—वह अपनी ही बात भूंकता है। उसपर दूसरे की बात का असर नहीं। सन पानी पड़ने पर कठुआ जाता है। किसी पेंच को कसने के लिए सन लपेटते हैं—पानी पड़ने पर सन फूलता है और पेंच कस उठता है। कबीर का सादृश्य ग्राम जीवन से लिया गया है। कबीर-काव्य का रस लोक जीवन से संयुक्त है। 'सण का जेवड़ा,' 'भीगा सूँ कठ्ठाइ', 'दोइ आखिर', 'गुरु बाहिरा', 'बांध्या जमपुरि जाइ'—ये सभी प्रयोग आज भी जनता में प्रचलित हैं। कबीर जनकवि हैं उनकी कविता इस धरती की देन है। 'साखित' का अर्थ निम्नांकित साखी से और भी स्पष्ट है—

कबीर मारी मरूँ कुसंग की केला काठैं बेरि।
वो हालै वो चीरिये साखित संग निबेरि॥25/4

साषित का संग न करे क्योंकि —

"**साकट** जननो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे।" मीरा

दुर्योधन को, सूरदास ने, विदुर के विरोध में साकट कहा है—

"तुम **साकट** वे भगत भागवत—"

कबीर भक्त और अभक्त के संग को केला और बेर का संग बताते हैं—बेर का काम है केले के पत्ते को चीरना विनष्ट करना। अर्थात् जिस प्रकार बेर बाधक है केला का उसी प्रकार साषित बाधक है भगत का। परस्पर स्वभावगत विरोध को कबीर ने अपने सादृश्य से सुस्पष्ट किया है। कबीर की भाषा ठेठ-सहज-गतिमय और प्रभविष्णु है। केला-बेर के संग का बिंब पर्याप्त है संत-दुष्ट के अन्तर्विरोध का। इसीलिए कबीर कहते हैं कि जो गुरमुख नहीं है, जो निगुरा-अभक्त हैं उससे भक्ति की चर्चा न करे।

साषित-स्वान का स्वभाव एक है, साषित कउआ है, साषित विषधर है, साखित कड़वी निंब है अर्थात् वह अपनी आदत नहीं छोड़ सकता—उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह कठुवाया हुआ सन है। कबीर का निम्नांकित पद उनके भाव को भली-भाँति सुबोध बनाता है :

राम राम राम रमि रहिये।
साषित सेती भूलि न कहिये॥
का सुनहाँ कौ सुमृत सुनाये। का साषित पै हरिगुन गाये॥
का कऊवा कौं कपूर खवाये। का बिसहर कौं दूध पिलाये॥
साषित सुनहाँ दून्यूं भाई। वौ निंदै वौ भौंकत जाई॥
अमृत ले लें नींब सिंचाई। कहै कबीर वाकी बानि न जाई॥

19 आसावरी

अत:, साषित ईश्वर-भक्ति का निंदक है, उससे भक्त बचें।

कबीर स्वच्छन्द आचरण नहीं चाहते, वे काली कमली नहीं बनना चाहते। उनका ध्येय निर्मल श्वेत बनना है जो सतोगुण का लक्षण है। कबीर का विरोध अनीश्वरवादियों से इसलिए है कि उन्हें धर्म का, पुण्य-पाप का, मानवता का भय नहीं। कबीर का केन्द्र मानव है—वह मानव जो ईश्वरत्व की पवित्रता से युक्त है। कबीर मानते हैं कि मानव को रोटी से अधिक अपेक्षित है धर्म—वह धर्म जो सत्य की ज्योति की ओर उन्मुख करे। कबीर बेर नहीं बनना चाहते जो दूसरों को कष्ट दे, वे केला के पत्ते की तरह अहिंसक-सहिष्णु और दूसरों को प्रसन्नता देने वाला बनना चाहते हैं।

कबीर मुसलमान भाइयों से उनकी बोली में कहते हैं—

वेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जो न विचारै॥
सब घटि एक-एक करि जाना, भी दूजा करि मारै॥
सबै जीव सांई के प्यारे, उबरहुगे किस बोले॥

कबीर वेद-कुरान के विरोधी नहीं उनका विरोध उनसे है जो उसके मर्म को न समझकर उसके भाव की रक्षा नहीं करते हैं। कबीर प्राणि-हिंसा के विरुद्ध हैं वे मानते हैं कि '**सबै जीव साईं के प्यारे।** अथवा '**सब घटि एक एक करि जाना।**' कबीर की कविता में यही सत्य, यही एकात्मभाव, यही समता सर्वत्र है। कबीर-काव्य नैतिक मूल्यों का काव्य है। कबीर हिन्दू भी थे मुसलमान भी थे जहाँ तक मानवता और सर्वजीव-समता का प्रश्न है। कबीर सुधारक नहीं मानव-धर्म-संस्थापक थे। वे समाज की—व्यक्ति की उन दुर्बलताओं में चोट करते जो मानव-धर्म के विपरीत हैं।

कबीर आध्यात्मिक सत्य के कवि हैं—परम सत्य इतना सहज है कि उसे

किसी काव्य की सीमा में नहीं—डॉ० जानसन ने कविता पर विचार करते हुए कहा था :

"Spiritual truth is too simple for eloquence, too sacred for fiction and too majestic for ornament."

जानसन के अनुसार अध्यात्म-साहित्य कविता की सीमा के परे हैं—अध्यात्म 'बेहद' की अनुभूति है। लेकिन जानसन की बात को नकारते हुए पालग्रेव (गोल्डनट्रेजरी के संपादक) का कहना है :

Poetry was never better employed than when her inspiring Musesare Faith, Hope and Love.........

रहस्यवादी वर्ड्सवर्थ जीवन में सात्त्विक क्षणों को महत्व देता है : When the body becomes a living soul and sees into the life of things. अतः, जो कविता आध्यात्मिक अनुभूति अथवा भीतरी सत्य की अपरोक्ष अनुभूति का अंकन करे वह निश्चय ही महान् है। कबीर उन आनन्द-प्रकाश के क्षणों को शब्द दे सके हैं यही उनकी सफलता है।

कबीर मानते हैं कि व्यक्ति में सतोगुण-तमोगुण दोनों साथ-साथ सक्रिय हैं—प्रकाश-अंधकार का युग्म प्रकृति की देन है; पर घटघट उस राम का अनुभव करने से हमारी चेतनता बनी रहेगी और हम अन्याय, हिंसा, क्रोध, द्वेष, अहंकार से बच सकेंगे। इस चेतनता की प्राप्ति गुरु से, सत्संग से, नामजप से संभव है। जरामरन का भय प्रत्येक में है पर इससे भी मुक्ति मिल सकती है मृत्यु को जीवन का रूप मान लेने से। मृत्यु का भय गया नहीं कि आदमी अमर हुआ नहीं। और भय का मूल आसक्ति है। कबीर का बल इसीलिए निसंगता और निरपष पर है। कबीर चाहते हैं कि व्यक्ति, तांडवरत शंकर की तरह, दाहिने पैर से कुविचारों के दानव को दबाए-कुचले रहे और दूसरे पैर से सतत नृत्य—भगवत् लीला में—सुख ले। विरोधी भावों को जीवन रहते लोप कर देना संभव नहीं क्योंकि वे जीवन-चक्र के अंग हैं पर उनपर काबू पाना योग-भक्ति-समर्पण से संभव है। निंदक और विरोधी तत्त्वों की परवाह न करके प्रकाश की ओर बढ़ना ही सार्थकता है।

कबीर की भाषा जब उस तत्त्व का परिचय कराने में असमर्थ होती है तब वे उपनिषद् की शब्दावली में कह पड़ते हैं :

गोंविदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरंजन राया।
तेरे रूप नहीं, रेख नहीं, मुद्रा नहिं माया॥
समुद नाहीं सिखर नाहीं धरती नहीं गगना।
रबि ससि दोउ एकै नाहीं बहत नहीं पवना॥
नाद नाहीं ब्यंद नाहीं काल नाहीं काया।
जब है जल ब्यंद न होते, तब तूं ही राम राया॥

जप नाहीं तप नाहीं जोग ध्यान नहीं पूजा।
सिव नाहीं सकति नाहीं देव नहीं दूजा॥
ऋग् न, यजु न, साम अथरबन वेद नहीं व्याकरना।
तेरी गति तू ही जानै कबीर तो सरना॥ 17 आसावारी

कबीर वर्णन करना चाहते हैं उस अनुपम 'तत्त' को पर जहाँ तक सृष्टि है उसका सादृश्य कहीं नहीं। वह 'वेद बिबर्जित', 'भेद बिबर्जित', 'ग्यान बिबर्जित', 'ध्यान बिबर्जित'—सबसे न्यारा है।

कहैं कबीर तिहूँ लोक बिबर्जित ऐसा तत्त अनूपं॥ 18 आसावरी

कबीर भाषा का सहारा छोड़कर कह पड़ते हैं—

कहैं कबीर कछु कहत न आवै परचै बिना मरम को पावै॥16 आसा०

अतः उससे परिचय करना होगा; उसे पाने के लिए और कोई मार्ग नहीं—वेद-कतेब का सहारा छोड़ना होगा। केवल समर्पण–सरण। और इस शरणागति की शर्त है निर्मलता—

कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हा। मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हा॥15आसा०

अतः, 'हरिपद' के कवि कबीर उस 'तत्त' का ही गान करते हैं और उस 'तत्त' को पाने के लिए तन-मन की निर्मलता की शर्त रखते हैं। कबीर-काव्य अध्यात्म और निर्मलता से प्राप्त ब्रह्मज्ञान का उदात्त काव्य है। वह ब्रह्म घट-घट में है भले ही अरूप-अदृश्य हो। वह अनुभवगम्य है।

●

भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः।
काम क्रोध समुत्थानि त्यजेथा व्यसनानि च॥

विनम्र और विनययुक्त बनें, इन्द्रियों पर अधिकार करें। काम-क्रोध अत्यंत विनाशकारी भाव हैं इनसे व्युत्पन्न दोषों से बचें।

—रामायण

२२. ईश्वर के सामर्थ्य की अनुभूति

कबीर निर्गुणवादी थे अथवा सगुण के उपासक यह प्रश्न ही छोड़ देना चाहिये। कबीर की दृष्टि में भेद नहीं था। उन्हें सगुण में 'पर पुरुष' दिखाई देता था और निर्गुण में 'परमब्रह्म'—उपनिषद् की शब्दावली में सगुण को हम 'सः' कह सकते हैं और ब्रह्म को 'तत्'। कबीर ईश्वरवादी थे—आस्तिक थे। उनका ब्रह्मज्ञान इस सृष्टि से सम्बन्धित था—वे उस तत् का ही सर्वत्र अनुभव करते थे। मुसलमानों के एकेश्वरवाद में यह दर्शन नहीं है। कबीर की जाति जो भी हो वे थे ब्रह्मवादी हिन्दू। कबीर का विरोध मुसलमानों से इसलिये नहीं था कि वे पश्चिम की ओर मुहँ करके नमाज पढ़ते हैं, और अल्लाह को मानते हैं, उनका विरोध मुसलमानों की उस संकीर्ण विचारधारा से था जिसके कारण वे हिन्दू को नापाक मानते थे और उन्हें काफिर मानकर घृणा करते थे। काफिर का अर्थ है नास्तिक, सत्य को छिपानेवाला अथवा अकृतज्ञ। पर हिन्दू तो शुद्ध आस्तिक है, शुद्ध सत्य का खोजी है और भगवान का कृतज्ञ है। राम का सबसे बड़ा गुण, वाल्मीकि के अनुसार उनका कृतज्ञ होना था। सनातन धर्म में ईश्वर की कृपा, उसकी मया का भक्त कृतज्ञ होता है। कबीर का विरोध हिन्दुओं से इसलिये था कि ब्रह्म को तत्सत् को मानते हुये भी जन-जन में भेद करते हैं। उनका ज्ञान शास्त्र में बँधा है व्यवहार उसके अनुकूल नहीं—वर्ण भेद हिंदुत्व को निगल रहा है। कबीर आचरण को मुख्य मानते थे—ब्राह्मण पंडित यदि अहंकारी है तो उससे भला है संसारी जो अपने विश्वास के अनुकूल आचरण करता है। संन्यासी घर छोड़कर भी यदि क्रोध-लोभ-माया का शिकार है तो उससे अच्छा है गृहस्थ। कबीर का दर्शन था समभाव-समदृष्टि। कबीर पिंड और ब्रह्माण्ड में उसी की अनुभूति करते थे और यही उपदेश उनकी साखियों में भरा है। कबीर भगवान के 'चरन-सरन' में जाने में विश्वास रखते थे क्योंकि वही हमें गिरने से बचा सकता है। वही चाहेगा तब हम जीवनमुक्त हो सकेंगे।

कबीर की भक्ति, महर्षि अरविंद की शब्दावली लें, इस जीवन में ही मुक्ति चाहती थी—मुक्त होकर कहीं जाना नहीं है जगत् में ही रहना है। जगत् के प्रत्येक कार्य में उस 'तत्' का अनुभव ही जीवन मुक्ति है। जीवनमुक्त शूरवीर है, उसे मृत्यु का भय नहीं। वह संसार में दुःख का अनुभव करता ही नहीं। उसका विश्वास—आत्मज्ञान—हीं उसका सहारा होता है। वह रात-दिन सचेत रहकर विषयविकारों से, उसके सहारे, जूझता है, वह मैदान अथवा युद्ध भूमि से भागता नहीं, वह रन-साका करना जानता है, वह सत्य की प्राप्ति के लिये मृत्यु का वरण करता है। हाँ, इस सतत युद्ध में उसे अहंकार नहीं—वह अपने को कर्त्ता

नहीं मानता वह मानता है कि सब वही करने वाला है। कबीर मानते हैं कि हमें जीवन ही मिला है इसलिए कि हम अपने को पहचानें—उस परमशक्ति को जानें जो सर्वत्र सब समय हमारे साथ है। उस तत्सत् का 'अनुभौ' ही ब्रह्मज्ञान है। इस सत्य के अनुभव का फल है अहंकार का सर्वथा निर्मूल हो जाना। अहंकार न योग से जा सकता है, न कर्मयोग से, न ज्ञान योग से। उसको पनपने न देने का एक ही गुरु है अपने को भगवान के चरणों में समर्पित कर उस सत् के सामर्थ्य को स्वीकारना। यही भक्तियोग कबीर का अध्यात्म है। कबीर के योगपरक पद उनके ब्रह्मानंद के गीत हैं। कबीर, संभव है, आरंभ में योग साधक रहे हों पर अंततः वे शरणागति के ही अनुयायी हैं। वे साफ-साफ मानते हैं कि करने वाला कोई और है :

कबीर कीया कछु न होत है, अनकीया सब होइ।
जे कीया कछु होत है, तौ करता औरे कोइ ॥ 38।2

कबीर 'मैं मेरा' छोड़ चुके हैं इसीलिये वे अहंकारशून्य हैं। वे मानते हैं कि 'करता औरे कोइ।' इसे और जोरदार शब्दों में वे दुहराते हैं—

नां कछु कीया न करि सक्या, नां करणे जोग सरीर।
जे कछु कीया सु हरि कीया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥ 38।1

कबीर मानते हैं उससे बड़ा कृपालु कोई और नहीं—उसके दरबार—दरगाह में जो गया वह निराश-महरूम होकर नहीं लौटा अर्थात् कैसा भी अभागा उसकी शरण जाय तो वह प्रेय-श्रेय से संपन्न हो जाता है :

कबीर जिसहि न कोई तिसह तूं जिस तूं तिस सब कोइ।
दरिगह तेरी साइयाँ ना महरूम न होइ ॥ 38।1

कबीर की मान्यता है कि सामान्य दरबार में लोग बिललाते रहते हैं, आस नहीं पूरी होती पर हे मालिक, तुम अपने जन को जगा-जगा कर देते हो—तुम्हारी सामार्थ्य का क्या कहना :

कबीर एक खड़े ही नां लहैं और खड़ा बिललाइ।
साईं मेरा सुलषनां, सूता देइ जगाइ ॥ 38।4

कबीर का स्वामी सुलक्षण=अच्छे गुणोंवाला है। वह देने के लिये सदा आतुर रहता है। हाँ, उसके पाने के लिए उसके दरगाह में, उसकी देहली पर पहुँच कर उसकी शक्ति का भरोसा-विश्वास करना होगा।

कबीर अपने राम के सामर्थ्य (संभ्रयाई) की बखान करते थकते नहीं—वे कहते हैं—

कबीर सात समंद की मसि करौं लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ॥38।5

कबीर 'हरिगुण' के गायक हैं। उनका मन भरता नहीं उसकी महिमा के वर्णन से।

वे मानते हैं 'कबीर' (=महान् पातकी) उन्हीं के कारण 'कबीर'=श्रेष्ठ है। अपनी असमर्थता को वे इस प्रकार स्वीकारते हैं—

कबीर साइं सूं सब होत है बंदे थैं कछु नाँहि।
राई थैं परबत करै परबत राई माँहि ॥38।12

भक्ति और शरणागति योग की पहली शर्त है अपनी असमर्थता और राम की समर्थता का अनुभव। 'बंदे थैं कछु नाँहि' यही सार है भागवत-धर्म का। **'राई थैं परबत करै, परबत राई माँहि'** आज भी गाँवों में यही आस्था है। फारसी **'बंदः'** दास, गुलाम, भक्त, आज्ञाकारी, उपासक, इबादत करनेवाला के आशय में है। ईश्वर बंदःनवाज है। बंदःनवाजी की इससे प्रभविष्णु कविता कहाँ है।

कबीर परमभक्त थे। कबीर ने संघर्ष किया परमानंद प्राप्त करने के लिए—

कबीर जदि का माइ जनमियां कहूं न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिर्या पातौं पातौं दूख ॥ 38।11

संघर्ष में ही प्रकाश मिलता है। अपनी असमर्थता और अपनी सीमा समझ लेने पर ही व्यक्ति तत् सत् का अनुभव करता है। कबीर का विश्वास है बिना उसके सहारे रत्ती भर सफलता संभव नहीं—

कबीर करणीं क्या करै जे राम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पगधरैं, सोई नवि नवि जाइ ॥38।10

कबीर मानते हैं कि इस संसार में चारों ओर विनाशक अग्नि है। उससे वही सिरजनहार बचा सकता है—उसका भरोसा न छोड़ें तभी कल्याण है :

कबीर झल बावैं झल दाहिणैं झल ही माहि व्यौहार।
आगैं पीछे झलमई राखै सिरजनहार ॥ ॥38।7

कबीर इस 'झल' से—सांसारिक पीड़ा से—बचने के लिए चाहते हैं कि वे अपने राम से अपनी करुण कहानी सुनावें :

कबीर अब कै जे साईं मिलै तौ सब दुख आषौं रोइ।
चरनूं ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणां होइ ॥ 54।10

कबीर की शरणागति का आशय यह नहीं कि मनुष्य कर्त्तव्यविमुख होकर अनाचार-व्यभिचार-भ्रष्टाचार करे—अथवा राम नाम की ओट से दूसरों को ठगे :

कबीर आप ठगाइए और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै और ठग्यां दुख होइ ॥ 54।9

कबीर चरित्र की निर्मलता पर बल देते हैं। जो रहनि "निरमल करै सुभाइ" वही उचित है। कबीर कहते हैं सबसे प्यार करें—किसी को छोटा न माने—

कबीर घास न निंदिये जो पाऊँ तल होइ।
उड़ि पड़ै जे आँखि मैं खरा दुहेला होइ ॥ 54।6

अतः, किसी की निन्दा, किसी की उपेक्षा, किसी के प्रति घृणा, किसी की अवहेलना मानवोचित नहीं । जो अज्ञानी हैं, मूरख हैं वे ही दूसरों के दोषों को देखने में रुचि लेते हैं :

कबीर लोग बिचार निंदई जिनहि न पाया ग्यान ।
राम नांइ दाता रहै तिनहि न भावै आन ।। 54।1

दोष अपना देखे दूसरे का नहीं तभी व्यवहार चलता है। निंदा व्यभिचार है। इससे अपना ही पतन होता है । जैसा सोचेंगे वैसा बनेंगे—जो देंगे वही पावेंगे । कबीर का मत है कि व्यभिचारी को भगवान नहीं प्राप्त हो सकते—

कबीर जे को सुन्दरी जानि करै बिभचार ।
ताहि न कबहूँ आदरै परम पुरुष भरतार ।। 52।2

भक्त अपनी ओर देखे, अपनी छानबीन करे, अपने को निर्मल बनावे—बस यही भागवत धर्म है । भगवान स्वामी है इस जीव रूपी पत्नी का । भरतार (भतार) का प्यारा बनना हो तो व्यभिचार-कुविचार से बचे । सत्य से विमुख होना व्यभिचार है ।

———

को नरकः ? परवशता ।
किं सौख्यं ? सर्वसङ्ग विरतिः ।
किं सत्यं ? भूतहितं ।
प्रियं च किं प्राणिनाम् ? असवः ।

नरक क्या है ? पराधीनता-परतंत्रता । सुख क्या है ? आसक्तित्याग । सत्य क्या है ? जनहित । प्राणियों को प्रिय क्या ? जीवन ।



२३. नयी संस्कृति की खोज

पूरे हिंदी-साहित्य में कबीर के शब्दों-प्रयोगों में जो जादुई असर है वह किसी और कवि की रचना में नहीं। हरिजन समाज कबीर का परमभक्त है। वह उन्हें ईश्वर की अलौकिक विभूति मानता है। हरिजन जिन्हें मंदिरों में प्रवेश का अधिकार नहीं उन्हें अध्यात्मपथ का रास्ता दिखाने वाले कबीर ही हैं। कबीर उनके लिए न हिंदू थे और न मुसलमान। हिंदुओं ने हरिजनों को बहिष्कृत किया इसलिए हरिजन हिंदू होते हुए भी हिंदू नहीं हैं। वर्णभेद के माननेवालों ने हरिजनों में इतनी हीन भावना भर दी है कि वे अपने को हिन्दू समझते हुए भी निकृष्ट पतित मानते हैं। कबीर उनके लिए एक दिव्य ज्योति हैं। हरिजन की आध्यात्मिक भूख कबीर ने ही मिटाई और उन्हें ईश्वर-दरबार में प्रवेश का साहस दिया। इसीलिए कबीर का निरगुनिया रूप ही सामान्य जनता को मान्य है—ईश्वर गोविंद की जिस लीला का गान कबीर-काव्य में है उससे वे अपरिचित से हैं। हरिजन को जब राम-मन्दिर, शिव-मन्दिर, गोपाल मन्दिर में जाने का अधिकार नहीं तब वह किसी भी ऐसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धावान् कैसे हो सकता है जो राम के मन्दिर का पुजारी हो। कबीर वैष्णव थे—भागवत थे, पर कबीर का दास उन्हें उस ईश्वर की ज्योति मानता है जो सर्वव्यापी है। राम मन्दिर का पुजारी और रामचरितमानस का अखंड परायण करनेवाला 'अखिलान्तरात्मा' राम के प्रेम में भावविभोर होना जानता है पर वह पड़ोसी शूद्र को अछूत-अस्पृश्य-नीच मानता है।

कबीर उत्तरी भारत के मुख्यतः उत्तर प्रदेश के पहले संत हैं जिन्होंने भेद को निर्मूल करने की बात बारबार दोहरायी है। कबीर की करनी-कथनी में अभेद था। कबीर कोरी थे—सामाजिक तिरस्कार के भुक्तभोगी थे। उनमें सत्य की अनुभूति की तीव्र लालसा थी। उनके भीतर जो दिव्य प्रकाश जगमगाया उसने उन्हें विवश किया सत्य को उजागर करने के लिए। उन्होंने हिन्दुओं के अहंकार पर, उनके भेदजनित धर्म पर, उनके सिद्धान्त और आचरण की भिन्नता पर, उनके त्याग-तप-संन्यास पर खुलेआम व्यंग्य किए। समस्त जगत् को उन्होंने उस 'परमसत्' की ओर मोड़ा जहाँ न वर्णभेद, न लिंगभेद, और न धर्मभेद। यदि कबीर मुसलमान जुलाहे होते तो हरिजन हिन्दू इतने प्रभावित न होते—एक हिन्दू ही हिन्दू की दुर्बलताओं पर प्रहार करके हिन्दुत्व को पुनर्जीवन दे सकता है। यदि कबीर मोमिन (मुसलमान) थे तो यह आश्चर्य है कि कबीर के प्रति भक्ति गाँव के मुसलमानों—जुलाहों में भी—नहीं पायी जाती। हरिजनों को कबीर की साखी कंठस्थ मिलेगी और जब-जब वे ईश्वर की बात करेंगे उसके आधार कबीर ही होंगे। मुसलमान की जमात में कबीर का प्रभाव देखने-सुनने को नहीं मिलता। कबीर का अद्वैतवाद—ब्रह्मवाद—निरंजनवाद, भागवतवाद मुसलमानों के गले न उतरा।

कबीर का राम-अल्लाह पर्याय है। कबीर ने मुहम्मद को नहीं स्मरण किया है। कबीरबानी की पोथियाँ मुसलमानों के यहाँ नहीं। सूफियों में कबीर की गिनती नहीं। हिन्दू उच्चवर्णों में भी कबीर के प्रति अभिरुचि नहीं। अतः कबीर अछूत समुदाय के ईश्वर कहे जा सकते हैं। कबीर-रैदास-दादू ये सभी निम्न वर्ण के हरि-भक्त थे।

कबीर और उनकी जीवन-जगत् के प्रति दृष्टि को समझने के लिये हमें अपनी रूढ़िवादिता को छोड़कर आना होगा। कबीर एक आलौकिक विभूति थे। कबीर इस धरती के—उपेक्षित जन-जन के—कवि हैं। उनका धर्म जगत् से जुड़ा है वह किसी चौखटे में घिरा नहीं है। उनका अनुभौ आत्माराम का अनुभव है। ज्ञानदेव का **अमृतानुभव** कबीर के अनुभौ का ही पूर्व रूप है। संत सत्य का अनुभव करते थे, वे शास्त्र से मर्यादित नहीं थे। इसीलिये वे मध्यकालीन जनता को नयी दृष्टि, नया जीवन दे सके और परिणामस्वरूप भारत उन्हीं के अनुभव के बल पर अखंड और एक है। दक्षिण से उठी अभेदवाद-भक्तिवाद की लहर महा-राष्ट्र-गुजरात होती हुई समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो गयी। तत्कालीन इतिहास और सामाजिक अवस्था की यह माँग भी थी। हिन्दू धर्म को विनष्ट होने से बचाने वाले ये महान् संत ही हैं। और ये संत देववाणी की जगह उपेक्षित जनवाणी को आसीन कर सके। मुसलमानों का एकेश्वरवाद और उनकी सामूहिक एकता भक्ति आंदोलन की उमड़ती धारा को रोक नहीं सकी बल्कि उनकी क्रूरता—धर्मान्धता संतवाणी को सर्व सामान्य तक पहुँचाने में सहायक हुई। हिन्दू धर्म के इस नए मोड़ से हम संन्यासी-यति नहीं गृहस्थ बनकर अपने भीतर के राम को खोज सके। हमारी संस्कृति के वास्तविक निर्माता ये संत कवि ही हैं। इनके बिना न हमारी भाषाएँ विकसित होतीं और न पूरा भारत एकात्मभाव का अनुभव करता। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी इन्हीं संतों की देन है—ज्ञानदेव, नामदेव, कबीर, नानक-जायसी ने जन- जीवन से शब्द लिये और उसी के माध्यम से जन-जन को चेतनता दे गये। गुरु ग्रन्थ अथवा नानक की वाणी में नामदेव-कबीर सभी का संगम है। नामदेव पंजाब में काफी समय तक थे। वल्लभाचार्य-रामानुज-रामानंद-एकनाथ सभी उत्तर भारत आकर रहे हैं। मध्य देश की भाषा, विशेषतः वाराणसी की भाषा, का समस्त संत साहित्य में प्रयोग है। वाराणसी वैकुण्ठ नगरी थी अध्यात्म पथिकों के लिए। यह सत्संग का केन्द्र स्थल था। ये संत 'नेता' नहीं थे पर इनकी वाणी ने पूरे भारत का नेतृत्व किया।

कबीर-वाणी के संबंध में मैं वही कहना चाहूँगा जो श्री पुरुषोत्तम यशवंत देशपांडे जी ने ज्ञानदेव की वाणी के सम्बन्ध में कहा है,

> "ऐसी है ज्ञानदेव की वाणी। वे बोलते हैं और उनके शब्दों से निकलती तरंगें वक्ता और श्रोता को एक साथ पारस्परिक समझ की एक ऐसी यात्रा पर ले चलती हैं जिसे स्थान, काल या परिस्थितियाँ म्लान नहीं

कर सकतीं हालांकि वह यात्रा ठीक इन्हीं के भीतर से गुजर कर होती है।......ज्ञानदेव एक अलौकिक विभूति हैं, एक अलौकिक चमत्कार हैं—इसमें संदेह नहीं।"

ज्ञानदेव कैसे यह चमत्कार कर सके ? **अनुभवामृत** में वे स्वयं कहते हैं—

"मैं अपने **अमृत-अनुभव** की बात करता हूँ जो मेरे संपूर्ण अनुभवों का निचोड़ है। सभी मनुष्यों के अनुभव—उनके जो मुक्त हैं, उनके जो मुक्त नहीं हैं, और उनके जो मुक्ति के आराधक हैं—मूलतः एक ही महत्ता रखते हैं। परिपक्वता के क्षण में अनुभूति-रहस्य का अमृत चखते ही उनके विभेद समाप्त हो जाते हैं। और यही सभी मनुष्यों की स्वाभाविक नियति है। यह हर युवती में छिपे यौवन-पुष्प की तरह है; वह तभी खिलता है जब वह अपने प्रियतम से जुड़ती है। या यों कहें कि यह उन वृक्षों की भाँति है जिनमें फूलने और फलने की क्षमता सदैव रहती है, परन्तु बसंत के आगमन पर यह क्षमता हर शाखा-प्रशाखा में फूट निकलती है और फिर आकाश चूमने लगती है......

इसी प्रकार सभी मनुष्य (अपरिपक्वता के विभिन्न स्तरों पर चाहे जो विभेद रहें) मेरे अनुभव के इस अमृतरस को चख सकते हैं। बशर्ते कि वे इन शब्दों के मर्म में बैठने का प्रयत्न करें और उस सिंहासन का साक्षात्कार करें जो भीतर है। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनके अस्तित्व की शक्ति-नदी जीवन-सागर में मिलने के लिए उमड़ पड़ेगी, जिस तरह प्राकृतिक नदियाँ बाढ़ आने पर विशाल समुद्रों की ओर उमड़ती हैं। और जब ऐसा होगा तो वे अनुभव करेंगे कि इस विराट ब्रह्माण्ड—सचराचर जगत् में ऐसा कुछ भी नहीं जो इस **अमृतानुभव** के घेरे से परे हो।" (अध्याय 10 के छंद 10-28 का सारांश)

अपनी भाषा के सम्बन्ध में **ज्ञानेश्वरी** में ज्ञानदेव कहते हैं—

"मेरी भाषा मराठी है (संस्कृत नहीं जो देवताओं की भाषा बताई जाती है) परन्तु, जागरूक आत्मचेतना से युक्त श्रोता पायेंगे कि इन सीधे-सादे मराठी शब्दों का माधुर्य स्वर्ग के अमृत को भी मात करता है।"

ऐसी ही है कबीर की वाणी और ऐसा ही है कबीर का अनुभव। कबीर ने नयी भाषा, नयी संस्कृति दी।

ज्ञानदेव के सम्बन्ध में श्री पुरुषोत्तम यशवंत देशपांडे कहते हैं :

"**ज्ञानदेव** एक ऐसा नाम है जो मराठी भाषी करोड़ों लोगों के हृदय में एक अनोखी झंकार पैदा कर देता है। यह ऐसी झंकृति है जो मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और जगत् के बीच समस्त मानसिक अवरोध हटा देती है, यह झंकृति जहां नितांत वैयक्तिक है वहां गहन अर्थों में सार्वभौम भी।"

कबीर की यही स्थिति उत्तर भारत में रही है।

२४. कबीर और नामदेव

नामदेव शिंपी (दर्जी) महाराष्ट्र के परम संत थे। वे शोलापुर जिले के प्रसिद्ध तीर्थ पंढरपुर के मन्दिर में विट्ठल के रूप में पूजे जानेवाले विष्णु के भक्त थे। वैसे उनके अनेक पद अव्यक्त परमेश्वर के प्रति भी हैं। वे अव्यक्त को व्यक्त का मूल मानते थे। नामदेव का समय विवादास्पद है—कुछ लोग इन्हें ज्ञानेश्वर का समकालीन मानते हैं अर्थात् चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध। पर नामदेव की भाषा-शैली ज्ञानेश्वर की अपेक्षा आधुनिकता के निकट है इसलिए रामकृष्ण गोपाल भांडारकर आदि विद्वान् नामदेव को ज्ञानेश्वर के बहुत बाद का मानते हैं। नामदेव 14वीं सदी में थे। कुछ लोग इनका रचनाकाल 15वीं सदी का पूर्वार्द्ध मानते हैं। **चनाब नदी** (चन्द्रभागा) पश्चिमी पंजाब में बहती है वहाँ कबीर गए थे और संत-समागम भी वहाँ हुआ था ऐसा **संत नामदेव की हिन्दी पदावली** (189) में है। अत: नामदेव और कबीर वहीं मिले होंगे। नामदेव और कबीर समकालीन होंगे तभी ऐसा सम्भव हुआ होगा। अर्थात् नामदेव और कबीर का समय पन्द्रहवीं सदी है। कबीर वाणी की पांडुलिपि संवत् 1561 में लिखी जा चुकी थी।

नामदेव चलते-फिरते वैष्णवभक्ति के प्रचारक थे। कानडी, मराठी, गुजरातीं, राजस्थानी, हिन्दी, पंजाबी जनपदीय बोलियों से वे परिचित थे। मुसलमानों की फारसी मिश्रित शब्दावली का भी उन्होंने प्रयोग किया है। नामदेव ने ईश्वर का साक्षात्कार किया था—वे भगवत्कृपा के धनी थे ऐसा परम्परा से पुष्ट है, उनकी रचनाओं से भी। नामदेव दर्जी थे। वे शूद्र थे—कमीन थे कबीर की तरह। ब्राह्मणों ने उनका निरादर किया था। नामदेव भेद के विरोधी थे कबीर की भाँति। वे पंडित, शास्त्रज्ञ, तार्किक, अनीश्वरवादी के विरोध में हैं और सहज राम-भक्ति के पक्ष में। रामनाम का माहात्म्य कदाचित् नामदेव से कबीर को मिला और तभी से सभी संतों ने नाम-सुमिरन पर बल दिया। भागवत धर्म के अग्रदूत ज्ञानदेव-नामदेव का समूचे वैष्णवभक्तों पर प्रभाव है। कबीर ने नामदेव के विश्वास और उनकी सगुण भक्ति के चमत्कार का वर्णन बड़ी ही श्रद्धा से किया है—विट्ठल ने ब्राह्मणों की अवहेलना कर नामदेव की निर्मल भक्ति का पक्ष लिया। **नामदेव की हिन्दी पदावली** (131) में गोविन्द के चमत्कार का इस प्रकार वर्णन है :

तू मेरो ठाकुर तूँ मेरो राजा हौं तेरे सरनैं आयौ हौं।
जस तुम्हरो गावत गोविन्द इन लोगनि मारि भगायौ हो।
आलम दुनि आवत मैं देखी साइर पांडे कोपिला हो।
सुद्र सुद्र करि मारि उठायौ कहा करौं मेरे बाबुल हो ॥

प्राण गए जे मुकति होत है सो तो मुकति न दीसै कोई हो।
ये बाभण मोहिं सूद्र कहत हैं तेरी पैज पिछौड़ी होई हो ।।
भई चहूँ दिसि अचरज भारी अद्भुत बात अपारा हो।
दास नामां को भयौ दुवारौ पंडित को पछिवारा हो ।।

नामदेव की शरणागति, उनके प्रति ब्राह्मणों का विरोध और उनकी मुक्ति की धारणा आदि का उक्त पद में स्पष्ट वर्णन है। कबीर इसी शरणागति के भक्त हैं उनका 'ठाकुर' वही है जो नामदेव का। नामदेव के जीवन की उक्त घटना को कबीर ज्यों का त्यों अपने पद में स्थान देते हैं :—

मन रे हरिभजि हरिभजि हरिभजि भाई।
जा दिन तेरे कोइं नाहीं ता दिन राम सहाइं ।।
तंत न जानूं मंत न जानूं जानूं सुन्दर काया।
मीर मलिक छत्रपतिराजा ते भी खाये माया ।।
बेद न जानूं भेद न जानूं जानूं एकहि रामा।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्हा मुख कीन्हौ जित नामा ।।
राजा अम्बरीष कै कारण चक्र सुदरसन धारै।
दास कबीर कौं ठाकुर ऐसौ भगत की सरणि उबारै ।। '121 गौड़ी

नामदेव की भक्ति सम्बन्धी उक्त घटना के सम्बन्ध में कहा जाता है कि "एक समय नामदेव आलावंती स्थान पर गये और वहाँ के मन्दिर के द्वार के सामने कीर्तन करने लगे। शूद्र जानकर वहाँ के पंडों ने इन्हें वहाँ से उठा दिया। वे दुखी होकर मन्दिर के पिछवाड़े बैठकर कीर्तन करने लगे। कीर्तन से मन्दिर का द्वार झट पूर्व से पश्चिम की ओर हो गया। इस प्रकार पंडे भगवान के पिछवाड़े पड़ गए और कबीर सम्मुख।" नामदेव की पंक्ति 'दास नामा कौ भयो दुवारौ पंडित को पछिवारो हो।' कबीर में "पंडित दिसि पछिवारा कीन्हा मुख कीन्हौ जित नामा" है। दुवार-पछिवार-कोपिला अवधी-भोजपुरी हैं और आज भी प्रचलित हैं। नामदेव ने काशी-यात्रा भी की होगी—उस समय सभी साधु-संतों का यह महान तीर्थ था। संत नामदेव की हिंदी पदावली (सं० डॉ० भगीरथ मिश्र) पद 189, 5-6 इस प्रकार है :

चंद्रभागा बालवंट पर कबिरा धूम मचाई।
साधुसंत की हो गई गर्दी भजन कुटाई खूब खाइं ।।

चन्द्रभागा = चनाब नदी (पश्चिमी पंजाब) के आस-पास नामदेव-कबीर की भेंट हुई होगी। संभव है नामदेव के मुख से ही उक्त घटना को कबीर ने सुना हो। लगता है कि नामदेव-कबीर एक दूसरे से पूर्ण परिचित थे। नामदेव का उक्त पद ग्रंथ साहब में भी है।

कबीर यदि मन्दिर के विरोधी होते या उनकी सगुण में आस्था न होती तो

वे नामदेव की और न उनकी इस घटना की इतनी सच्चाई-श्रद्धा के साथ चर्चा न करते। अन्यत्र, कबीर ने, नामदेव जयदेव दोनों वैष्णव भक्तों को शंकर-हनुमान-सुक-उद्धव-अक्रूर की श्रेणी का कहा है :

जागे सुक उधव अक्रूर हणवंत जागे लै लंगूर।
शंकर जागे चरन सेव कलि जागे नामां जैदेव।। 10 बसंत

सूरजदास ने भी नामदेव का स्मरण किया है :

कलि मैं नामा प्रगट ताकी छानि छवावै। 4

इससे स्पष्ट है कि नामदेव उस युग में अत्यन्त मान्य संत थे। नामदेव, कबीर-सूर दोनों के आदर्श हैं। नामदेव के जीवन में यह दूसरा चमत्कार है कि भगवान ने उनकी छान छाई। भगवान ने उनके हाथ से दूध पिया यह भी चमत्कार प्रसिद्ध है। ये सभी तथ्य नामदेव की सगुणभक्ति से संबंधित है। कबीर को इन चमत्कारों में विश्वास था। उनका स्वतः भी अनुभव था कि भगवान भक्त की हर स्थिति में मदद करते हैं। तुकाराम के अभंग के अनुसार भगवान ने कबीर का वस्त्र स्वयं उनके करघे पर बैठकर बुना था—"कबिरा चे मांगे विणी शेणे" तुकाराम ने नामदेव का स्मरण करते हुए लिखा है, "नामदेवा हातीं दूध प्याला।" और कबीर के सम्बन्ध में फिर एक अन्य पद में उक्त बात को दोहराया है—"कबिराचे मार्गी विणूं लागे शेले।" माग (कन्नड़, मग्ग) = वेमन् = करघा।

सूर ने भी कबीर की भाँति अम्बरीष का गुणगान गाया है :

सरन गए को को न उबारयौ।
जब जब भीर परी संतनि कौ चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्‌यौ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौ दुरबासा कौ क्रोध निवार्‌यौ।। 14

नाभास के पुत्र अम्बरीष गृहस्थ भागवत थे। वे निष्काम भाव के आदर्श थे, यद्यपि वे सब प्रकार से समृद्ध थे। श्रीमद्‌भागवत् प्रथम स्कंध में इनकी भगवद्‌भक्ति का विस्तृत वर्णन है। अंबरीष के अनन्य प्रेम से प्रसन्न होकर भगवान् ने सुदर्शन चक्र को उनकी रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया था। वैष्णव अंबरीष एकादशी व्रत के बाद द्वादशी का पारायण करने जा ही रहे थे तबतक दुर्वासा पहुँचे। दुर्वासा की सेवा के लिए अंबरीष तैयार हुये पर अंबरीष यमुना में स्नान करने चले गए। उन्हें लौटने में विलंब हुआ, द्वादशी समाप्त हो रही थी। इसलिये जल पीकर अम्बरीष ने पारायण कर लिया। दुर्वासा लौटकर अम्बरीष पर आग बबूला होने लगे और उन्होंने कृत्या उत्पन्न कर अम्बरीष को भस्म करना चाहा। पर चक्र सुदर्शन ने कृत्या को भस्म कर दुर्वासा का पीछा किया। दुर्वासा ब्रह्मा-शंकर सबके यहाँ आर्त होकर पहुंचे—सब जगह से निराश होकर भगवान विष्णु के पास जाकर उनके चरणों में पड़कर उन्होंने क्षमा माँगी। भगवान् ने उन्हें समझा कर अम्बरीष के पास जाने की सलाह दी—"मैं सर्वथा भक्तों के अधीन हूं—मेरे सीधे-सादे सरल

भक्त ने मेरे हृदय को अपने हाथ में कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे। समदर्शी साधु, भक्ति के द्वारा मुझे अपने वश में कर लेते हैं। दुर्वासा जब अम्बरीष के पास पहुँचे तो अम्बरीष उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे, उन्हें अनुभव हो रहा था कि वे यहीं आवेंगे चक्र से मुक्ति के लिये। अम्बरीष ने भगवान् से प्रार्थना की 'यदि मैंने समस्त प्राणियों में आपको ही देखा हो—'सर्वभूतात्मभावेन—' तो दुर्वासा के हृदय की जलन मिट जाय।" अम्बरीष की प्रार्थना पर सुदर्शन चक्र ने अपना प्रभाव हटा लिया। दुर्वासा ने, भक्त की महिमा अनुभव करते हुये राजा अम्बरीष से कहा, यद्यपि मैंने आपका अपराध किया फिर भी आप मेरे लिये मंगल-कामना कर रहे हैं। अम्बरीष, आपका हृदय करुणापूर्ण है।"

अम्बरीष तदनन्तर पुत्रों पर राज्य भार छोड़कर वन चले गये और धीरता के साथ आत्मस्वरूप भगवान् में अपना मन लगाकर गुणों के प्रवाह रूप संसार से मुक्त हो गये।

अम्बरीष का यह पवित्र आख्यान सुनने और इसका संकीर्तन करने वाला भगवान् का भक्त हो जाता है।

अंबरीष का निष्काम प्रेम आदर्श है, उनका आचरण अनुकरणीय है। उनकी कल्याण-भावना लोकधर्म का आधार है। कबीर अम्बरीष की भाँति ही परमभक्त होना चाहते हैं इसीलिये वे भगवान्, उनके चक्र और भगवान् की भक्त-वत्सलता का गुणगान कर रहे हैं। आदर्श भक्तों के स्मरण-कीर्तन से मनुष्य निर्मल हो जाता है और उसे निष्काम जीवन की प्रेरणा मिलती है।

अम्बरीष की यह कथा शुक ने परीक्षित को सुनाई थी। इसमें शारणगति योग की महिमा है। कबीर का यह विश्वास है कि जो अम्बरीष की भाँति भगवान् को समर्पित कर देगा और सर्वत्र ईश्वर का साक्षात्कार करेगा वह इस जीवन में ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी अम्बरीष का, राम-भरत मिलन के अवसर पर स्मरण किया है :

बहुरि विचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत, भगति बस अहहीं।
सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥2।265

भक्त भगवान के वश में हैं यही कबीर-सूर-तुलसी सभी ने प्रतिपादित किया है। अतः कबीर सूर-तुलसी सभी वैष्णव हैं। अम्बरीष निर्मल मन वाले और सर्वत्र उसी ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले थे। यही ब्रह्म-विद्या है। भक्त अपनी चिन्ता नहीं करता उसकी चिन्ता, भगवान करते हैं। यही इस आख्यान का संदेश है—नामदेव कहते हैं :

तेरा कहलाता हूँ सँभाले हे देव
नामा को केशव सर्वकाल सँभालो। 1333

तथा, नामदेव कहता है भक्त की वत्सलता दिखा
आगे पीछे तूही खड़ा है सँभालने के लिए ।। 1234

नामदेव अपने इष्ट के प्यार पर आश्रित हैं—

विट्ठल माता कृपा की कोमल है ।
उसकी याद करते ही वह प्रेम का दूध देती है ।
तू मेरी माता मैं तेरा बछड़ा ।
अपना दूध कम मत करो पांडु रंग ।
तू मेरी हिरनी मैं तेरा शावक
भवपाश तोड़ो हे पाण्डुरंग ।
तू मेरी पक्षिणी मैं तेरा अंडज
मुझे चारा खिलाता है पाण्डुरंग ।।1234

नामदेव ऐसा निर्मल भक्त-भागवत सचमुच कलि में दूसरा नहीं हुआ। उनकी नाम भक्ति से ही कदाचित् उनका नाम **नामदेव** पड़ा।

नाम महिमा के सम्बन्ध में नामदेव कहते हैं :

नाम में ही नारायण है । वह भक्तों के अधीन है
भक्ति न माँगकर, नाम में ही चारों मुक्ति है
नाम न भूलो । वही स्वर्ग में निशान है
नामा कहते हैं ऐसा प्राणी नारायण में जाकर
समान हो जाते हैं ।'' 799

नाम गा देने में ही **नामदेव** मुक्ति मानते हैं :

न काया क्लेश करता है न इन्द्रिय-निरोध,
मेरा तो बोध है कुछ और ही
नामा कहता है कि मैं नाम गा दूँगा निर्विकल्प
आऊँगा आप से आप खोजते हुये ।। 1222

नामसंकीर्तन-नामसुमिरन, नाम जप, नाम पर भरोसा यही परम भागवत नामदेव की देन है। कबीर सूर-तुलसी-सभी उनके अनुगामी हैं। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर ने अपने शिष्य को एक ही उपदेश दिया कि सर्वत्र वही ब्रह्म है—

मेरे प्राणों को क्यों जगाया
ईश्वर के बिना कौन जगह खाली है ?

और नामदेव को साक्षात्कार होता है :

नामदेव देखता है उधर ईश्वर ही ईश्वर है ।
कोइ खाली जगह नहीं दिखाई दी ।। 1098

बस यही है ब्रह्मज्ञान । गुरु खेचर ने—

कानों में यह बात कही मस्तक पर हाथ रखा,
पद पिंड विवर्जित किया नामदेव को ।

ब्रह्मदर्शन ही मुक्ति है। 'विठोबा के पैर न भूलूँ' यही लक्ष्य था नामा का।

नामदेव पंजाब में लगभग बीस वर्ष रहे। वे पंढरपुर से चलकर भक्ति-मार्ग का प्रचार करते हुए द्वारका गये, वहाँ से मारवाड़, मथुरा, हरिद्वार और फिर पंजाब की ओर मुड़े। नामदेव के शिष्यों में विष्णुस्वामी, बहोर दास, लड्ढा जल्ला, और केशों कलाधारी की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। नामदेव का प्रभाव रामनाम भक्त रामानन्द पर भी माना जा सकता है। **मोरोपन्त** ने नामदेव के लिए कहा है :

श्रीनारद मुनि का जो सुमहद्व्रत वही नामदेव का।
उसने प्रसिद्धि कर दी 'विट्ठल' यही भव्य नामदेव का ।।

सद्गुरु की महिमा नामदेव के शब्दों में—

मेरा भवबंधन नहीं टूटता है।
सद्गुरु की आज्ञा के बिना ।। 1088

नामदेव के अभंगों में उपालंभ है स्वामी के प्रति :

अब क्यों अंतर से निष्ठुर हो, क्यों नहीं जल्दी आते हो विट्ठल!
मेरी ओर पीठ करके मन्दिर में बैठे धूर्जटी
अब कृपा दृष्टि से देखो
मुझे मिला है जगत्पिता।

प्रेम-भक्तिरस की ही आकांक्षा है नामदेव को :

भक्ति रस का प्रेम दो
हे ईश्वर मुझे दूसरा जन्म दो।
यदि प्रेम हाथ आ जाय
तो जहाँ बसेंगे वही पंढरी हो जायगी। 259

कबीर का भी विश्वास है : मगहर कासी हो जायगा यदि भीतर प्रेम-भक्ति है—स्थान का महत्त्व नहीं। यही भारतीय प्रेम-तत्त्व सूफी जायसी में भी है। यह सगुणभक्ति की देन है। नामदेव कहते हैं :

ज्ञान सत्य मुक्त शुद्ध बुद्ध मुक्त। कारण रहित निरंजन
हमने देखा चर्म चक्षुओं से
खड़ा है पंढरी में बालू में
वेदों को अगोचर जो सहस्रमुख को भी
वह हुआ पुंडलीक के वश प्रेम से।

संसार में कैसे रहो इस पर नामदेव के विचार हैं :

संसार में रहो रहकर भी न रहो
कीर्तन करो समय समय पर
नामा कहता है विट्ठल भक्त के द्वार पर है
हाथ में सुदर्शन लेकर ।। 170

नामदेव भागवत धर्म के अनुयायी हैं :

हमें मिल गया है मर्म, हम करें, भागवत धर्म।
सत्संगति साधें। पकड़कर हृदय से बांधे ॥ 1152

नाम-माहात्म्य नामदेव के शब्दों में—

नाम ही कर्म है नाम ही धर्म है
केशव ने यह मर्म बताया।
नाम ही गति है नाम ही मुक्ति है
नामा के चित्त में राम नाम है। 701

द्वैत को अद्वैत में मिलाना ही राममय होना है—

गुरुपद में पहले शरण जाना चाहिए
द्वैत-अद्वैत में मिलाना चाहिए। 885

गुरु के शरणों में जाना आनिवार्य है भागवत के लिए।

सांख्यवादी, चार्वाक तार्किक हैं,नामदेव कहते हैं वाद-विवाद से बचें:

हरि मिलने की राह और ही है
एक हैं तार्किक चार्वाक आदि वाद-विवाद
करने वाले। हरि का सुख और ही है।
जिन्होंने तुझे जाना वे मौन रह गये ॥
नामा कहते हैं वे पा गये भक्ति योग से ॥ 1755

कबीर ने भी साषित-जैन-बौध-चार्वाक से बचने को कहा है।

कबीर जिस प्रकार कबीर बने राम के कारण या उनका नाम कबीर पड़ा उसी प्रकार नामदेव-नामा नाम राम ने दिया:

बहत्तर दोष देवगण के कंठ में हैं
हमें तो जगत्पिता नामा कहते हैं। 2041

कबीर की भाँति नामदेव भी अपनी ब्रह्मानुभूति को स्वीकारते हैं—

नामदेव कहता है कोई निंदा करे या स्तुति
हम तो ब्रह्मानंदाकार हुए हैं ॥1522

नामदेव भी हिंदू-मुसलमान दोनों को सीख देते हैं—

हिन्दू पूजै देवता मुसलमाणु मसीद
नामे सोई सेविआ गह देहुरा न मसीत ॥

नामदेव में प्रेमकलह वही है जो कबीर सूर-तुलसी में। नामदेव कहते हैं:

पतित पावन नाम सुनकर मैं द्वार पर आया
पतित पावन नहीं इसलिये वापस जाता हूँ।
पतित पावन नाम रखा किसने ?

अतः, हिन्दी का भक्ति-साहित्य नामदेव से प्रभावित है।

[नामदेव सम्बन्धी उद्धरण-"नामदेव"—माधव गोपाल देशमुख, अनुवादक प्रभाकर माचवे, साहित्य अकादमी—से दिये गये हैं।]

२५. 'रामअधार' की आनन्द-यात्रा

रामअधार कहत हैं जुगजुग दास कबीरा गावै । 2 मल्हार

कबीर **रामअधार** हैं—संभवतः कोरीभक्त का नाम यही था : कोरी-जुलाहा बुनकर है। कबीर हिन्दू कोरी थे अथवा मोमिन (मुसलमान जुलाहा) यह प्रश्न विवादास्पद है। पर कबीर रामदास, कबीर (राम) दास थे—वे रामभक्त थे। जिसे राम का ही सहारा है वही राम को पाता है। कबीर कभी राम के लिए व्याकुल होते हैं और कभी उनके मिलन-सुख में भावविभोर हो उठते हैं और कभी आत्माराम को पाकर परमानन्द की स्थिति में होते हैं। ये सभी भाव परस्पर पूरक हैं। कबीर में योग है पर प्रयत्न के रूप में नहीं—वह परमानन्द से ऐक्य की अवस्था है। योगी को अपने ध्यान का बल होता है, संन्यासी को अपने अंहमेव —आत्मज्ञान का। पर कबीर के बल राम हैं :

पंडित माते पढ़ि पुरान। जोगी माते धरि धियान।
संन्यासी माते अहमेव। तपा जु माते तप कैं भेव॥
ए अभिमान सब मन कै काम। अभिमान नहीं रहै ठाम॥

कबीर इनमें से किसी वर्ग का नहीं—वह **'रामअधार'** है, उसे रामनाम से प्रीति है और इसी में वह आत्माराम है—अपने राम को वह अपने भीतर पाता है।

आतमाराम को मन विश्राम। कहि कबीर भजि राम नाम॥ 10 बसंत

कबीर को हम यदि किसी वर्ग विशेष में रखना ही चाहें तो नामदेव की परम्परा में नाम भक्त कहें—रामचरणों के सेवक कहें। कबीर—रामअधार—इसी से तुष्ट होंगे। उनका निर्गुण सगुण और उनका सगुण निर्गुण है। कबीर भेद नहीं जानते। उनका राम निर्गुण भी है सगुण भी—वह 'अनन्तकला गोब्यंद' है, वह 'जगजीवन' है, वह सबका 'आधार' है। वह भीतर बसने वाला—रमण करने वाला 'आत्माराम' है। कबीर का जीव उससे ही पोषित है उसी के 'अमृतरस' से सिक्त है। जिस प्रकार बीज को वृक्ष से अलग नहीं कर सकते उसी प्रकार अव्यक्त को व्यक्त से अलग नहीं कर सकते। जो सूक्ष्म है वही विराट भी—सूक्ष्म में विराट समाया हुआ है और विराट में सूक्ष्म यही अभेददर्शन कबीर का वेदांत है। वेदांत के स्रोत उपनिषद् हैं और उपनिषद् एक सत् का प्रतिपादन करता है। उस सत् के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है—उसे चाहे निर्गुण कहें चाहे सगुण। वह नेत्रों से दिखाई पड़ते हुये भी नेत्रों से परे है, इन्द्रियों से अनुभव करने पर भी वह आत्मानुभव की वस्तु है। अनुभव ही आधार है उसे समझने-जानने-पहचानने का। प्रत्येक को उसी का रूप मानें—प्रत्येक में उसी को देखें यही समदृष्टि है। यह सारे योग

और सारी भक्ति का फल है। जिसे यह दृष्टि नहीं प्राप्त है वह पंडित होते हुए भी गँवार है, योग साधना करते हुए भी संसारी है। सारा दर्शन इस दृष्टि को विकसित करने में है। इसे प्राप्त करने के लिए ही सतत सुमिरन अपेक्षित है। सुमिरन के लिए नाम प्रतीक है। जहाँ अपना विवेक ज्ञान सहायता नहीं करता वहाँ राम की कृपा का सहारा लेना पड़ता है। कबीर का दर्शन समन्वय का है—गृहस्थ बने रहो पर भगवान के चरणारविंद की शरण न छोड़ो—दुनिया से भागने की अपेक्षा नहीं। जो करो उसमें राम के स्पर्श का अनुभव करो—इससे 'अभिमान' पास नहीं फटकेगा। संसार द्वन्द्व से भरापूरा है—एक साथ अंधकार प्रकाश; एक साथ अज्ञान और ज्ञान। जिस क्षण व्यक्ति अज्ञान अथवा मन के विकारों—लोभ-मोह-आसक्ति—का शिकार होता है वही क्षण माया के आक्रमण का है। उससे उबरने के लिए मायापति परमात्मा की शरण में जाना पड़ता है—यही 'रामदास' होना है, 'रामअधार' होना है। कबीर जब अपने को माया-अज्ञान-अंधकार-मोह-आसक्ति से प्रताड़ित पाते हैं तो वे अपने भीतर बैठे राम की शरण जाकर अनुभव करते हैं—

राम नाम निजु अमृत सार। मुहड़े बांध्या मरे गँवार।
कहै कबीर दासनि कौं दास। अब नहीं छाड़ौं चरन निवास।। कल्याण

कबीर यहाँ न योगी है, न ज्ञानी, न ध्यानी, वे अपनी शक्ति को भूलकर रामचरन का आधार माँगते हैं जिसने सारे संतों को आश्रय दिया। वे इसीलिए अपने को **दासनि कौं दास** कहते हैं। कबीर को निराकारवादी मानने वालों को इस समर्पण में विरोध नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। समर्पण अर्थात् अपनी दुर्बलता का और परमात्मा के सामर्थ्य का अनुभव। जिन्होंने जीवन में सतत संघर्ष किया है सत् को पाने का वे जानते हैं कि ऐसे क्षण आते हैं जब गज की तरह पुकार-गोहार लगानी ही पड़ती है और सचमुच तब वह स्वामी आ दौड़ता है—आप में आत्मबल का संचार होता है और निराशा के अंधकार में आप प्रकाश का अनुभव करते हैं। वस्तुतः, जीवन जड़ 'स्टैटिक' नहीं सतत गतिशील है ऋतु की तरह—सतत परिवर्तन—शरीर के अणु-अणु में—भाव में। जब तक इस शरीर में आत्मा है तब तक यह परिवर्तन अनिवार्य है—माया से सदा मुक्त रहना संभव ही नहीं है। योगी-भक्त वही है जो सतत सचेत है अपने को पवित्र-परिशुद्ध-सच्चरित्र बनाए रखने के लिए। साधना-साध्य में अभेद है। सिद्धि जड़ता नहीं—वह कोई क्षण है सफलता-परमानन्द अथवा मुक्ति का। कालचक्र न जीवन है और न मृत्यु वह दोनों है। इस द्वैतभाव में आनन्द की उच्च से उच्च अवस्था ढूँढ़ना ही मनुष्य की सिद्धि है। कबीर किसी मार्ग विशेष के न अनुयायी हैं और न उसके निंदक। उनका एक ही लक्ष्य है—संसार के दुःख से मुक्ति, उस क्षण की प्राप्ति जब व्यक्ति सत्-चित्-आनन्द का स्वरूप बन जाय। यही उनका **ततसार**—तत्त्व-ज्ञान—है।

कबीर अपने आनन्द के क्षण का अंकन रूपक से करते हैं—

काया कलाला लाहनि करिहूँ गुरु सबद गुड़ कीन्हा ।
काम क्रोध मोह मद मत्छर काटि काटि कस दीन्हा ॥
भुवन चतुरदस भाठी पुरई ब्रह्म अगनि परजारी ।
मूँदे नयन सहज धुनि उपजी सुखमन पोतनहारी ॥
नीझर झरै अमीरस निकसै तिहि पद रावल छाका ।
कहै कबीर यह बात बिकट अति ध्यान गुरु ले बाँका ॥ 3 रामकली

इस रूपक का यह निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं है कि कबीर गोरखनाथी हठयोगी थे । यह रूपक उस परमानन्द की अनुभूति को व्यंजित करने के लिए है । 'ब्रह्म अगिनि' आत्माराम की अनुभूति है । ब्रह्मअगिनि तभी प्रज्वलित होगी जब 'काम-क्रोध-मोह—' को सतत संयम में रखने की चेष्टा की जायगी । गुरु सबद गुड़ है—बिना गुड़ (मीठा) मदिरा बन ही नहीं सकती । मदिरा भट्ठी कलाल के रूपक सभी संत-साहित्य में हैं । जिस प्रकार स्त्री-पुरुष की समरसता उस एकता का प्रतीक है उसी प्रकार मदजनित आनन्द प्रतीक है परमानन्द का । भीतर बैठे राम से जो सम्बन्ध जोड़ता है वह उस भीतरी आनन्द-स्रोत का—'नीझर और अमीरस निकसे' का अनुभव करता ही है । आनन्द ही कसोटी है ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-अनासक्ति की ।

———

Our so-called Pandits will talk big. They will talk of Brahman, of God, of the Absolute, of Jnana Yoga, of philosophy, of ontology and the rest. But there are very few who have realised what they talk about.

O preacher, first obtain your commission and inspiration from God Himself. So long as you do not have this badge of Divine inspiration, you may preach all your life, but it will be a mere waste of breath.

—श्री रामकृष्ण परमहंस

●

सामाजिक अनुशासन बिना स्वतंत्रता एक सुनहला स्वप्न मात्र है ।

—राधाकृष्णन

२६. आज के सामाजिक प्रश्न और कबीर

कबीर-युग में सामाजिक असमानता का प्रश्न जिस रूप में था, उससे कहीं अधिक विकराल रूप में आज है। कबीर-युग से कई गुना अधिक आज शिक्षा का प्रसार है और विज्ञान की उन्नति के साथ सभी शिक्षण-प्रशिक्षण के साधन उपलब्ध हैं पर लगता है जो शिक्षा आज प्रचलित है वह भेद को घटाने की जगह बढ़ाने में सहायक है—आज शोषण, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, अनाचार और व्यक्तिगत सुख का स्थान सर्वोपरि है। आज व्यापारी अथवा अन्य पेशे वाले दूसरों का हानि पहुँचा कर लाभ और स्वार्थपूर्ति में लगे हैं। लोभी-संग्रही अपना ही पेट देखता है दूसरे भूखे हैं उसे इसकी चिन्ता नहीं। दूसरों का गला दबाकर, प्राण लेकर यदि पैसे मिलें, सुख की सामग्री मिले, मन की हविस पूरी हो तो अन्याय नहीं। आज टेकनालाजी दिन ब दिन विषय-सुख की सामग्री में बढ़ोत्तरी कर रही है परिणाम है कि जिनके पास सुविधाएँ उपलब्ध हैं वे उनसे बहुत ऊँचे समझे जाते हैं जिनके पास ये सुख-साधन नहीं हैं। यह खाई, यह भेद वैज्ञानिक उन्नति द्वारा लोभ की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के कारण है। कबीर-युग में समाजवाद नहीं था पर तब नीति-न्याय-धर्म की मर्यादा थी आज खुले आम धर्म का स्थान अनाचार-वेईमानी-व्यभिचार ने ले लिया है। आज समाजवाद का आधार न धर्म है, न नैतिकता है और न है पूरे समाज की उन्नति। समाजवाद और धर्म-निरपेक्षता की आड़ में व्यक्तिवाद, स्वार्थवाद, शोषणवाद, आतंकवाद दिन दूना रात चौ गुना बढ़ रहा है।

अतः यह निश्चय सा है कि आज की शिक्षा, आज की व्यापारिक उन्नति, आज की टेकनालाजी हमें नैतिक बुद्धि देने में असफल है। नैतिकता का नाम आज के परिवेश में लेना सदाचार की खिल्ली उड़ाना है। व्यभिचार ही धर्म है आज और समाजवाद-समता-समृद्धि के नाम पर जेब भरना ही आज का पेशा है। तन्त्र का ध्यान भी नैतिकता की ओर नहीं।

कबीर-युग में नैतिक पतन रहा होगा पर क्या इस विकराल रूप में नहीं; तब मनुष्य भगवान को डरता था, आत्मा की पुकार के विरोध में चलने में हिचकता था, अनैतिक कर्मों से दूर रहने की चेष्टा करता था, गरीब से प्रेम करता था, प्रीति और करुणा की महिमा थी और आज तो होड़ है पैसे कमाने की, कोठी खड़ी करने की, लम्बी से लम्बी दहेज पाने की और घूस देकर काम निकालने की।

प्रश्न अत्यन्त ज्वलंत है कि यह सामाजिक पतन क्यों? यह समृद्धि और विपन्नता की खाई क्यों? अनैतिकता का ऐसा बोलबाला क्यों? दूध में पानी मिलाना, नकली दवा देना, भोजन में विष मिलाना, सत्यानाशी मिली सरसों बेचना,

केसारी मिली दाल बेचना, घूस देकर आर्थिक लाभ करना—यह अधर्म हमारे समाज को निगल रहा है।

कबीर का बल हृदय-शुद्धि पर था, आचरण की शुद्धता पर था, परमारथ पर था, लोभ-मोह से मुक्ति पर था, आत्मसंयम पर था, समता पर था, अभेद पर था—ये सब आज और भी अपेक्षित हैं। नैतिक-आध्यात्मिक मूल्य आज व्यक्ति और समाज दोनों को बुरी तरह चाहिए। समाज को प्रमुख मानकर व्यक्ति के आत्मतत्त्व की उपेक्षा करने से नैतिक मूल्यों का सतत ह्रास है। समाज का पतन व्यक्ति के चरित्र से सम्बन्धित है। गरीबी से अधिक आध्यात्मिक-नैतिक खोखलापन बुरा है। गरीब व्यक्ति ईमानदार हो सकता है, उदार हो सकता है, सेवक हो सकता है पर स्वार्थी तो दूसरों को अधिक से अधिक हानि पहुँचा कर पैसे का महल खड़ा करना चाहता है। शासन कानून बनाता है पर कानून पर अमल व्यक्ति करता है। यदि व्यक्ति नैतिकता की अवहेलना करके चोरी-चोरी दूसरों का गला घोट कर अर्थ-संग्रह करता है तो वह कानून को भी धता पढ़ा सकता है। अनैतिक घूस के बल पर आगे बढ़ता है धर्म के बल पर नहीं—उसके लिए हृदय की शुद्धता कोई अर्थ नहीं रखती। वह न आत्मा की परवाह करता है और न परमात्मा की। कबीर का सिद्धांत है कि मनुष्य ईश्वर की शरण जाय सद्विचारों के लिये, आत्म बल के लिये, अभेद मार्ग पर चलने के लिये, क्रोध-लोभ से बचने के लिये। जब मनुष्य जीव-जीव में भेद न मानेगा, जीव-ईश्वर को एक मानेगा तब वह कैसे किसी के साथ विश्वासघात कर सकता है, कैसे दूसरे को धोखा दे सकता है, कैसे किसी का गला काट सकता है और कैसे भ्रष्टाचार की रोटी खा सकता है!

अतः, कबीर का अध्यात्म ही एकमात्र सत्पथ है व्यक्ति और समाज दोनों के उद्धार का। समाज में समानता तब तक नहीं आ सकती जब तक कि व्यक्ति अध्यात्ममार्गी बन कर शुद्ध बनने का प्रयत्न न करे। व्यक्ति को आत्म-संयम करना होगा। हृदय-शुद्धि के लिये सतत संघर्ष करना होगा। जीव को परमात्मा से शक्ति प्राप्त करनी होगी—वह जब फिसलता है तब वह प्रायश्चित्त करता है और इस प्रकार अपने को तपा-तपा कर स्वर्ण सदृश चमकाता है। यदि प्रत्येक मनुष्य संत बन जाय तो शोषक कौन और किसके साथ? अर्थ आवश्यक है पर, अर्थ का धर्मरहित होना बुरा है। भोग के साथ सेवा का ध्यान रखना ही कबीर का मार्ग है। कबीर गृहस्थ थे पर, परस्वारथी—रामसवारथी और सत्यार्थी—वे चाहते थे कि लोग पवित्र सेवक बनें। प्रत्येक जब दूसरे के हित-कल्याण का ध्यान रखेगा तब सतयुग आयेगा ही। भ्रष्टाचार का मूल परस्पर भेद है, अलगाव है, प्रत्येक जीव की समानता को न अनुभव करना है। भागवत धर्म सब को समान मानने के लिए बाध्य करता है। समाजवाद-विश्वबंधुत्व इसी आध्यात्मिक जीवनदर्शन पर विकसित हो सकता है।

---

२७. जीव-आत्मा : सृष्टि-परमात्मा

रहस्यवाद अथवा आत्मतत्त्व का आधार है उस सर्वशक्तिमान् की सर्वत्र अनुभूति—इस अनुभव के साथ ही विषय-विकारों का दूर होना, भेदभाव का मिटना, कर्म के बन्धन से मुक्त होना और अमृतत्व की प्राप्ति। सारे सत्य परम-सत्य से जुड़े हैं—सत् के सभी अंग। सत् आदित्यवत् प्रकाशपूर्ण है—सूर्य-चन्द्र से भी अधिक उसका आलोक है। उस प्रकाश का अवबोध होते ही अंधकार, अंधतमस् मिट जाता है। अंधकार प्रतीक है विषयजन्य विकारों का, आसक्तिजन्य क्लेश का। विकारों का मिटना दुःख का अशेष होना है। दुःख-सुख से ऊपर उठने पर परमतत्त्व की अनुभूति। दुःख, कर्म से लिप्तता का फल है। वेदांत कहता है निर्लिप्त होकर कर्म करें—कर्म करना अनिवार्य है पर लिप्त-आसक्त होने से वह बंधनकारक है—बार-बार जरामरण की व्याधि से गुजरना पड़ता है। कर्म में लिप्त न हों तो कर्म बंधन नहीं, उद्धारकर्त्ता है। अनासक्त कर्म करना ही **विद्या** है। विद्या अमृतत्व देती है—**'विद्ययाऽमृतमश्नुते'** (ईशावास्योपनिषद्)।

कबीर के अनुसार विद्या की कसौटी है—एकता:—

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै। 33 रामकली

अथवा, **इनमें आप आप सबहिन में।** वही

'एकता' की व्याख्या ईशावास्योपनिषद् में बहुत स्पष्ट है :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ 6

यदि कोई मनुष्य सब प्राणियों को ऐसा देखता है मानों सब उसी के शरीर में स्थित हों—अर्थात् उनके सुख-दुःख को अपने ही सुख-दुःख जैसा अनुभव करता है और एक ही परम आत्मा को उन सब के अन्दर देखता है तो उसे दूसरों से अपना रक्षण करने की आवश्यकता नहीं होती।

एकता के अनुभव से शोक-मोह-भ्रम का नाश हो जाता है :

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। 7

जब कोई मनुष्य समझ लेता है कि भूतमात्र वस्तुतः सर्वव्यापी परमात्मा ही है तब वह सब वस्तुओं की एकता का अनुभव करता है और शोक-भ्रम का नाश हो जाता है। कबीर भी यही कहते हैं—

जब थैं आतमतत बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं, काम क्रोध गहि डारा। 33 रामकली

अथवा, **जिह मन्दिर दीपकु परगासिया अंधकारु तहँ नासा ।**
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जनदासा ।।

कबीर-ग्रन्थावली पृ० 256

एकत्व के अनुभव से जो आत्मप्रकाश प्रकाशित होता है उसका फल है भ्रम-मोह-अंधकार का विनाश । यही स्थिति **हरिपद** है :

तेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ बिबर्जित हरिपद चीन्है सोई । 31 रामकली

सारांश यह कि भीतरी तत्त्व को पहचानने से ही व्यवहार-कर्म पवित्र हो सकेंगे, व्यक्ति निर्लिप्त होकर कर्म कर सकेगा और उसे शोक-मोह-भ्रम-क्रोध नहीं व्यापेंगे । इसीलिए कबीर राम-दास की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

तृष्णा अरु अभिमान रहित है, कहै कबीर सो दासा ।। 31 रामकली

सचाई यह है कि **'हरिपद'** में रमनेवाले अथवा सत्य की अनुभूति करनेवाले अथवा सब प्राणियों में उसी परमसत्य की उपस्थिति मानने वाले को संसार के लोभ आकृष्ट नहीं करते—

च्यंतै तौ माधौ चिन्तामणि हरिपद रमै उदासा ।। 31 रामकली

उदास का आशय यह नहीं कि आत्मसाक्षात्कार करनेवाला संसार से पलायन कर जाता है । आशय है कि वह कर्म में आसक्ति नहीं रखता और सक्ति न होने से बंधन नहीं । बंधन नहीं तो संसार से मुक्ति । जीते हुए अमर । उपनिषद् में इसीलिए कहा गया है ।

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।। केनोपनिषद्

संयम और सतत सचेतनता और एकता के अनुभव से आत्मा की शक्ति बढ़ती है और यह शक्ति ही आत्मज्ञान का—अमरत्व का—कारण बनती है ।

जीव को आत्मा से एक करने और सर्वत्र उसी आत्मा की उपस्थिति का अनुभव करने के भाव को कबीर अपनी व्यावसायिक और संत शब्दावली में बड़े सहज ढंग से रखते हैं :

मैं डोरे डोरे जाऊँगा ।
तो मैं ब्रहुरि न भौ जल आऊँगा ।।
सूत बहुत कुछ थोरा । तार्थं लाइ लै कंथा डोरा ।।
कंथा डोरा लागा । तब जरा मरण भौ भागा ।।

डोरा और कंथा जीव और आत्मा के प्रतीक हैं । डोरा कंथा में मिल जाय तभी आत्मज्ञान की उपलब्धि होगी । वह परमतत्व कहाँ है कैसा है उसे भी कबीर स्पष्ट करते हैं—

जहाँ सूत कपास न पूनीं। तहाँ बसै इक मुनीं।
उस मूनीं सूं चित लाऊँगा। तो मैं बहुरि न भौजल आऊँगा ॥31 गौड़ी

उपनिषद् की शब्दावली में कबीर उस परमपद को और भी व्याख्यायित करते हैं :

जहां ऊगै सूर न चंदा। तहाँ देख्या एक अनन्दा॥
उस आनन्द सूं चित लाऊँगा। तो मैं बहुरि न भौजल आऊँगा॥

उस मिलन-समरसता को भी कबीर स्पष्ट करते हैं :

तिस जोतिहि जोति मिलाऊँगा।—31 गौड़ी

अथवा, तिस मूलहि मूल मिलाऊँगा।—वही

यही मिलन हरिपद-मुक्ति की अवस्था है—

तहाँ हेत हरि चित लाऊँगा। तो मैं बहुरि न भौजल आऊँगा॥ वही

उस परमज्योति में उसके अंश जीव की ज्योति को मिलाना 'परमपद' पाना है। वह परमशक्ति पूर्ण है उसका अंश जीव भी पूर्ण है। आत्मज्ञान इसी तत्व को पहचानना है अथवा जीव-आत्मा की अखंडता-एकता का अनुभव करना है। इस मिलन का एक दृष्टांत और कबीर देते हैं :

सींधव नीर कबीर मिल्यौ है। 28 गौड़ी

इस अक्षय मिलन के लिये आत्मशुद्धि करनी पड़ती है—

कैसे होइगा मिलावा हरि सनां।
रे तू विषै बिकार न तजि मनां॥ 29 गौड़ी

यदि मन! विषय-विकार से मुँह नहीं मोड़ेगा तो दुख ही दुख—तेरा उद्धार संभव नहीं—कर्म के बन्धन से कभी मुक्त नहीं होने का—आवागमन लगा रहेगा :

कहै कबीर मन बहु गुनी। हरि भगति बिना दुख फुनि फुनी॥ 29 गौड़ी

कबीर की हरिभगति आत्मज्ञान है, जीव-आत्मा का मिलन है, संसार और सृष्टि-कर्त्ता की एकता है। इस लक्ष्य के लिये सहज साधन है भक्ति जिसके सिव, सनकादिक, नारद, आदर्श हैं :

सिव सनकादिक नारदा ब्रह्म लीया निज वास जी।
कहै कबीर पद पंकजा अब नेड़ा चरण निवास जी ॥30 गौड़ी

भगवान के चरणों में प्रीति होने पर सारे भ्रम-शोक-भेद स्वतः नष्ट हो जायँगे।

———

२८. योग-ज्ञान और भक्ति-भाव

कबीर की सतत साधना आन्तरिक शुद्धि-निर्मलता के लिए है। वे मानते हैं कि हृदय शुद्ध होना आधार है ईश्वरानुभूति का। उनका यह भी दृढ़ मत है कि ईश्वर बिना भव-जल से पार जाना संभव नहीं। परम शांति अथवा परम पद की प्राप्ति भीतर बैठे राम त्रिलोकपति के प्रकाश से ही संभव है। राम की अनुभूति ही एकमात्र उपाय है विकारों से छुट्टी मिलने का। ज्ञानमार्ग-योगमार्ग-हठयोग सब व्यर्थ हैं यदि आचरण की पवित्रता और सत्य के प्रति निष्ठा नहीं। कबीर-काव्य में योग-भक्ति में अभेद है, दोनों का मूल हृदय-शुद्धि है और दोनों का फल आनन्द है। उस परमानन्द, उस विश्रामपद, उस निर्वाण पद, अभय पद की प्राप्ति प्रयास से नहीं रामकृपा से ही संभव है, यह कबीर सुनिश्चित मानते हैं।

साधना→हृदय-शुद्धि→ईश्वरानुभूति→मुक्ति→भगवान के साथ ऐक्य; भगवद् गुणों से भरपूर जीवन—स्वार्थ रहित परमार्थ पूर्ण जीवन। कबीर का राम त्रिगुणातीत है पर त्रैलोक्यपति है, वह निरंकार-अकल-आत्माराम है साथ ही वह भागवतधर्म पर चलनेवालों के लिये—अंबरीष का विष्णु है, नामदेव का विट्ठल है, व्यास-शुक-नारद का राम-कृष्ण-गोविन्द है। कबीर-काव्य में विष्णु वही है जो भागवत में। सूत जी श्रीमद्भागवत (12वें अध्याय) में कहते हैं—

> "भगवद्भक्ति रूप महान् धर्म को नमस्कार है। विश्व विधाता भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार है। इस पुराण में सर्वपापहारी भगवान् श्री हरि का संकीर्तन हुआ है। इसमें परम रहस्यमय व गोपनीय ब्रह्मतत्व का वर्णन हुआ है। इस पुराण में परमतत्त्व, अनुभवात्मक ज्ञान और उसकी प्राप्ति का स्पष्ट निर्देश है। इसमें भक्ति योग और उसको स्थिर रखनेवाले वैराग्य का वर्णन है। इसमें ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और उसमें विराट् पुरुष की स्थिति को समझाया गया है, इसमें जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार की लीला का वर्णन है। इसमें एक रस सच्चिदानन्द परमात्मा का वर्णन है जिन्होंने अपने स्वरूप में ही प्रकृति आदि नौ शक्तियों का संकल्प करके इस चराचर जगत् की सृष्टि की है और जो इसके अधिष्ठानरूप से स्थित हैं, जिनका परमपद केवल अनुभूति स्वरूप है।"

श्रीमद्भागवत का ज्ञान-भक्ति के प्रति दृष्टि कोण इस प्रकार है—

> "वह निर्मल ज्ञान भी जो मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् साधन है यदि भगवान् की भक्ति से रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती—जो

कर्म भगवान् को अर्पण नहीं किया गया है वह चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो सर्वदा अमंगल और दुःख देनेवाला ही है।

भगवान् के गुण, लीला, नाम का सुमिरन, कीर्तन उनके श्री चरणकमलों की अविचल स्मृति प्रदान करता है। और श्रीकृष्ण के चरण कमलों की अविचल स्मृति सारे पाप-ताप और अमंगलों को नष्ट कर देती और परमशांति का विस्तार करती है। उसी के द्वारा अंतःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान् की प्राप्ति होती है एवं भगवान् के स्वरूप का ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।'' 1212

कबीर-वाणी है :

सो जोगी जाकै सहज भाइ।
अकल-प्रीति की भीख खाइ।।
सबद अनाहद सींगी नाद। काम क्रोध विषिया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुरु कौ ग्यान। त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान।
मनहीं करन कौ करै सनान। गुरु कौ सबद ले लै धरै ध्यान।
काया कासी खोजै बास। तहां जोतिसरूप भयौ परकास। 1 बसंत

उपर्युक्त पद में योग-क्रिया का वर्णन है पर यह योग अकल-निरंजन की प्रीति से युक्त है, यह काम-क्रोध से निवृत्ति है, यह गुरु के सबद का ध्यान है, यह भीतर स्थित प्रकाश की खोज है।

कबीर योग-प्रक्रिया से परिचित थे पर वे हठयोगी नहीं, वे सिद्धि के उपासक नहीं। उनका योग हृदय-शुद्धि है और यह भक्ति-प्रीति से ही संभव है ऐसा वे बराबर मानते हैं।

योग साधना है पर हरिप्रीति, हरिनाम सुमिरन एकमात्र उपाय है भवपार करने के लिए :

हरि कौ नाउं तत त्रिलोक सार।
लैं ल्हीन भये जे उतरे पार।।
इक जंगम इक जटाधार। इक अंगि बिभूति करै अपार।
इक मुनियर इक मनहूं ल्हीन। ऐसे होत होत जग जात खीन।।
इक आराधैं सकति सीव। इक परदा दे दे बंधै जीव।।
इक कुलदेव्या कौ जपहिं जाप। त्रिभुवनपति भूले त्रिविध ताप।।
अन्न छांड़ि इक पीवहिं दूध। हरि न मिलै बिन हिरदै सुध।।
कहि कबीर ऐसे विचार। राम बिना को उतरै पार।। 3 बसंत

उपर्युक्त पद में तत्कालीन प्रचलित सभी साधना-पद्धतियों की चर्चा है पर सबको निरर्थक बताते हुए 'हिरदै सूध' पर बल दिया गया है और हृदय-शुद्धि का उपाय हरि का नाम, यही परमतत्व-आत्मतत्व का रहस्य है। 'त्रिभुवन पति राम' को

भूलने से ही त्रिताप है। कबीर का उद्घोष है सर्वत्र घटघट में 'हरि निवास' की अनुभूति ही सारी साधना का निचोड़ है—

फूलनि में जैसे रहत बास। यूँ घटि घटि गोब्यंद हरि निवास।
कहै कबीर मन भया अनंद। जगजीवन मिलियौ परमानंद। 5 बसंत

कबीर कहते हैं ज्ञान-योग का बल काम-क्रोध के सम्मुख कुछ काम नहीं करता है इसलिए भीतर के राम के आश्रित हों—अपने को अनाथ मानकर उसकी शरण में जायँ, उसके चरणकमलों में रमें तभी 'चपल बुद्धि' स्थिर होगी और मुक्ति मिलेगी। कबीर की गुहार है अपने राम से :

माधो दारुन दुख सह्यौ न जाइ।
मेरी चपल बुधि तातैं कहा बसाइ॥
तनमन भीतर बसै मदन चोर। जिनि ग्यान रतन हरि लीन्ह मोर॥
मैं अनाथ प्रभु कहूँ काहि। अनेक बिगूचे मैं को आहि॥ 7 बसंत

कबीर की यह आर्त पुकार उनकी बेबसी की गुहार है जब साधना साथ नहीं देती तब वे अपनी दीनता-सामर्थ्यहीनता का अनुभव कर भगवान को टेरते हैं गज-द्रौपदी की भाँति। सूर-तुलसी सभी ने अपने को 'अनाथ' माना और शरणागति की राह पकड़ी। कबीर ने अनुभव किया बिना 'हिरदै सूध' न भगवान मिलेंगे और न शांति मिलेगी। हृदय निर्मल होता है भगवत्कृपा से; उसके लिये स्मृति का ताँता न टूटना चाहिए। यही राम गुणगान है। कबीर के विनयसम्बन्धी पद सूर-तुलसी से कम आर्तस्वर में नहीं है। कबीर की 'गुहार' है :

उकरी डर क्यूँ न करै गुहारि।
तन भीतर बसै मदन चोर। तिनि सर्वस लीन्हौ छोरि मोरि॥
मैं किहि गुहराऊँ आप लागि। उकरी डर बड़े-बड़े गए हैं भागि॥
जपतप संजम सुचि ध्यान। बंद परे सब सहित ग्यांन।
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि। जा परि गोब्यंद कृपा कीनि॥ 8 बसंत

'गोविंद की कृपा' ही काम-क्रोध चोरों से मुक्ति दे सकती है। मनुष्य असमर्थ है विकारों से युद्ध करने में। शत्रु इतने प्रबल हैं कि—

ब्रह्मा बिष्नु अरु सुर मयंक किहि किहि नहीं लावा कलंक॥ वही

कबीर का निष्कर्ष है—रामगुन से अपने को बांधो—अभिमान राम के प्रसाद से ही छूटता है इसका प्रमाण है—

जागे सुक उधव अक्रूर। हणवंत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव। कलि जागे नामां जैदेव॥
आत्माराम कौं मन विश्राम। कहि कबीर भजि राम नाम॥

कबीर संसार की दशा देखकर पुकार लगाता है अपने स्वामी से उद्धार के लिए—

ऐसौं देखि चरित मन मोह्यो मोर।
ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तोर ।। 9 बसंत

श्रीमद्भागवत यही तो कहता है कि अपने भीतर भगवान का अनुभव करते रहो तभी परमतत्व का साक्षात्कार होगा। यही आत्मतत्व अनंत आनन्द का स्रोत है। कबीर कहते हैं—

भगति हेत ल्यौ लाइ रे ।।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर और कारण जाइ रे ।। 1 मालीगौड़ा

बिना भक्ति के **'नैन छै पणि अंध रे'**। आभ्यंतर सूझे—उसमें प्रकाश हो तभी अज्ञान-अंधत्व मिटेगा—

अभिअंतरि भेदै नहीं, कांई बाहरि न्हावै नीर रे ।।

यह अन्तर्ज्ञान सत्य के प्रति प्रतिबद्ध होने से ही प्राप्त होगा—

साच बिन सीझसि नहीं कांई ग्यान दृष्टि जोइ रे ।। 3 मालीगौड़ा

कबीर के देवता विष्णु भी हैं और परमपुरुष निरंजन भी, उनके गोविन्द उद्धव के सखा भी हैं और परमेश्वर भी। उनके राम धर्मसंस्थापक-भक्तरक्षक भी हैं और आदि पुरुष भी। कभी उनके विष्णु-ब्रह्मा-महेश सामान्य व्यक्ति की भाँति मोह के शिकार हैं और कभी वही परम चैतन्य। जिस विष्णु की वंदना भागवत में है उन्हीं की कबीर-वाणी में :

जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा चरन गंग तरंग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछू जगत गुरु गोब्यंद रे ।। 1 मालीगौड़ा

तथा, **विष्णु ध्यान स्नान करि रे बाहरि अंग मत धोइरे ।।** 2 मालीगौड़ा

तथा, **भजि नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी।**
भजि भजिसि भूषन पीय मनोहर देव देव सिरोवनी ।। 3 माली०

तथा, **राम राजिसि नैन बानीं, सुजान सुन्दर सुन्दरा ।।**
बहु पाप परबत छेदणां, भौ ताप दुरित निवारणा।
कहै कबीर गोब्यंद भजि, परिमानंद बंदित कारणां ।। 3 माली०

तथा, **तू मेरौ पुरिषा हौं तेरी नारी।**
बालपना के मीत हमारे छांड़ि कत चले हो निनारे ।। 1 सारंग

कबीर सब जतन के बाद एक ही जतन बताते हैं—'आखर दोइ रखवारे'—**'राम'** ये दो वर्ण न भूले व्यक्ति। यत्न अन्त में काम नहीं देता :

जतन करत पतन ह्वै जैहे।

इसलिए, **राम अधार कहत है जुगि जुगि दास कबीरा गावै ।।** 2 मल्हार

कबीर 'अनेकांत' होते हुए 'एक' में आस्था रखते हैं। भेद में अभेद, प्रकट में अप्रकट, विराट् में सूक्ष्म, ज्ञान में प्रीति, योग में शरणागति—यह विरोधाभास नहीं यह सनातन धर्म है। भागवत में इसी का प्रतिपादन है। 'आत्मतत्त्व' लक्ष्य

रखे मार्ग कोई भी ग्रहण करे। हृदय-शुद्धि जिससे हो वह करे—संयम करे, तप करे, कर्म करे पर ये सब बहुत दूर तक साथ नहीं देते—जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब सारा ज्ञान बह जाता है आवेग-आवेश में, चंचल मन हावी हो उठता है और विचारों पर अज्ञान का अंधकार आवरण बनकर प्रकाश को ढक लेता है—तब, केवल प्रभु याद आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-कहानी से इस तत्व का अनुभव कर सकता है।

कबीर लड़ते हैं विकारों से पूरे बल के साथ—उन्होंने एक रूपक में इसका बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया है :

कुभरा ह्वै करि बासन धरिहूँ, धोबी ह्वै मल धोऊँ।
चमरा ह्वै करि रंगौ अधौरी, जाति पांति कुल खोऊँ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौं, पाप पुंनि दोउ पीरौं।
पंचबैल जब सूध चलाऊँ, रामजेवरिया जोरूँ॥ 11 माली०

कर्मयोग के साथ 'रामजेवरिया' को साथ रखना होगा—वही बल है भीतर का। हनुमान पार पहुँच गए इसी 'रामजेवरिया' से। कबीर मन को शुद्ध करने के लिए सारा प्रयास करते हैं—यह है उनका कर्मयोग। इसके साथ अपने राम को जोड़कर वे उसमें भक्ति का पुट देते हैं जिससे वे अक्षय स्रोत से नहीं कटते। कबीर अवधूत हैं—

अवधू ह्वै करि यह मन धूतौं बधिक ह्वै मन मारूँ। 11 माली०

वे भक्त भी हैं—

तन करि मनका मनकरि खेवट रसना करउवा डारूँ।
कहि कबीर भौ सागर तरिहूँ आज तिरूँ बप तारूँ। वही

रसना से राम-राम, मन में राम-राम, काम में राम-राम, ध्यान में राम-राम, सुमिरन में राम-राम—यही मंत्र है मोक्ष-भक्ति का, भवबन्धन से पार जाने का, भवभय से छुटकारा पाने का और सदा आनन्द में रमने का।

कबीर का 'आत्मतत्व' ईश्वरानुभूति से जुड़ा है।

———

सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम्।
सत्यनिष्ठ और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

—रामायण

२९. साखी के 'अंग' : आचारांग के सूक्त

'आचारांग सूक्त' में जैनधर्म के मुख्य अंगों का निरूपण है। मनुष्य के जीवन में अहिंसा का, समदृष्टि का कितना महत्त्व है यह उसमें प्रतिपादित है। बौद्धधर्म में **अष्टांग** (मार्ग) जीवनपद्धति की मीमांसा है—सम्यक् विचार, सम्यक् वाणी. अक्रोध आदि धर्म के प्रमुख अंग हैं। लक्ष्य की पूर्ति में जो सहायक हों वे अंग हैं। वेदों के अध्ययन के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदस्, ज्योतिष षडंग बताये गये हैं अर्थात् इनकी सहायता से ही वेदों का अनुशीलन संभव है।

कबीर-ग्रंथावली (सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त) में साखी के अन्तर्गत 59 अंगों का निरूपण है जिनमें गुरुदेव, सुमिरन, विरह, परचा, चितावणी, मन, माया, संगित, कुसंगति, साधु, बेसास, सूरातन, काल, पारिष, निंदा आदि हैं। कबीर की ये साखियाँ भक्त की जीवन-पद्धति से सम्बन्धित हैं। सतत ईश्वरानुभूति के लिये गुरु, आतमविश्वास, निर्भय जीवन (शूरता), सत्संग का महत्त्व इन साखियों में निरूपित है। साखियाँ इतनी प्रभविष्णु और काव्यमर्म पूर्ण हैं कि ऐसा लगता है कि कबीर ने स्वयं इन्हें लिपिबद्ध किया होगा। कबीर ने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई होगी और न उन्होंने किसी मौलवी से कुरान पढ़ा होगा जैसा उन्होंने कहा है कि 'मसि कागद छूयौ नहीं'; पर वे शिक्षित-सत्संगी थे। उनका भागवत सम्बन्धी ज्ञान, उनका सतगुरु-साधु-बिसास आदि का सम्यक् विवेचन, उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति इतनी प्राणवंत और सारतत्व से भारी है कि उन्हें हिंदी का **व्यास** कहा जा सकता है। कबीर ने व्यास को आदर के साथ स्मरण किया है।

कबीर के शब्द-प्रयोग, उनकी सूक्ति-शैली, उनका राग-रागनियों का ज्ञान, उनके सबद, उनकी रमैनी धार्मिक-आध्यात्मिक तत्वों भरी हैं। कबीर बहुश्रुत थे—वे पंडित न रहे हों पर तत्कालीन सामाजिक जीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। उनका सम्यक् आचरण, उनकी कल्पना शक्ति, उनकी आस्था के प्रति दृढ़ता, उनकी जन-जन में फैले भेद को मिटाने की चिन्ता, उनके महान् व्यक्तित्व के परिचायक हैं। वे शास्त्रज्ञ नहीं रहे होंगे पर धर्म का सार उनके रग-रग में समाया था। कबीर महावीर-बुद्ध की श्रेणी के चिन्तक-परोपकारी और अध्यातममार्गी थे, कबीर मुक्त थे आसक्ति और माया से। विषयों के प्रति उनका आकर्षण न था। वे 'रामराई', 'कबीर' थे। वे दुर्बलताओं से परिचित थे। उन्होंने दुर्बलताओं—विषमताओं से जूझने का मन्त्र दिया अपनी रचनाओं के माध्यम से। कबीर शूर थे—निर्भय थे सत्य के प्रति सदा आस्थावान् थे। उनका 'सतगुरु' गोब्यंद-केशव-राम थे जिनके

सुमिरन की महत्ता कहते वे थकते नहीं। कबीर महामानव थे महापुरुष थे। उनके 'अंग' आज भी उतने ही उपादेय हैं जीवन को सन्मार्ग पर ले जाने के लिए।

कबीर का समस्त काव्य जीवनपरक है अर्थात् उनके अंग जीवन को, समाज को, संस्कृति को पोषित करनेवाले हैं। व्यक्ति और समाज दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध के महत्त्व को जानते हुए कबीर ऐसे दर्शन को अपनाते हैं जिससे व्यक्ति समाज को और समाज व्यक्ति को सम्पन्न कर सके। कबीर-काव्य में उस दृष्टिकोण को विकसित करने की साखियाँ हैं जिससे मनुष्य चिन्ता-हीनता-भय से ऊपर उठकर अपने में आत्मविश्वास उत्पन्न कर सके और जिस-'बिसास' से वह समाज को सच्चे रूप मे सुखी बना सके।

कबीर के समय में हिन्दू जाति अपने को असहाय अनुभव कर रही थी—वह एक प्रकार से पराजित थी मुसलमानों से : न उसके धर्म की रक्षा हो रही थी न संस्कृति की और न संस्कार की। समाज के सम्मुख चैलेंज था—जीवन का, मिलकर रहने का, समानता का, अस्तित्व की रक्षा का। कबीर का महान् व्यक्तित्व तत्कालीन संघर्ष की देन है।

कबीर सेतु बने हिन्दू-मुसलमान दो विरोधी संस्कृतियों के, कबीर सेतु बने अद्वैत और एकेश्वरवाद के, कबीर सेतु बने अहिंसक और हिंसक जीवन-दृष्टि के, कबीर सेतु बने आस्तिक और नास्तिक के, कबीर सेतु बने उपनिषद् और सांख्यवादी विचारधारा के, कबीर सेतु बने आडंबरपरक साधु संन्यासियों और सत् के उपासकों के, कबीर सेतु बने बाह्य और आत्मिक जगत् के। कबीर की समदृष्टि ने, उनकी सहिष्णुता ने, उनकी 'निरपष' भावना ने, उनकी सत्य के प्रति निष्ठा ने पूरे समाज को एक नयी दृष्टि दी, एक नया विश्वास दिया, एक समन्वय पद्धति दी। कबीर ने वर्ण-जाति-धर्म के भेद को मिटाकर मानवता-धर्म की सीख दी। कबीर ने व्यक्ति को वह दर्शन दिया जिससे वह समाज के प्रति प्रतिबद्ध हो। कबीर ने धर्म के नाम पर शोषण करनेवालों का खुलकर विरोध किया। जनता में उन्होंने क्रांति उत्पन्न कर दी। कबीर एक ओर राम के बंदे हैं दूसरी ओर समाज के, जन-जन के। कबीर अपने राम की भाँति उदार-कृपालु, शूरवीर थे—भय उन्हें छू नहीं गया था। वे राम का अनुसरण कर उद्धारक बने दलित-शोषित वर्ग के। उन्होंने सबसे बड़ा काम किया हीन-दीन शूद्रों में आत्मविश्वास उत्पन्न करने का। उन्होंने उन्हें जीनेका, आध्यात्मजीवन का वही अधिकार दिया जो उच्च वर्ग अथवा ब्राह्मणों को था।

कबीर का राम किसी पंडित का नहीं, किसी शास्त्रज्ञ का नहीं, किसी संन्यासी का नहीं—वह उन गृहस्थों का है जो अपनी वृत्ति में आस्था रखकर समाज की सेवा करते हैं। वह मंदिर में नहीं सब के भीतर है—उसे पहचानना हर एक के लिये संभव है—शर्त एक ही है निर्मलपन से उसका साथी बने। जीवन की पवित्रता ही कबीर का धर्म है। ईश्वर सबका है, सबका प्रेरक, सबका

हितैषी, सबको प्यार करनेवाला। उसे स्नेह चाहिए—प्यार दो प्यार मिलेगा। हम प्रकाश-पुत्र हैं। भीतर उन्हीं का प्रकाश है। उससे एक होना ही आत्माराम होना है। कबीर आज के मापदण्ड के अनुसार शिक्षित नहीं थे—किसी विश्वविद्यालय के स्नातक न थे पर थे वे मुनि-ऋषि। उनमें अद्भुत समन्वय था दर्शन और जीवन का, भक्ति और वृत्ति का। कबीर ने सारी भारतीय आध्यात्मिक परंपरा को आत्मसात् कर उसे एक नया रूप दिया सामाजिक संदर्भ से जोड़कर। कबीर 'तत्व' के उपासक थे। सत्य से बँधा रहनेवाला ही परमपद का अधिकारी है। कबीर के राम-गोबिन्द उनके स्वामी थे, सखा थे, पति थे। कबीर प्रेम के कवि थे—वह प्रेम जो समता-समचित्तता देता है। कबीर सूफियों की भाँति सहिष्णु थे हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के प्रति।

कबीर कहते हैं : **हरिजन सईं न जाति** अर्थात् यदि मनुष्य की जाति को बाँटना ही है तो न हिन्दू बड़ा, न मुसलमान, न ब्राह्मण और न क्षत्रिय। मानव मूल्यों की दृष्टि से एक ही जाति श्रेयस् है **हरिजन** की जाति। हरिजन अर्थात् सर्वत्र उस ब्रह्म की उपस्थिति का अनुभव करते हुये सबको समान समझना—भेद से दूर रहना, पक्षपात से दूर रहना, हिंसा कुभाव से अलग रहना। कबीर का आदर्श है समता-समदृष्टि-समानता जो इसे स्वीकारे वह उत्तम। **हरिजन** होने की शर्त है सबके प्रति प्रेम—सबके हित में अपना हित। कबीर के शब्दों में 'राम सवारथी' बनना हरिजन होना है। संकुचित दृष्टि से समाज का भला नहीं। कबीर के सम्मुख मूल्यों के ह्रास का प्रश्न था। उसके समाधान के लिये उन्होंने गुरु, सत्संग, नाम सुमिरन, निस्स्वार्थ सेवा, विनम्रता, निर्भयता को अपनाने पर बल दिया। मनुष्य कर्त्तव्य-पालन से देवता बन सकता है। कबीर मानव-दुर्बलताओं को जानते थे इसीलिये मन के नियंत्रण पर बल देते थे। इसके लिये सतगुरु की मान्यता—सन्मार्ग पर चलने के लिये संत के प्रति श्रद्धा अपेक्षित है। श्रद्धा के अभाव में मनुष्य अहंकार का शिकार हो जाता है। अहंकार मिटाने के लिए भगवान के प्रति विश्वास, भगवान की शक्ति में विश्वास और उसके आलंबन की अपेक्षा है।

आज 'हरिजन' नहीं—केवल एक जाति है भ्रष्टाचारी-आतंकवादी अथवा उनकी जो नेतागिरी का धन्धा करते और दूसरों को शोषण करते हैं। हम 21वीं सदी में प्रवेश करने के लिये शिक्षासम्बन्धी सुधारों के लिये दृढ़ संकल्प हैं पर आज के दूषित परिवेश से कैसे निपटा जा सकेगा? योजनाएँ जो चलाते हैं वे 'आप सवारथी' हैं—'रामसवारथी' नहीं। इसलिये औद्योगिक शिक्षा भले ही बेरोजगारी की समस्या हल करे पर मनुष्य के निर्माण का कार्य इससे नहीं होना है। **'हरिजन'** सच्चरित्र-त्यागी-सेवक-कर्मठ को वरीयता देनी होगी। मानव मूल्यों की रक्षा ही मानवता की रक्षा कर सकता है। शिक्षा तभी सफल हो सकती है जब विद्यालय और समाज में जीवन की शुद्धता पर बल दिया जाय। जायसी ने कहा है—

लेसा हिए प्रेम कर दिया। उठी जोति भा निरमल हिया।

जब प्रेम की ज्योति, समता की ज्योति, राष्ट्रभक्ति की ज्योति जगेगी तभी हमारा व्यवहार-आचरण सम्यक् होगा।

कबीर-जायसी-तुलसी सभी ने आंतरिक शुद्धि पर बल दिया है। मन की निर्मलता के बिना मनुष्य मानवपरक नहीं है। अब, हम अपने को तपाते नहीं सोने की तरह निर्मल होने के लिये—फल है कि हम केवल सांसारिक सुख-समृद्धि को लक्ष्य बना लेते हैं और स्वार्थ सिद्धि के लिये सभी कुकर्म करते हैं। संतों का सिद्धान्त है—

जौ लहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहिं कंचन करा॥ 21 पद्मावत

काँच से कंचन बनने की प्रक्रिया से हम गुजरना ही नहीं चाहते हैं। हमें अपने लक्ष्य का निश्चय करना होगा—अर्थ के साथ धर्म को, पैसे के साथ चरित्र का संतुलन करना होगा तभी सर्वांगीण विकास संभव है। पैसे और 'पावर' का लोभ नष्ट ही करेगा। कबीर का संत—'हरिजन'—बनना होगा :

निरबैरी निहकामता साइं सेती नेह।
विषया सूं न्यारा रहे, संतनि का अंग एह॥29.1

'निरबैरी' होने के लिये विषय-भोग की जगह सेवा और निष्काम भाव को महत्त्व देना होगा। हमारी शिक्षा-संस्कृति में इन मानव मूल्यों को स्थान देने पर ही कल्याण है। कबीर स्वार्थ शक्ति पर कुठार चलाते हुए कहते हैं—

स्वारथ को सब को सगा। जग सगला ही जाणि।
बिन स्वारथ आदर करै। सो हरि प्रीति पिछांणि॥ 29.15

'बिना स्वारथ' सेवा करनेवाला ही 'हरिजन' है। प्रजातंत्र की रक्षा तभी संभव है जब स्वारथ का स्थान परमारथ ले। कबीर का हरिजन वह है जो विषय के चक्कर में न फँसे—सहज जीवन, साधु जीवन बितावे—

जिन्ह सहजै विषया तजी सहज कहीजै सोइ॥ 21.1

विषयों से मुँह मोड़कर रहनेवाला ही सच्चा सेवक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति अपना और अपने घर की परवाह नहीं करता—

हम घर जाल्या आपणां लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जालौं तास का जे चलै हमारे साथ॥43.13

प्रश्न है क्या आज हम ऐसी जमात तैयार कर सकेंगे जिसे तिलक-गाँधी-अरविन्द ने तैयार की थी। भारत स्वतंत्र है पर मानसिक परतंत्रता बढ़ती जाती है। हमारा दूषित मन हमें हिंसक-शोषक-बलात्कारी बना रहा है। हम अपने को 'सूर' कहलाने के लिये इच्छुक हैं पर सच्चे सूर की भाँति घायल होना नहीं चाहते—जरा सी कठिनाई में मैदान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। आज व्यक्ति—'शार्टकट' से लक्ष्य

पर पहुँचना चाहता है—चार सौ बीस करके, गुंडागिरी करके। कबीर कहते हैं घायल होना सीखना पड़ेगा—'रन साका' की प्रवृत्ति पैदा करनी होगी तभी चरित्र में निखार आवेगा :

सारा सूरा बहु मिलै घाइल मिलै न कोइ।
घाइल ही घाइल मिलै तब राम भगति दृढ़ होइ ॥ 43.11

हरिजन वही है जो 'घायल' होने में विश्वास रखता है, जो संकट से भागता नहीं तथा कठिनाइयों से जूझता है अथवा जो कर्मयोगी होता है। उसे अवसाद नहीं सताता। वह जूझकर मृत्यु को वरण करता है।

———

निर्लोभी बनें

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेहेव कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

जगत में जो कुछ है सब परमात्मा में स्थित है। यह समझकर कामनाओं को—लोभ को—त्याग दो। आनन्द की उपलब्धि कामना के त्याग से होती है। जीवन के नियत वर्ष कर्त्तव्य करते हुए बितावे। इसी प्रकार अलिप्त और समर्पण भाव से रहने पर मनुष्य दोषरहित रह सकता है, अन्यथा नहीं।

—ईशावास्योपनिषद्

———

३०. विरहासक्ति : रसात्मकता एवं विदग्धता

भक्त भगवान् की प्राप्ति के लिए विह्वल हो उठता है इसे ही नारद ने विरहासक्ति कहा है। भक्त दासभाव, सखाभाव अथवा पत्नीभाव से अपना वियोग अभिव्यक्त करता है। भक्त की उत्कंठा-लालसा-आर्तता जितनी ही तीव्र होगी काव्य में उतनी ही रसात्मकता और रमणीयता होगी। कबीर-काव्य में कुछ लोगों को काव्यत्व नहीं मिलता। इसीलिए कुछ आलोचक उन्हें कवि मानने को तैयार नहीं। तुलसीप्रेमी आलोचक कबीर को निर्गुण की परंपरा का कवि मानकर उनकी रचना में अभिव्यक्ति की भंगिमा नहीं देखते। पर बात उलटी है— सभी रहस्यवादी कवियों में भावों की तीव्रानुभूति है। जयदेव-नामदेव-तुकाराम सभी में इष्ट के विरह की तलमल-बेचैनी है। कबीर ने अपनी 'तालाबेली' का अत्यंत विदग्धतापूर्ण अंकन किया है—

ओछै जल जैसे मछिका, उदर न भरइ नीर।
त्यूं तुम्ह कारन केसवा, जन तालाबेली कबीर॥ 118 गौड़ी

कबीर मछली की भाँति व्याकुल हैं पानी के लिये। पानी के बिना उनका जीवन दुष्कर है। 'अमृतरस'-'रामरसायन' के लिए चातक की भाँति कबीर विह्वल हैं :

जद सर जल परिपूरता चात्रिग चितहँ उदास। 118 गौड़ी

उनकी आशा नहीं पूरी हो रही है—वे अधीर होकर पुकारते हैं अपने राम को— **आस नहीं पूरिया रे**। हे राम ! विषय विकारों में फँसे रहने से मैं बंधन में हूँ। इससे मुक्त करें—मेरी पिपासा को शांत करें :

मेरी विषम क्रम गति ह्वै परी ताथैं पियास पियास॥ वही

यह आर्तता ही विरहासक्ति है। यह उत्कंठा हृदय की निर्मलता की द्योतक है। बिना हृदय निर्मल हुए ऐसी तीव्रानुभूति संभव नहीं। कबीर-सूर-तुलसी से बहुत आगे निकल गये हैं स्वानुभूति में।

एक अन्य पद में वे अपने को शिशु की भाँति मानकर माँ परमेश्वरी से आग्रह करते हैं :

हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहे न औगुण बकसहु मोरा॥
सुत अपराध करै दिन केते। जननी के चित रहै न तेते॥

कबीर कहते हैं माँ की दृष्टि में बच्चा अपराधी कहाँ—वह प्यार ही देती है चाहे बच्चा माँ के बालों को पकड़कर ही क्यों न उसे परेशान करे।

कर गहि केस करै जो घाता। तऊ न हेत उतारै माता॥ 110 गौड़ी

माँ का यह प्रेम ही हमें चाहिये—हे राम ! "काहे न अवगुण बकसहु मोरा।" यह है कबीर का वात्सल्य भाव । कबीर यथार्थ से, ज्ञात से, उस अविज्ञात के निकट जा रहे हैं । कितनी प्रभविष्णुता है उनकी शैली में "**हरि जननी मैं बालक तोरा।**" माँ से बढ़कर स्नेह देने वाला दूसरा कोई नहीं । परमपिता माँ की भाँति ही भक्त की रखवाली करता है । कबीर यहाँ सूर-तुलसी की भाँति सगुणोपासक हैं । उनके और ब्रह्म में पुत्र-पिता और पुत्र-माँ का सम्बन्ध है—यही कहीं दासभाव है, कहीं सख्य भाव और कहीं पत्नी भाव ।

कबीर का दास्यभाव :

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाइं ।
तन तन धन मेरा राम जी कें ताई ॥
आनि कबीरा हाटि उतारा सोई गाहक बेचनहारा ।
बेचैं राम तो राखै कौन । राखै राम तो बेचै कौन ।
कहै कबीर मैं तन मन जार्‌या । साहिब अपना छिन न बिसार्‌या ।

112 गौड़ी

साहिब और गुलाम का रिश्ता है कबीर और उनके स्वामी में । कबीर दास भुलाते नहीं एक छिन भी साहिब को—वे श्वान की तरह स्वामिभक्त हैं—वे पूरे जोर से कहते हैं : '**मैं तू कूता राम का।**' गुलाम बेचे जाते थे सामंतयुग में । तुलसी ने भी अपने को गुलाम कहा है । राम ही बेचनेवाला और वही ग्राहक अर्थात् उसके सिवा कहीं कुछ और नहीं—सब रूपों में वही । यह उपनिषदों की वाणी है :

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित् जगत्यां जगत ॥ ईशोपनिषद्

कबीर का रहस्यवाद वेदांत से सम्पृक्त है । कबीर का दर्शन वेदांत का है और आचरण भागवत धर्म का—दोनों में विरोध नहीं । अध्यात्मानुभूति को जीवन में उतारना ही भक्ति है । कबीर का ईश्वर परोक्ष नहीं प्रत्यक्ष है—वे उनसे बात करते हैं अपनेपन के साथ ।

एक अन्य पद में सेवक भाव :

अब मोहि राम भरोसा तोरौ ।
और कौन कौ करौं निहोरौ ॥
जाके राम सरीखा साहिब भाई । सो क्यूं अनत पुकारन जाई । 113 गौड़ी

कबीर का रामस्वामी के प्रति विश्वास वैसे ही है जैसे कुत्ते का स्वामी के प्रति । राम ऐसा साहिब दूसरा कहाँ ! यही तुलसी की भी अनुभूति है । कबीर की यह निष्ठा ही उनकी अभिव्यक्ति का प्राण है । राम की शरण जो है उसे और किसी की अपेक्षा नहीं—द्वार-द्वार भटकने की आवश्यकता नहीं । कबीर मानते हैं—वही सारी सृष्टि का पालनहार है—संसार की स्थिति उसी के कारण है—सारी शक्ति के पीछे उसी की शक्ति है । इसीलिये वे कहते हैं :

जा सिर तीनि लोक कौ भारा । सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा ।।

कहै कबीर सेवौं बनवारी । सींचौ पेड़ पीवै सब डारी ।। 113 गौड़ी

कबीर उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म के प्रति समर्पित हैं साथ ही उस मालिक के वे सेवक हैं जो प्रजापालक है। कबीर के वेदांत में भक्ति का समन्वय है। कबीर का प्रतिपालक अम्बरीष, प्रहलाद, विभीषण का राम है। रामायण में राम को धर्मविग्रहाय, विभीषणसखाय, सर्वभूताभयप्रदाय, उदात्ताय, सर्वभूतशरण्याय, लोक-हितयुक्ताय, सानुक्रोशाय कहा गया है।

शरणागत कबीर का उपालंभ है अपने स्वामी से—

गोब्यंदे तुम्ह थैं डरपौं भारी
सरणाई आयौ क्यूं गहिये यह कौन बात तुम्हारी ।
तारण तिरण तिरण तू तारण और न दूजा जानूं ।
कहै कबीर सरनाई आयौं आन देव नहीं मांनू ।। 111 गौड़ी

कबीर का स्वामी ही भवसागर से पार लगावे। वही एकमात्र तारनेवाला है। यही **प्रपत्तियोग** है। भवसिन्धु से पार जाने के लिए—मोक्ष के लिए—जो स्वामी सूर-तुलसी-तुकाराम का है वही कबीर का। कबीर भक्त पहले हैं ज्ञानी-योगी बाद में। कबीर की अभिव्यक्ति में आत्मीयता है, आत्मविश्वास है—और सचाई है। आत्मनिवेदन की यह शैली भक्ति-धारा की देन है उपनिषद् की नहीं। निर्गुण में आस्था रखते हुए आत्मबल के लिये सगुण राम-कृष्ण की शरण जाना अपेक्षित है।

दाम्पत्य भाव :

जरै शरीर यह तन कोई न बुझावै । अनल दहै निस नींद न आवै ।
चन्दन घसि-घसि अंगि लगाऊँ । राम बिना दारुन दुख पाऊँ ।
हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव ।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।।
हरि मेरा जीव मैं हरि की बहुरिया—।
किया स्यंगार मिलन कै ताइं । काहे न मिलौ राजा राम गोसाईं ।।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ । कहै कबीर भौजल नहिं आऊँ ।।116 गौड़ी

रहस्यवाद की उत्कृष्ट पंक्तियाँ हैं ये। कबीर का प्रियतम से ऐक्य एक-एक शब्द में है। एकता की खोज में ही ये उद्गार हैं। **'हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव'** में जीव की आत्मसाक्षात्कार के लिए तड़पन है। पत्नी-पति की समरसता सर्वोच्च है। कबीर उसी मिलन के लिये अधीर हैं। प्रिया का शृंगार तभी सार्थक है जब पति की प्रीति मिले। जिसको पिया चाहे वही सुहागिन। कबीर देख रहे हैं कि प्यार की भिखारिणी अनन्त गोपियाँ हैं न जाने प्रिय किसके गले में बाँह डाले :

एक ही रूप दीखै सब नारी । ना जानूं को पियहि पियारी ।
कहै कबीर जा मस्तिक भाग । नां जानूं काहू देइ सुहाग ।।
राम बान अनियारे तीर ।जाहि लागे सो जानै पीर ।। 117 गौड़ी

३१. कबीर का प्रेमतत्त्व

कबीर के सत्-सौंदर्य-प्रेम का सम्यक् प्रभाव कबीर-युग पर है। कबीर-काल राजनीतिक-सामाजिक-आध्यात्मिक उथल-पुथल का काल था। मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिरोध राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से किया पर राजनैतिक एकता के अभाव में उन्हें 'साका' से सन्तोष करना पड़ा और उनकी पत्नियों को जौहर से सत् की रक्षा करनी पड़ी। आक्रान्क मुसलमानों में न केवल राज्य-शासन की लिप्सा थी, वे हिंदुओं को धर्म-भ्रष्ट करने पर भी उतारू थे। यह युग हिन्दुत्व के लिए चैलेंज रूप में आया। ऐसे समय हिन्दू धर्म को अपनी वर्ण-जाति की सीमा तोड़कर आगे बढ़ना था। धर्म कर्मकाण्ड अथवा शास्त्र में मर्यादित हो गया था—आचरण से उसका सम्बन्ध टूट गया था। मुसलमानों ने गरीब शूद्रों को धर्मपरिवर्तन के लिए विवश किया। अछूत वर्ग हर प्रकार से दीन था—उच्चवर्णों द्वारा शोषित-उपेक्षित। फलतः, चर्मकार, बुनकर छोटे धंधों में लगे लोग तुरुक बन गए। पर समाज में इससे अशांति उत्पन्न हुई और निम्न वर्गों में जागृति उत्पन्न हुई। उसी वर्ग में संतों का आविर्भाव हुआ और इन्होंने सत्य-प्रेम-समानता-स्वतन्त्रता का मंत्र फूँका। अपने को—आपा को—पहचानो यह संदेश दिया गया। ईश्वर के यहाँ भेद नहीं ऐसा विश्वास उत्पन्न किया ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत शूद्र वर्ग में। नामदेव शिंपी (दर्जी) ने पद यात्रा करके पूरे उत्तरी भारत को सचेत किया कि ईश्वर पर विश्वास रखें। वह दयालु है, वह प्रेम का भक्त है। उसे निर्मल हृदय से यदि हम स्मरण करें तो वह हमारा कल्याण करेगा। ईश्वर-प्राप्ति के लिए शास्त्र-ज्ञान नहीं, आचरण चाहिए। ईश्वर के दरबार में जाति-पाँति नहीं पूछी जाती।

कबीर कोरी शूद्र थे—वे ज्ञानदेव-नामदेव संतों की बानी से प्रभावित हुए और उन्होंने भी भक्ति-प्रेम की धारा को भेद से अभेद की ओर मोड़ा। उन्होंने हिन्दू-धर्म के बाह्याचार पर, जो सत्य से विमुख था, कुठाराघात किया। उन्होंने जनता को बताया कि ईश्वर घर-घर में है केवल मन्दिर-मसजिद में नहीं। मन्दिर तोड़ देने से ईश्वर नहीं टूटता—वह तो सृष्टि में व्याप्त है। वह न पंचाग्नि तापने से—भभूत मलने से, गेरुवा धारण करने से, संन्यासी हो जाने से मिलता है और न हज करने से। ईश्वर किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, वह बेहद है। मनुष्य मनुष्य को प्रेम करे तभी वह परमेश्वर का भक्त है।' प्रेम के लिए स्वार्थ को, लोभ को—प्रत्येक संकीर्णता को, छोड़ना होगा—मन को निर्मल करना होगा। बाह्य शुद्धता दिखावा है, विचारों की शुद्धता चाहिए। कबीर ने धर्म को—मानव मूल्यों को पंडितों और शास्त्रों की कोठरी से निकाल कर उसे सर्वसामान्य के बीच में ला दिया। यही क्रांति कबीर-युग की देन है। हिन्दू-मुसलमान दो विपरीत धर्मों के

बीच कबीर सेतु बने और दोनों को कट्टरता-जड़ता-अंधविश्वास से हटाकर प्रकाश की ओर उन्मुख किया। उन्होंने साखी से समझाया कि परस्पर प्रेम ही ईश्वर प्रेम है। राम-अल्लाह एक है—सत् अद्वैत है। उसका आकार नहीं। यदि हम उसको रूप-गुण से युक्त मानें तो वह उदार-परमार्थी, प्रेमी, पिता है, सखा है, स्वामी है, पति है। वह अलख राम और सगुण राम दोनों है। उसकी भक्ति, उसका नाम-सुमिरन ही हमें वासनाओं-संकीर्णताओं से मुक्त कर सकता है। उसकी कृपा के लिए हृदय को छल-छद्म से मुक्त करना होगा। उसी का सौन्दर्य सर्वत्र देखना होगा।

जिस प्रकार हिंदू-धर्म में क्रांति हुई उसी प्रकार मुसलिम धर्म में भी। एकेश्वरवाद से असंतुष्ट होकर कितने ही मुसलमान भारतीय अद्वैतवाद और बहु-देववाद के सामंजस्य से प्रभावित हुए। उन्हें अद्वैत की ज्ञान-साधना और भागवत धर्म की प्रेम-साधना ने आकृष्ट किया। व्यास की कृष्ण-कथा से बढ़कर प्रेम-कथा किसी भी साहित्य में नहीं है। मनुष्य प्रेम का भूखा है। ज्ञान मस्तिष्क को तुष्ट करता है; प्रेम हृदय को शीतलता देता है। आनन्द की चाह सबको है, यह प्रेम की उदात्तता ही दे सकती है। कबीर-कुतबन-जायसी सभी ने इस प्रेम-तत्व को अपनाया। उत्तर भारत में सूफी संत इस प्रेम को अपनाकर प्रेमकथाओं को काव्य का विषय बना सके। हिंदू-मुसलमान पारस्परिक द्वेषजनित संघर्ष से ऊब चुके थे उन्हें प्रेम का लेप चाहिए था। यह अनुलेप कृष्ण-रुक्मिणी, कृष्ण-राधा की प्रेम-कथा में मिला। प्रेम में भेद नहीं—समर्पण चाहिए। दाऊद, कुतबन, जायसी सभी ने व्यास का अनुगमन कर प्रेम-काव्य लिखे। एक और बात हुई सभी ने जनभाषा को अपनाया जिससे सामान्य जनता को बल मिला। जो भाषा अब तक गँवारू भी प्राकृत थी, वह साहित्य की भाषा बन गई। जन भाषा को अपनाकर संत सर्वप्रिय बन गये और इनके प्रति श्रद्धा बड़ी तेजी से विकसित हुई। फलतः, दबी हुई हीन भावना से युक्त जनता को आत्मबल मिला। जन भाषा को महत्ता से देव भाषा ब्राह्मणों-पंडितों शास्त्रज्ञों तक सीमित रह गई। शूद्रों को भाषा मिली, धर्म मिला, आत्मविश्वास मिला।

सूफी धर्म में प्रेम का महत्त्व सर्वोपरि है। उत्तरी भारत में सूफी धर्म विकसित हुआ। कन्हावत में कान्हा और राही (राधिका) और कान्हा और रुक्मिणी के प्रेम का ही चित्रण है। कबीर में जो श्रृंगार-सौंदर्य-आनन्द का चित्रण है वह भागवत की ही देन है। कबीर-काव्य में मिलन और विरह के चित्रण जीव और आत्मा के ऐक्य-वियोग के चित्रण हैं—कबीर 'दुलहिन' हैं राम 'भरतार'। कबीर (राम के साथ रमते हैं और उनके विरह में तड़पते हैं। दाम्पत्य भाव के अनेक माधुर्यपूर्ण चित्रण कबीर में हैं। चाँदायन, मृगावती, पद्मावत में नारी लक्ष्य है पुरुष का। वहाँ सामरस्य-भाव है—और प्रिय-मिलन के लिए आतुरता है। कबीर ने, भागवत धर्म को अपनाते हुए अपने को गोविंद-माधव-केशव की पत्नी रूप में

चित्रित किया है जब कि मध्यकालीन प्रेमाख्यान के काव्यों में पुरुष प्रेमिका के लिए व्यग्र है। वस्तुतः, प्रेम उभयपक्षीय होता है चाहे पुरुष का प्यार नारी के प्रति हो अथवा नारी का पुरुष के प्रति। पुरुष-नारी एक दूसरे के पूरक हैं अतः इनमें परस्पर आलंबन भाव होगा ही। काम भाव दोनों में है। हाँ, नारी सौंदर्य-श्री के कारण आकर्षण का विषय है। शाक्तों में शक्ति की उपासना के पीछे नारी का आकर्षण-तत्त्व ही है। भारतीय मध्यकालीन संस्कृति में शाक्त धर्म का प्रभाव अत्यधिक है। काम-सौंदर्य-प्रेम-सामरस्य का चित्रण तांत्रिकों की देन है ऐसा माना जा सकता है। मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानों में प्रेमतत्व बहुत कुछ तांत्रिक परम्परा से प्रभावित है। प्रेमाख्यानों में नारी की प्रधानता को यदि तंत्र-योग से जोड़ें तो प्रेमाख्यान के कवियों को सूफी मानना अपेक्षित नहीं। सूफी शब्द का प्रयोग संभवतः किसी प्रेमाख्यानक कवि ने नहीं किया है। प्रेम का जो अजस्र स्रोत नामदेव के गीतों में है, वही कबीर-काव्य में और वही पद्मावत में। चांदायन, मृगावती, पद्मावत कथा-काव्य हैं इसलिए इनमें प्रेम-चित्रण की शैली भिन्न है।

प्रेमाख्यानक काव्यों में कबीर की परंपरा को अपनाते हुए ईश्वर-ब्रह्म को 'अलख-अरूप-अबरन' कहा गया है :

अलख अरूप अबरन सो करता। वह सब सों सब ओहि सों बरता।
परगट गुपुत सो सरब बियापी। धरमी चीन्ह चीन्ह नहि पापी।।
ना ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटंब न कोई संग नाता।।
जना न काहु न कोई ओहि जना। जहँ लगि सब ताकर सिरजना।। 7 पद्मावत

साथ ही उस परमसत् को सर्वत्र घट-घट में बताया गया है :

सब कर मरम गोसाइं जानइ जो घटघट महं नित।। 9 चांदायन

तथा, **बास फूल घिउ छीर जस निरमल नीर मठांह।**
तसकि घटै घट पुरुख ज्यों रे अगिनि कठांह।। 644 वही

इसके साथ ही लौकिक प्रेम परम प्रेम के प्रतीक रूप में चित्रित है :

लोचन चारि होत मिलि जाहीं। जस पानी महँ बूँद समाहीं।।
दुइ ना रहे एकै भै गाता। वह वोहि रात वोहि वह राता।।
269 मृगावती

तथा, **होइ अमर अस मर कै जिया। भंवर कमल मिलि कै मधु पिया।।**
182 पद्मावत

तथा, **भंवर बास परिमल सब लिया। औ सब अमिय महारस पिया।।**
238 मृगावती

पद्मावत का प्रेम पंथ वही है जो कबीर का—

प्रेम पंथ जो पहुँचै पारा। बहुरि न आइ मिले एहि छारा। 146

कबीर जिस प्रकार पुनर्जन्म मानते हैं वैसे ही प्रेमाख्यान के कवि भी :

मैं न आजु तोरे दुक्ख दुखारी। तोरे दुख सेउँ मोहि आदि चिन्हारी।।

113 मधुमालती

पद्मावत में एक ओर पत्थर की मूर्ति (शिव) की पद्मावती द्वारा पूजा है दूसरी ओर रतनसेन द्वारा, पद्मावती से मिलन न होने के कारण, मूर्ति के प्रति उपालंभ अन्यत्र तैंतीस कोटि देवता की भी चर्चा है।

पर, प्रेमाख्यानक काव्यों में भुक्ति-भोग लक्ष्य है। मृगावती में भुक्ति की प्रेम याचना करते हुए साधक (पुरुष) कहता है :

जोग जुगति होइ खेला मारग सीस होइ कहं जाइ।
भुगुति मोर मिरगावति भीख देइ कोइ आइ।। 106

तथा, **एही भीख कहँ एहि ठां आएउ। बहुतन्ह भुगुति दिही नहिं खाएउँ।। 225** भुगुति (भुक्ति=इन्जावमेंट) की भीख इन्द्रिय-सुख की भिक्षा है। यहाँ ग्राम धर्म अथवा यौन सुख का भाव, प्रच्छन्न होते हुए भी स्पष्ट है इसी से उत्तर में मृगावती कहती है 'जोगी होइ न मनचल कोई।' 226. इन सूफी काव्यों में ग्रामधर्म प्रमुख है भले ही वह उदात्त योग का प्रतीक हो। सूफी काव्यों में जोगी, जती तथा संन्यासी होकर ही कोई भोग को प्राप्त करता है। लौकिक भोग भले ही प्रतीक हो अलौकिक भोग का, पर पाठक लौकिक शृंगार का ही रस लेता है। 'सिंहल का राज' पद्मावत में प्रतीक है दिव्य राज्य का, पद्मावती प्रतीक है दिव्य शक्ति की पर सारा सूफी काव्य परम योग के बहाने इन्द्रिय भोग का चित्रण है। शाक्तों की मुद्रा-उपासना इन काव्यों में स्पष्ट है।

कबीर-काव्य इन प्रबन्ध-काव्यों से भिन्न है। यहाँ प्रेम का योगपरक चित्रण शुद्ध रहस्यवादपरक है—जीव-आत्मा के ऐक्य के रूप में। कबीर इसीलिए सूफी परंपरा के कवि नहीं माने जा सकते भले ही उन्होंने जौनपुर के पीर की चर्चा की है :

हज हमारी गोमती तीर। जहाँ बसइ पीतंबर पीर।। 13 आसा०

पीतंबर पीर (=मुर्शिद=धर्मगुरु, वृद्ध) कबीर के धर्मगुरु थे ऐसा असंभव नहीं है। कबीर-काव्य में गुरु का माहात्म्य सर्वोपरि है। 'पीतंबर' कोई वैष्णव भक्त ही रहे होंगे, मुसुलमान पीर नहीं। पीर-गुरु समानार्थी हो सकते हैं। कबीर को हज-तीर्थयात्रा में आस्था नहीं थी यह भी इससे स्पष्ट है। उनके लिए गुरु ही तीर्थ था। कबीर का पीर सूफी नहीं रहा होगा क्योंकि कबीर-काव्य में यौन-सुख का बहिष्कार है। कबीर को वह वहीं तक मान्य है जहाँ तक युग्म-सामरस्य के आनन्द का प्रश्न है— जीव-आत्मा के मिलन का प्रतीक जिस प्रकार भागवत में

गोपी-कृष्ण मिलन है उसी प्रकार कबीर-काव्य में । कबीर में दास-सख्य-पत्नी भाव तीनों ही हैं—भक्ति में सारे भाव संभव हैं।

कबीर का प्रेम भर्तृहरि (भरथरी), गोपीचंद नामदेव-जयदेव का है—यह प्रेम एक ओर सगुणधर्मा है दूसरी ओर निर्गुण। अतः कबीर का पूरे हिन्दी काव्य में विशिष्ट स्थान है—वे गोरख की परंपरा के योगी हैं, वे नामदेव की परम्परा के प्रेमी नामभक्त हैं, वे वेदांती की तरह ईश्वर की सर्वत्र अनुभूति करते हैं। उनका धर्म न वैरागी का है न सूफी का। कबीर गृहस्थी के प्रत्येक कार्य में—समाज के अणु-अणु में अपने प्रिय की लाली देखते हैं। कबीर का लक्ष्य अविगत-अलख की प्रत्यक्षानुभूति है। यह अनुभूति हृदय को निर्मल करने से ही संभव है। कबीर का बल मानसिक तप पर है। कबीर मानते हैं कि काम-क्रोध-लोभ-मोह से मुक्ति साधना से संभव नहीं, यह रामकृपा से ही सुलभ है; अतः वे 'दयाल' राम का सुमिरन करते हैं।

आत्मज्ञान आदित्यवत्

ज्ञानेन तु तदज्ञानं तेषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

जिनके अज्ञान का नाश आत्मज्ञान से हो गया है। उनका ज्ञान सूर्य के समान प्रकाशमान होता है। वही परमतत्त्व का दर्शन कराता है।

गीता 5-16

परमपुरुष भक्ति से प्राप्त होता है

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

वह परम पुरुष जिसके अन्तर्गत सर्वभूत स्थित हैं, जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है अनन्य भक्ति से प्राप्त हो सकता है।

गीता 8-22

३२. मोमिन कबीर : परंपरा और योगदान

कबीर ने अपने को **कोरी, जुलाहा** और **जाति कमीना** कहा है :

(i) कहत कबीर कारगह तोरी। सूतति सूत मिलाए कोरी ॥
(ii) हरि को नाँव अभैपद दाता कहै कबीरा **कोरी** ॥
(iii) **जाति जुलाहा** मति कौ धीर। हरषि-हरषि गुन रमै कबीर ॥
(iv) **जाति जुलाहा** नाम कबीर अजहुँ पतीजौ नाहीं।...
(v) तहाँ जाहु जहाँ पाटपटम्बर अगर चन्दन घसि लीना ॥
आइ हमारै कहा करौगी हम तौ **जाति कमीना** ॥

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि कबीर की जाति **कोरी**=जुलाहा थी। **कमीन**= नीच, मजदूरी करनेवाला। फारसी **कमीन** का अर्थ है नीच, अधम, अकुलीन। बुन्देलखण्ड में परजापावन की सात जातियाँ : नाई, धोबी, बाँस का काम करने वाले (बसोर), लोहार, बढ़ई, कुम्हार, कहार (धीमर) कमीन कहे जाते हैं। फा० **कमीन** का मूल संस्कृत कर्मन्, कर्मिन्, कर्मीण है। पंजाबी में कम्मी=मजदूर (लेबरर, मीनियल) के आशय में है। ओड़िया में 'कामी' (कामिणी=स्त्री मजदूर)=मजदूर है। गाली में हम 'कमीना' फा० (कमीन)=नीच के अर्थ में प्रयोग करते हैं। हाथ से काम करने वालों का समाज में आदर न था—उनकी गणना शूद्र में थी—कोरी जुलाहा हाथ की कारीगरी से सम्बन्धित नाम हैं। शाहाबाद (बिहार) में छोटे अथवा मजदूरी करके पेट भरने वाले काश्तकार **कमीन, कमीना** कहे जाते हैं। अतः कोरी-जुलाहा कमीन माने जाते थे।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ('कबीर' पृष्ठ 17) संस्कृत का एक उद्धरण दिया है जिसके आधार पर नौ शिल्पकार (माली, लोहार, शंखकार, कुविन्द (कोरी-जुलाहा), कुम्हार, कसेरा, बढ़ई, चित्रकार तथा सुनार) शूद्र के गर्भ से उत्पन्न बताए गए हैं—ये विश्वकर्मा के पुत्र माने गए हैं :

विश्वकर्मा च शूद्रायां वीर्याधानं चकार ह।
ततो बभूवः पुत्रास्ते नवैते शिल्पकारिणः ॥
मालाकारः कर्मकारः शंखकारः कुविन्दकः।
कुम्भकारः कांसकारः षडेते शिल्पिनांवराः ॥
सूत्राधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च।
पतितास्ते ब्रह्मशापाद् अजात्या वर्णसंकराः ॥

उत्तर प्रदेश (इलाहाबाद, आजमगढ़ आदि) में कोरी काफी तादाद में हैं। अलीगढ़ में **कोली** कहलाते हैं। कबीर ने **कोली** का भी प्रयोग किया है :

खाड़ बुणं कोली में बैठी, श्वं खूंटा में गाड़ी।

ताणें बाणें पड़ा अनवासी सूत कहै बुणि गाढ़ी ।। 10 गौड़ी

मुसलमानों के आक्रमण के समय कोरी-कोली धर्मपरिवर्तन के लिए विवश किए होंगे; मुसलमान बनने पर ये जुलाहा कहलाए।

अथर्ववेद **कुलाय**=(1) वस्त्र, (2) जाल, (3) घोंसला। 'पंचतंत्र' में भी **कुलाय** है। **कोलिक** (=बुनकर) 'यशस्तिलक', सोमदेव सूरि में है; पंचतन्त्र में भी। संस्कृत **कोलिक** से विकसित प्राकृत **कोलिअ** के अर्थ हैं—(1) बुनकर, (2) मकड़ी। फारसी **जोलः** के भी यही अर्थ हैं। फा० जोल सं० कोलिक से संबंधित है। मानक हिंदी कोश में जुलाहा को फ़ा० जौलाह से सम्बन्धित बताया गया है पर 'जौलाह' शब्द मुझे नहीं मिला। फ़ारसी **जोल** उर्दू जोलाहा है।

नामादास **भक्तमाल** (सन 1585 ई०) में कबीर का परिचय देते हैं :

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी ।।
भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।।
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहि बचन सबहि के हित की भाखी ।।
आरूढ़दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी ।।

उपर्युक्त उद्धरण से यह आशय निकाला जा सकता है कि कबीर मूलतः हिंदू कोरी थे—मुसलमान को वर्णाश्रम और षटदर्शन से क्या लेना देना। '**कानि**' संभवतः कानून=विधान से सम्बन्धित है। कबीर ने मर्यादा—सीमा नहीं स्वीकार की जाति-वर्ण सम्बन्धी। ब्रह्मविद्या का जो अधिकार ब्राह्मणों को था वह कबीर ने सर्वसामान्य के लिए कर दिया। कबीर ने बताया ईश्वर सबके भीतर है, सर्वव्यापी है उसे कोई भी निर्मल मन से पा सकता है, उसका अनुभौ कर सकता है। षट् दर्शन के ज्ञान की आवश्यकता नहीं—सांख्य, न्याय, मीमांसा तर्क के लिए हैं। '**अनुभौ**',—ईश्वरानुभूति—से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। 'जोग जग्य व्रतदान' आदि भक्ति-भजन के आगे तुच्छ हैं। ये सारी बातें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं।

कबीर भले ही हिंदू कोरी रहे हों पर उनकी ख्याति मोमिन रूप में रही है। विष्णुदासों का वर्णन करते हुए संत **तुकाराम** का कथन है :

कबीर मोमिन लतिफ मुसलमान। 4299 अभंग

लतिफ=पाकसाफ, पवित्र। मोमिन=मुसलमान (जुलाहा)। अरबी **मोमिन** का अर्थ मुसलमान है, मराठी में मोमिन मुसलमान विणकर को कहते हैं। तुकाराम छत्रपति शिवाजी के समकालीन माने जाते हैं।

प्राचीन तमिल संत **तिरुवल्लुवर**, परम्परा के अनुसार, एक ब्राह्मण पुरुष एवं निम्न जाति की स्त्री की सन्तान थे। तमिल में ऐसी सात सन्तानों का उल्लेख

है। सातों शिल्पकार ही होंगे। तिरुवल्लुवर को जुलाहा माना गया है। इनकी पत्नी का नाम वासुकी बताया जाता है। तिरुवल्लुवर का काव्य **'तिरुक्कुरल'** कबीर की साखी की भाँति आचारांग सूत्र है जिसमें संयम, मधु भाषण, सदाचरण, परोपकार, सत्यभाषण, अहिंसा, त्याग, सत्य ज्ञान, निष्काम कर्म आदि की महत्ता वर्णित है। यह एक श्रेष्ठ नीति-ग्रंथ है। 'तिरुक्कुरल' में माधुर्यभाव—प्रिय-प्रिया मिलन का सुख, वियोगजन्य व्याकुलता, स्वप्न में प्रियदर्शन—का भी सरस अंकन है। यह ग्रंथ संभवतः ईसा की छठी शती में रचा गया था। उत्तरी भारत पर दक्षिण के संत का—उसकी विचारधारा का—प्रभाव स्वीकारा जा सकता है।

शंकराचार्य (सातवीं सदी) की कृष्ण और शक्ति सम्बन्धी स्तुतियाँ भक्ति साहित्य की अमूल्य मणियाँ हैं। **'भज गोविन्दम् स्तोत्र'** (जिसे मोहमुद्गर कहा जाता है) वैराग्य और भक्ति का अद्भुत काव्य है। **'भज गोविन्दं भज गोविंदं, भज गोबिंदं मूढ़मते'** का जयदेव-ज्ञानदेव-नामदेव-कबीर-सूर-तुलसी सभी संत-भक्तों पर प्रभाव है। पाण्डित्य की निस्सारता पर शंकर ने प्रहार किया है; तथा आशा-पाश, अभिमान-तृष्णा-संगत्व (आसक्ति) से बचने के लिए सचेत किया है। 'जीवनमुक्ति' शंकर के शब्दों में 'निश्चल चित्त' है। यही 'ब्रह्मपद' है। काषाय वेषधारी, मुंडी, लुंठित, जटाधारी—'उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः' का शंकर ने सर्वथा तिरस्कार किया है। सत्संग और 'नामसहस्र' के गान की महिमा **भज गोविन्दं स्तोत्र** में है। शंकर मानते हैं कि योगी का पन्थ 'पुण्यापुण्य विवर्जित' है। और योगी समाधि (ब्रह्मसाक्षात्कार) के आनन्द के क्षण 'बालोन्मत्तवत्' होता है। कबीर में ये सारे भाव हैं। **'भव समचित्तः सर्वत्र त्वं'** शंकर का उद्घोष है—विष्णुत्व अथवा विष्णु पद (मुक्ति) भेद-भाव छोड़ने और समचित्तता से ही सम्भव है। समचित्तता अर्थात् किसी से रोष-द्वेष नहीं—

त्वयि मयि चान्यैत्र को विष्णुः
व्यर्थं कुप्यसि मय्यपि विष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं
सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्॥

तथा, **भव समचित्तः सर्वत्र त्वं**
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं
भज गोविन्दं मूढ़मते॥

'आत्मज्ञानविहीना मूढ़ाः' के लिए शंकर का एकमात्र उपदेश है—गुरु की शरण जाओ, अपने हृदयस्थ देव का दर्शन करो। तभी संसार-सागर से पार हो सकोगे :

गुरु चरणाम्बुज निर्भर भक्तः
संसारादचिराद् भवमुक्तः

सेन्द्रियमानसनियमादेवम्
द्रक्ष्यसि निज हृदयस्थं देवम् ।।

लगता है कबीर शंकर की ही बात 'भाषा' में कह रहे हैं—वही प्राणायाम, प्रत्याहार नित्यानित्य-विचार, अवधान (समाधि) तथा भोग—पापाचार—से विरोध। शंकर-कबीर के अनुसार भगवान भीतर हैं। सर्वत्र आत्मा का ही रूप है, यही ज्ञान मुक्ति है। अपने और दूसरे में भेद का निर्मूल हो जाना ही विष्णुत्व है। कबीर अपने समय के उसी प्रकार क्रांतिकारी व्यक्ति हैं जैसे शंकर। कबीर का अध्यात्म शंकर की भाँति समचित्तता, समदृष्टि और अभेद पर आधारित है। कबीर ने सत्य को पकड़ा है शास्त्र को नहीं। कबीर चिंतक, योगी, भक्त, संत थे।

कबीर बहुमुखी प्रतिभा, कल्पना, और सर्जना के धनी थे। कबीर 'शून्य' के साथ इस जमीन के थे। कबीर ने अभेद दर्शन का व्यावहारिक प्रयोग किया गाँधी के सत्य-अहिंसा के प्रयोग की तरह। कबीर ने आत्मदर्शन से पाया कि ईश्वर एक है। मुसलमान जिसे अल्लाह कहता है वही खुदा राम है। दोनों ही अलख हैं, दोनों को वही पा सकता है जो लतीफ-निर्मल-विकाररहित हो। जो सच्चा बंदा है, सेवक है वह बाह्य रूपों की ओर नहीं देखता। नाना रूपों में एक ही मिट्टी है, एक ही निर्माता है और सब घट में एक ही प्रकाश है। कबीर का यह दर्शन तत्कालीन सामाजिक स्थिति से निपटने के लिए अमोघ था। उन्होंने कहा विष्णुदास अथवा साधु-संत-भक्त की जाति नहीं। उसके लिए सब समान। भेद समाज की देन है भगवान की नहीं। इतिहास में कबीर जैसा प्रभविष्णु व्यक्तित्व खोजने पर भी नहीं मिलेगा। भारत के सचमुच वे निर्माता हैं। कबीर ने समाज को वह तत्त्व दिया जिससे धर्मनिरपेक्षता-स्वतंत्रता के साथ लोग रह सकें।

कबीर उपदेशक नहीं थे और न सुधारक। कबीर ने आत्मसाक्षात्कार से ईश्वर को पहचाना और उस ज्ञान के फलस्वरूप उन्होंने एकता का संदेश दिया। कबीर रामचरन के बंदे थे, हरिदास थे यह उनके काव्य से सुस्पष्ट है। कबीर की ईश्वर-मिलन और विरहसम्बन्धी पंक्तियाँ शुद्ध वैष्णव की हैं—किसी गोपी की हैं जो प्रियतम से मिलन के लिए सतत सचेत है। कबीर का यह प्रेमतत्त्व सूरदास में विकसित हुआ। कबीर परमानन्दी हैं नित्यमिलन में मस्त। निश्चय ही उस अमृत रस की एक बूंद के लिए उनके पास संतों की, सत्संगियों की भीड़ रहती रही होगी। अतः, विष्णुदास कबीर न हिन्दू हैं और न मुसलमान; न निर्गुणवादी है और न सगुणवादी। कबीर का योग प्रेमयोग है। कबीर की भक्ति रामनाम से, राम के चरनकमल से, राम के अभेद-भाव से, राम की दयालुता से है जिसका फल है समचित्तता-समता-सहिष्णुता-धर्मनिपेक्षता।

'ग्रन्थ साहेब' में नामदेव और कबीर का एक साथ आदर के साथ नाम लिया गया है—जिस प्रकार महाराष्ट्र में नामदेव उसी प्रकार उत्तर भारत में कबीर केशव-विट्ठल के बंदे हैं—

वाही साही हजरत मौला खड़ा पंढरपुरवाला है।
दुवले भगत दोनों भये उनोसे करो बोलबाला है ॥
दखन स्थाने नाम दरजी उनोंका विट्ठल बंदा है।
और सेवा कछु न जाने अंदर भीतर केशव है ॥
उत्तर स्याने भयो कबीरा रामचरण का बंदा है।
उनका पूत कमाल दोनों का बोलबाला है ॥

इस उद्धरण में कबीर को रामचरण का बंदा बताया गया है। कबीर रामभक्त-रामदास थे—रामनाम के गुण गानेवाले थे। नामदेव विट्ठल के और कबीर राम के बंदे (सेवक)। कबीर का राम निर्गुण नहीं, विट्ठल की भाँति सगुण है—जिस प्रकार विट्ठल नामदेव के हित के लिए उनके पीछे पीछे लगे रहते वैसे ही राम अपने भक्त कबीर के।

कबीर गृहस्थ थे—उनका पुत्र कमाल भी रामभक्त रहा होगा ऐसा ध्वनित होता है।

नामदेव और कबीर दोनों ही अन्दर-बाहर उसी परमेश्वर का दर्शन करते थे, उनके सिवा और कहीं कुछ नहीं।

कबीर काव्य में सतगुरु की महिमा है। अपने आत्मज्ञान का श्रेय कबीर गुरु को देते हैं—पर गुरु के सम्बन्ध में कहीं संकेत नहीं मिलता है। सामान्यत: कबीर को रामानन्द का शिष्य बताया गया है, यद्यपि कबीर ने कहीं भी इस प्रकार का संकेत नहीं किया है।

कबीर को सिकंदर लोदी (सन् 1494) का समकालीन माना जाता है और उनके निम्नांकित पद को सिकंदर द्वारा किए गए उत्पीड़न से सम्बन्धित माना जाता है :

कहो मेरे गोब्यंद तुम्हारा जोर।
काजी बकिवै हस्ती तोर ॥
बाँधि भुजा भलै करि डार्‌यौ। हस्ती कोपि मूंड मैं मार्‌यौ ॥
भागै हस्ती चीसां मारी। वा मूरति की मैं बलिहारी ॥
महावत तोकौं मारू सांटी। इसहि मराऊँ पालौं काटी ॥
हस्ती न तोरै धरै धियान। वाकै हिरदै बसै भगवान ॥
कहा अपराध संत हौ कीन्हा। बांधि पोट कुंजर कौ दीन्हा ॥
कुँजर पोट बहु बंदन करै। अजहूँ न सूझै काजी अंधरै ॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हा। मन कठोर अजहूँ न पतीना ॥
कहै कबीर हमारै गोब्यंद। चौथे पद ले जन का ज्यंद ॥ 4 बिलावल

एक और पद है जिससे स्पष्ट है कि कबीर को जंजीर में बाँधकर जल में डुबोने का प्रयास किया गया था :

मन न डिगै तार्थै तन न डराइ ।
केवल राम रहे ल्यौ लाइ ॥
अति अथाह जल गहर गंभीर । बांधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर ॥
जल की तरंग उठि कटिहैं जंजीर । हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर ॥
कहै कबीर मेरे संग न साथ । जलथल मैं राखै जगन्नाथ ॥ 16 भैरूँ

कबीर ने इन संघर्ष-पीड़ा के क्षणों में अपने को राममय बना लिया—उसी में लौ लगा लिया—जब मन भगवान में तब तन की कहाँ सुधि—'**जलथल मैं राखै जगन्नाथ**' से लगता है उक्त दोनों थल-जल के प्रसंग उनके जीवन से सम्बन्धित हैं। कबीर की भक्ति 'जगन्नाथ' के प्रति थी।

कबीर के निन्दकों—हंसी उड़ानेवालों—की कमी न थी पर निन्दकों के प्रति कबीर का द्वेष-घृणा भाव नहीं—

मैं बौरी मेरे राम भरतार । ता कारनि रचि करौं स्यंगार ॥
जैसे धुबिया रज मल धोवै । हरत परत सब निंदक खोवै ॥
न्यंदक मेरे माई बाप । जनम जनम के काटै पाप ॥
न्यंदक मेरे प्रान अधार । बिन बेगारि चलावै भार ॥
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी । आप रहे जन पार उतारी ॥ 17 भैरूँ

कबीर कितने सहिष्णु थे और कितने विचारों में उदार यह उक्त पद से स्पष्ट है। कबीर का दृष्टिकोण संत का था। जीवन-दृष्टि ही सुख-दुख शांति-अशांति का कारण है। कबीर के व्यक्तित्व की महानता का श्रेय उनकी समचित्तता-समदृष्टि और सर्वत्र राम की अनुभूति है। कबीर जुलाहे का 'राम भरतार के लिए शृंगार करना' मुसलमानों को सहन न रहा होगा—कोई मुसलमान राम-प्रेम में दीवाना रहे यह कट्टर मुसलमान कैसे सह सकता था। पर कबीर ने अपनी भक्ति-पद्धति छोड़ी नहीं उल्टे उसके लिए पागल से थे—कबीर 'एकला चलो रे' में विश्वास करते थे :

जो मैं बौरा तौ राम तोरा ।
लोग मरम का जानैं मोरा ॥
लोग कहैं कबीर बौराना ।
कबीरा कौं मरम राम भल जानां ॥ 18 भैरूँ

कबीर भक्त को हंस सदृश कहते हैं—हंस में नीर-क्षीर का विवेक होता है। हंस (ज्ञान) के विपरीत है कौआ (कुबुद्धि) जो अशुद्धि में रुचि लेता है :

हरिजन हंस दसा लीयें डोलै ।
निर्मल नांव चवै जस बोलै ॥
मानसरोवर तट के वासी । रामचरन चित आन उदासी ॥
मुकताहल बिन चंच न लावै । मौन गहै कै हरि गुन गावै ॥

कउआ कुबुधि निकट नहीं आवै । सो हंसा निज दरसन पावै ।।
कहै कबीर सोई जन तेरा । खीर नीर का करै निबेरा ।। 19 भैरूं

कबीर का सतगुरु और कोई नहीं राम-निरंजन—उन्हीं का ध्यान उन्हीं का सुमिरन। वह वेद पुराण-स्मृति के पाठ से नहीं मिलता—सतत ध्यान और उसकी सतत चेतना ही उसके पाने की कुंजी है :

सति राम सतगुरु की सेवा ।
पूजहु राम निरंजन देवा ।।
मन मैं मैला तीरथि न्हावै । तिनि बैकुंठ न जानां ।।
पाखंड करिकरि जगत भुलाना । नाहिन राम अयाना ।।

कबीर पाखंड के कट्टर विरोधी थे—उनका बल मन-शुद्धि पर था। हृदय कठोर-क्रूर-हिंसक हो तो काशी में मरने पर नरक ही मिलेगा और हृदय शुद्ध तो मगहर में भी स्वर्ग अर्थात् मुक्ति :

हिरदै कठोर मरै बानारसि नरक न बंच्या जाई ।
हरि को दास मरै जो मगहर सेन्यां सकल तिराई ।।
पाठ पुरान बेद नहीं स्मृति तहाँ बसै निरकारा ।
कहै कबीर एक ही ध्यावो ,बावलिया संसारा ।। 20 भैरूं

कबीर का अटल मत था कि विषयों से हटकर रामनाम से जुड़े तभी मुक्ति सम्भव है। राम के लिए काम (इच्छा) छोड़ना होगा, स्वार्थ से विमुख होकर निसंग होना होगा :

राम नाम बिन नरक न छूटै जे धोवै सौ बारा ।।
परिहरि काम राम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी ।
हरि कौ नांउ अभैपद दाता कहै कबीरा कोरी ।। 21 भैरूं

कबीर अपनी आस्था में दृढ़ थे। संभवत: काशी पवित्रता के लिए और मगहर अपवित्रता के लिए प्रसिद्ध थे। कबीर का कहना था मन पवित्र होना अनिवार्य है देश-काल का महत्त्व नहीं। सत्य के प्रयोग के लिए वे मगहर गए होंगे, उनका देहावसान मगहर में ही माना जाता है। कबीर दिव्य थे, पावन थे, और चरित्र के पक्के, मनोबल तो उनमें अपार था। आज ऐसे ही कर्मयोगी-भक्त-मानवमूल्यों के रक्षक की अपेक्षा है।

———

३३. कबीर : इंसान की तलाश

कबीर का यदि कोई धर्म था तो वह था ऐसे इंसान की खोज जो निर्भीक हो, वसूल का पक्का हो, दृढ़निश्चयी हो, जो निंदा से डरे नहीं और प्रशंसा से विचलित न हो, जो हर एक मनुष्य को मनुष्य माने—हिंदू-मुसलमान-ब्राह्मण-शूद्र नहीं। कबीर के लिए काशी-मगहर बराबर था यदि व्यक्ति स्वयं पवित्र-निष्काम हो। कबीर ऐसे शूर की खोज में थे जो जूझना जाने, जो लोभ-मोह से युद्ध करे, मैदान छोड़कर भागे नहीं, सचाई को डंके की चोट पर कहे भले ही उससे लोग नाराज हों। कबीर ऐसी सती की तलाश में थे जो जौहर करना जानती हो सतीत्व की रक्षा के लिये। कबीर ऐसी नारी के पूजक थे जो अपने पति के अतिरिक्त किसी और को न सोच सके—जो उसी को सुमिरे और उसी के साथ रमे। कबीर का धरम सत था अर्थात् जो ठीक समझना उसे कहना भले ही उसे लोग निगल न सकें। कबीर का आचरण सत का था भले ही उस रास्ते पर काँटे चुभें। कबीर सूर, पतिव्रता, साका करनेवाले सैनिक के आचरण के अनुगामी थे। वे किसी साथी-संगी के लिए रुकना नहीं जानते थे।

कबीर मानते थे कि दुनियाँ में कोई किसी मजहब धर्म को लेकर नहीं आता और न वह किसी जातिविशेष का होता है—ये सब भेद सांसारिक हैं अतः ये असत्य हैं, इनका मूल से कोई सम्बन्ध नहीं। समाज में फैले हुये भेद का मूल हमारी संकीर्णता है, हमारे शास्त्र हैं, हमारे पंडित हैं, हमारे मुल्ला हैं। आदमी-आदमी में कैसा भेद ! कबीर ने आदमी का पक्ष लिया, शास्त्र-दर्शन का विरोध किया। कबीर की प्रसिद्धि का आधार उनकी सचाई के प्रति प्रतिबद्धता है—उन्होंने वर्णाश्रम और षट् दर्शन की 'कानि' नहीं रखी।

कबीर युगपुरुष थे—महावीर-बुद्ध-ईसा-गांधी की भाँति। वे मनुष्यता के शिखर पर थे उन्होंने जीवन भर अन्याय-भेद-असहिष्णुता-हिंसा-शोषण का विरोध किया। वे मानते थे कि धर्म का संबंध आचरण से है मंदिर-मसजिद से नहीं, 'वेद-कतेब' से नहीं। कबीर मानते थे राम भीतर है उसे पहचानना ही धर्म है। राम को पहचानना अर्थात् राम के गुणों को जीवन में उतारना, राम का साक्षात्कार करना अर्थात् सारे जगत् को राममय देखना। राम का नाम जपना अर्थात् एक क्षण के लिए भी सत्य से अलग न होना, राम का सुमिरन अर्थात् लक्ष्य का सतत ध्यान।

कबीर का राम हिंदुओं का भी है और मुसलमानों का भी—वह प्रतीक है सत्-सदाचार, निर्भीकता, दयालुता, अभेद और आनंद का। राम की शरण में जाने वाला सांसारिक विकारों से बच जाता है, उद्वेलित-व्यस्त नहीं होता है जीवन-विषमताओं से। कबीर 'राम भरोसे' रहने की सीख देते हैं, अनासक्त रहने की

सलाह देते हैं, निसंग व्यवहार का उपदेश देते हैं। कबीर कहते हैं आसक्ति छोड़ो, निर्भय बनो, सूर बनो। सचाई पर टिकने के लिए 'निरपष' होना होगा—मुसलमान को अपनी कट्टरता छोड़नी होगी और हिंदू को अपनी। कोई अछूत नहीं सब राम की संतान। शोषण छोड़ना होगा न्याय-सत्य के लिए।

कबीर योगी थे पर हठ योगी नहीं, तांत्रिक नहीं, एकांत में उदासीन होकर बैठनेवाले नहीं। उनका योग भगवान से जुड़ने के अर्थ में है, भगवान की नित्य अनुभूति है, भीतर की आत्मा की साक्षी है, ईश्वरानंद है, और प्रत्यक्षानुभूति है। कबीर योग की प्रक्रिया से परिचित थे उनकी शब्दावली इसका प्रमाण है पर सिद्धों-नाथों की परम्परा से वे बहुत आगे निकल गये हैं। उनके योग में अद्वैत की अनुभूति है, आनंद का अनुभव है और समचित्तता की साधना है। कबीर समाज के भीतर थे, उससे सम्पृक्त साथ ही उससे अलग, तभी वे तटस्थ रहकर तत्कालीन भेद-भाव का विरोध कर सके।

कबीर बेचैन थे लोगों की बेहोशी देखकर, वे परेशान थे उनके अंधत्व से, वे दुःखी थे उनकी हिंसा-प्रवृत्ति से—आपसी मारकाट से। कबीर मानते थे कि ईश्वर एक है उस तक पहुँचने के मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं इसलिए मुसलमान-हिंदू को परस्पर एकता से घृणा छोड़कर, रहना चाहिए। हिंदुओं के लिए उनकी फटकार थी कि वेदशास्त्र का ज्ञान व्यर्थ है यदि आचरण में व्यभिचार है—धर्म वैर करना, घृणा करना, भेद करना नहीं सिखाता। मुसलमानों के लिए उनकी सलाह थी कि परमसत राम में आस्था लावें—सियासुन्नी का भेद नहीं, गोहिंसा से बचें, मिलजुलकर रहें, सर्वधर्म समभाव को अपनावें। मनुष्य बनना मुल्ला-पंडित बनने से उत्तम है। राम निरंजन भी है और सगुण भी।

कबीर मानव के विकास के लिए आवश्यक मानते थे मनुष्यत्व का विकास मनुष्यत्व अर्थात् सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, पुरुषार्थ को अपनाना। 'राम' के लिए संन्यासी बनने की अपेक्षा नहीं, तीर्थयात्रा और हज की आवश्यकता नहीं। राम हमारे भीतर है, राम बाहर है, राम सर्वत्र है—समदृष्टि ही मनुष्यता का मूल है। मन को शुद्ध करने से ही मनुष्य बना जा सकता है किताबी ज्ञान से नहीं। वेद-कतेब गधे का बोझ है यदि मनुष्य सचाई-सहानुभूति को छोड़ता है। शास्त्रज्ञान बुद्धि की क्रीड़ा है, तत्त्वज्ञान चाहिए। कबीर के अनुसार मनुष्य को हंस की भाँति नीर-क्षीरविवेकी होना चाहिए। पोथीपत्रा बाँचना-देखना जीविका के लिए है, सत्य का साक्षात्कार और सत्याचरण चिर आनंद के लिए है। पोथी-ज्ञान, आत्मज्ञान का सहायक तभी है जब वह सद्विचारों का मूल बने। अन्यथा, पोथी का अंबार होते हुए भी संसार में न्याय-सत्य नहीं रह सकेगा। किताब भ्रमकारक है—भेद कारक है, और अहंकार का मूल है। भक्ति के लिए सहजता चाहिए, जीवन की सहजगति चाहिए और चाहिए खुला हुआ दिमाग, खुला हुआ हृदय। माला जपना,

तंत्रमंत्र करना; गंगास्थान करना, छूत-अछूत का ध्यान रखना ये सब सहज जीवन के विरोधी हैं; मनुष्य इनके भ्रम में मनुष्य बनना भूल जाता है ।

कबीर कहते हैं सम्पूर्ण मानव बनने के लिए आस्तिकता अपेक्षित है । ब्रह्मज्ञानी अथवा भक्त सर्वत्र उसी परम ज्योति का दर्शन करता है इसलिए वह अपनी ही भाँति दूसरों को भी मानता है । ईश्वर में विश्वास न करनेवाला—'साकट' अहंकार का शिकार होता है दुर्योधन की तरह। भक्त विनम्र और दासानुदास होता है। रामदास बनना ही मनुष्य बनना है । 'राम का कूता' बनें—भीतरी राम की आज्ञा को मानें—सब को उसी राम की संतान मानें—समभाव । बिना सत-ईश्वर की अनुभूति के अहंकार, द्वेष, क्रोध-मोह-माया से बचना असंभव है ऐसा कबीर का मत है ।

मनुष्य की कसौटी है उसका अहंकार-मद-मत्सरहीन होना । ये विकार न योगसाधना से जाते हैं, न माला जपने से, न मूर्ति को जल चढ़ाने से, न जोर-जोर से नमाज पढ़ने से । विकारों से जूझने के लिए ईश्वर का बल-आत्मबल चाहिए। ईश्वर विकार रहित है वह पूर्ण है अतः वही पूर्णत्व देने में समरथ है । ईश्वर विरोधी की निंदा की परवाह न करे, मान का भूखा न रहे, सम्पत्ति का लोभ न करे । सचाई के लिए घर फूंकना पड़े तो वह भी उचित है—सांसारिक वैभव अंततः पतन की ओर ले जाते हैं अतः राम की शरण जाकर काम-वासना-इच्छा से बचे । लोभ की सीमा नहीं ।उससे बचने के लिए 'आपसवारथी' नहीं 'रामसवारथी' बनें । **रामसवारथी** अर्थात् परस्वारथी, परमार्थी, परोपकारी । मनुष्य समाज के लिए पैदा हुआ है उसका धर्म है जीवन रहते समाज के हित की सोचना । समाज के हित के लिए प्रत्येक सामाजिक प्राणी से हित-प्रेम करना होगा उसे आत्मीय मानना होगा । आत्मीयता नहीं तो प्रेम नहीं, प्रेम नहीं तो समता नहीं । प्रेम उदात्त हो इसके लिए उस परमप्रेमस्वरूप राम का भक्त होना चाहिए । मनुष्यत्व माने रामत्व और रामत्व का आशय है मनुष्यत्व । जो मनुष्य नहीं वह राम नहीं, राम भक्त नहीं । मनुष्यशरीर सत्य की खोज के लिए, ज्ञान के लिए, सेवा के लिए शूरत्व के लिए, सत्य के लिए, साका करने के लिए मिला है । इसका उपयोग स्वार्थ में नहीं पर सेवा में है । सेवा-भाव तभी संभव है जब मनुष्य की एकता में विश्वास करे, सबको समान अधिकार दे । राम-अल्लाह मंदिर-मसजिद में नहीं घट-घट में है इस लिए राम का बंदा वही है जो सब में राम देखे—सबसे प्रेम करे जैसा माँ बच्चे को प्यार करती अथवा मित्र, मित्र को प्यार करता है ।

कबीर देख रहे थे धर्म के नीचे मनुष्यत्व दब रहा है इसलिए उन्होंने अपने को न मुसलमान कहा और न हिंदू केवल अपने पेशे से उन्होंने अपना परिचय दिया । धर्म साधक भी है और बाधक भी—जब पांडित्य का धर्म-आचरण से संबंध नहीं रह जाता तब वह बोझ और विनाशकारी बन जाता है । जब धर्म-संप्रदाय भेद की सीख देते हैं तब वे समाजविरोधी हैं । धर्म वही है जो भेद

को, घृणा को, हिंसा को रोके। कबीर ने देखा कि हिंदू, मुसलमान को अस्पृश्य मानता है और मुसलमान हिंदू को भ्रष्ट-पतित (काफिर); इसलिए, उन्होंने दोनों के विरोध में अभेदवाद, एकतावाद, समतावाद की आवाज बुलंद की।

कबीर ने तत्कालीन शिक्षा का परिणाम देखकर उस पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने महसूस किया पोथी पढ़नेवाला पंडित न उदार होता है, न परोपकारी और न सहनशील-विनम्र उल्टे उसमें अपनी पंडिताई का अहंकार विकसित होता है और वह सामान्य मनुष्य को हेय की दृष्टि से देखता है। वह शास्त्रार्थ के लिए पंडित है ज्ञान उसमें छू तक नहीं गया है इसलिए उन्होंने पंडिताऊ ज्ञान का विरोध किया और आचरण-व्यवहार पर बल दिया। मस्तिष्क को माँजने की जगह उन्होंने हृदय-मन को माँजकर पवित्र करने की ओर जनजन का ध्यान आकृष्ट किया।

आज प्रजातन्त्र में सच्चे इंसान का उसी प्रकार अभाव है जैसा कबीर-युग में था। आज की शिक्षा जीविकोपार्जन के लिए है आचरण के लिए नहीं। इस शिक्षा से न लोग अनुशासन सीख रहे हैं और न विचारों की शुद्धता अपना रहे हैं। विज्ञान जहाँ सुख-सुविधा दे रहा है वहाँ विषय-सुख की ओर उन्मुख भी कर रहा है फलत: अपनी वासनाओं-कामनाओं की तृप्ति के लिए व्यक्ति जघन्य कर्म करने में भी हिचकता नहीं। वह स्वार्थी-कामी-होता जा रहा है और अर्थ के लिए अनर्थ करने पर उतारू है। आज का पंडित अपने तर्क से असत्य को सत्य साबित करने में हिचकता नहीं क्योंकि पैसा असत्य से ही बटोरा जा सकता है। आज भी पांडित्य और आचरण में सामञ्जस्य नहीं है। धर्म केवल झगड़ने के लिए है। इसीलिए शिक्षा को नयी दिशा देने की अपेक्षा है जिससे विज्ञान के साथ आचरण-नैतिकता का मेल बैठ सके। प्रजातन्त्र ढह जायगा यदि जनता नैतिकता को ताक पर रख देगी। आज स्कूली शिक्षा से अधिक नैतिक आचरण की अपेक्षा है। यदि समय रहते हम अपने को ठीक रास्ते पर न ला सके तो प्रजा, प्रजा को खा जायगी और परस्पर द्वेष-घृणा-हिंसा से जनजीवन का स्वातन्त्र्य और उसका हित समाप्त हो जायगा।

आज 'कबीर' की अपेक्षा है जो स्वार्थ के ताण्डव नृत्य और आतंकवाद की विनाशकारी लीला से समाज को सुरक्षित कर सके। कबीर की साखी आज और भी उपादेय हैं। कबीर का युग संतों का युग था—उस समय लोग सचाई-ईमानदारी-न्याय की बात सुनने को तैयार थे; आज तो सत्य को किसी अंधकूप में ढकेल दिया गया है और लोभ की पूर्ति के लिए लोग राष्ट्र को बेचने में—उसे नष्ट होते देखने में—आनन्द ले रहे हैं। न ईश्वर का भय है और न समाज का। लगता है आत्मा का प्रकाश अंधकार में बदल गया है।

अत:, आज की मांग है हम इंसान-मनुष्य बनें। भ्रष्टाचार न प्रजातंत्र को जीवित रहने देगा और न जन-जन को। संग्रह की होड़ समाप्त करने के लिए,

शस्त्रास्त्र की होड़ खतम करने के लिए मानवत्व की श्रेष्ठता घोषित करनी होगी और उसकी रक्षा के लिए संसार में क्रांति करनी होगी। आज स्वतंत्रता-समता केवल कागज पर है। राजनीति ने निगल लिया है मानवत्व को। एक और धर्म की अंधता, दूसरी ओर राजनीति का जाल, और इन दोनों से बढ़कर पैसे की हवस—ये सभी सारे बुनियादी मूल्यों को निर्मूल कर रहे हैं। आवश्यकता है हम अपने को पहचानें, सन्मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध हों, राष्ट्र की एकता के लिए सचेष्ट हों और निष्ठापूर्वक अपने को 'समाज सवारथी' बनावें। कबीर का 'राम-सवारथी' प्रयोग इसी आशय में था। सर्वत्र राम का दर्शन करना अर्थात् सब को अपने समान समझना। यह समदृष्टि ही लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति को विनष्ट कर सकती है। जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों को, आर्थिक मूल्यों की अपेक्षा अधिक महत्ता देनी होगी। कबीर-जायसी-सूर ने जिस उदात्त प्रेम की सीख दी है वही हमारा उद्धार कर सकती है।

कबीर संत थे—परमार्थी थे, जाति-पांति से ऊपर थे, संप्रदाय-भेद से मुक्त थे। आज जन-जन को कबीर बनना पड़ेगा तभी इंसानियत बच सकेगी। आज सुख-संग्रह में हम व्यस्त हैं पर सुख की भूख की तृप्ति दूसरे के सुख को विनष्ट करने में है। विषय-सुख की दौड़ से मुँह मोड़ना होगा और सब को विकास का समान अवसर देने के लिए अध्यात्मपरक बनना होगा—शरीर की रक्षा के साथ मन की पवित्रता को अक्षुण्ण रखना होगा। अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों के लिए कबीर का राम बनना होगा जो अकल, निरीह, निर्लिप्त होते हुए भी अपने जन के लिए कृपालु-सेवक-रक्षक है। 'रामसवारथी' होना मनुष्य होना है, पर रामसवारथी बनने के लिए 'अपना घर फूँकना' पड़ता है, मैं-मेरा की आसक्ति त्याग कर **सर्वेभवन्तु सुखिनः** की नीति अपनानी होती है।

ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

शोक से अभिभूत व्यक्ति सब प्रकार से असमर्थ हो जाते हैं। उनका तेज-वैभव भी नष्ट हो जाता है। अतः शोक न करें। —रामायण

३४. कबीर में काम

कबीरकाव्य में नारी को माया-ठगिनी-नागणीं कहा गया है और समालोचकों ने इनके आधार पर कबीर को नारी की निंदा करनेवाला माना है। पर कबीर नारी के उस पक्ष की निंदा करते हैं जिसके कारण पुरुष माया-मोह में पड़कर कर्त्तव्य-पथ छोड़ बैठता है। कामिनी-कांचन का विरोध अध्यात्म-मार्ग में स्वाभाविक है। समस्त विषय विकार हैं ही क्योंकि विषयों में लिप्त होनेवाला शारीरिक-ऐन्द्रिक सुख के पीछे पागल रहता है जबकि भीतरी आनंद का खोजी विषयविमुख रहकर, निष्काम भाव से सत्-चित्-आनंद का उपासक होता है। इन्द्रिय-निग्रह, संयम बिना कोई भी महान् उपलब्धि संभव नहीं। धन-ऐश्वर्य और कामिनी के पीछे भागनेवाला किसी ऊँचे लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ सकता। सत्य से जुटने के लिए असत्य छोड़ना होगा। जीवन को उदात्त बनाने के लिए कामवृत्ति का ऊर्ध्वीकरण अपेक्षित है। मन को स्वार्थ-सुख से हटाकर परमार्थ-परमसुख की ओर ले जाने पर ही मानव कल्याण संभव है। तपस्या बिना सिद्धि नहीं। सर्वोच्च शिखर पर चढ़ने के लिए शरीर और विषय का मोह त्यागना ही होता है। किसी भी ज्ञान की प्राप्ति के लिए क्षणिक सुख से मुँह मोड़ना ही चाहिए। लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए पड़ाव पर रम जाना बाधक है।

नारी, प्रेम की—सौंदर्य की, सेवा की,—प्रेरणा की—शक्ति की स्रोत है इसे कौन स्वीकर न करेगा। कबीर गृहस्थ थे। नारी के योग से ही प्रेम सीखा जा सकता है। आकर्षण नारी का सर्वोच्च गुण है और समस्त प्रकृति इसी पर टिकी है। कोई भी अध्यात्ममार्गी इस सत्य को नकार नहीं सकता। सच्चा योगी सौंदर्य-आलोक का प्रेमी होता है—हाँ, वह प्रकृति के सौदर्य में उस चैतन्य की झाँकी देखता है। भक्त संसार को भगवान की लीला मानकर उसमें आनन्द लेता है—लीला से घृणा नहीं। लीला ही भगवान है। ज्ञानी-योगी संत ज्ञानेश्वर ने 'अमृतानुभव' में कहा है—

> "ज्ञानीजन को सारे विषयों में केवल चैतन्य का ही अनुभव होता है। जानो, कि सारे प्राणी सारे विषयों में, केवल चैतन्य को ही विषय कहते हैं। भोग्य विषयों में अपनी आतमा की ही प्रतीति ज्ञान है।"

इस अद्वैतता को ज्ञानेश्वर इस प्रकार समझाते है :

> "जिह्वा राम रूप बन गयी है। कमल स्वयं सूर्य बन गया है। चकोर पक्षी स्वयं ही चन्द्रमा बन गया है। पुष्प ही भ्रमर रूप हो गये हैं। तरुणी स्वयं ही तरुण पुरुष बन गयी है।"

• कबीर में यही अद्वैतभाव है—काम का यही उदात्त रूप है। इसीलिए काम की प्रशंसा में कबीर कहते हैं :

> काम मिलावै राम कूं, जै कोई जाणै राखि।
> कबीर बिचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलै साखि ॥ 29।11

कबीर व्यास की साक्षी देते हैं—व्यास ने श्रीमद्भागवत में काम का ही चित्रण किया है। कृष्णलीला काम का ऊर्ध्वीकरण ही है। गोपियाँ कृष्ण-मिलन के लिए आतुर हैं—उनका विरह संसार के समस्त साहित्य में अप्रतिम है। विरह वेदना किसी विरहिणी के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पा सकती है। कबीर में यही विरहिणी रूप है—कबीर का प्रियतम भीतर बैठा है, फिर भी दूर है। नारी-नर का संश्लिष्टभाव आदर्श है इसलिए जहाँ भी प्रेम-प्यार-प्रीति का अंकन होगा वहाँ नारी ही आदर्श होगी। कबीर की स्वीकारोक्ति है :

> कबीर सुपनै रैनि के पारस जीय में छेक।
> जे सोऊँ तौ दोइ जणां जे जागूं तौ एक ॥ 12।13

> बाल्हा आव हमारे गेह रे।
> तुम बिन दुखिया देह रे ॥
> सब कोइ कहै तुम्हारी नारी मोकौं इहै अंदेह रे।
> एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लगि कैसा नेह रे ॥ 8 केदारा

'एकमेक' होने का भाव नारी-नर का एकत्व है। कबीर की यह अनुभूति गृहस्थ की अनुभूति है। कबीर चाहते हैं प्रेम उदात्त बनाया जाय—विरहानुभूति परमप्रिय के लिए हो जिससे मुक्ति मिल सकती है। यह योग निष्काम होगा जबकि नर-नारी का शारीरिक-मिलन वासना की तृप्ति मात्र है। गोबिन्द-विरह में जीना ही सम्यक् जीवन है। कबीर-काव्य में काम को नकारा नहीं गया है—उस कंत को पाने के लिए व्यास-मार्ग का ही अनुसरण करना होगा :

> हँसि हँस कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
> जे हाँसे ही हरि मिलै तो नहीं दुहागिनि कोइ ॥ 3.29

विरहिणी की पीड़ा ही योगी की पीड़ा है :

> कै बिरहिणि कूं मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
> आठ पहर का दाझड़ा, मोपै सहा न जाइ ॥ 3·35

विरह-मिलन का खेल ही जीवन है :

> बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा।
> दीन भई बूझै सखियन कौ कोइ मोहि राम मिलावै।
> दास कबीर मीन ज्यूं तलपै मिलै-भलै सचु पावै ॥ 23 सोरठि

यह तड़पन योग की प्रक्रिया है। इष्ट-लक्ष्य-प्रिय की प्राप्ति में जो तड़पने के लिए तैयार न हो वह कबीर नहीं बन सकता। कबीर उसी प्रकार आर्त हैं जैसे रास-केली की विरहिणी गोपियाँ—

वे दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देहधरी है मिलिबो अंग लगाइ।। 7 केदारा

इस जीवन की सार्थकता उस परमप्रिय से एक होने में ही है। जब से यह जीव उस दिव्य शक्ति से अलग हुआ तब से व्याकुल है उससे मिलन के लिए। कवि 'प्रसाद' के शब्दों में—

कहा मनु ने नभ धरणी बीच, बना जीवन रहस्य निरुपाय।
एक उल्का सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।। श्रद्धा

तथा, क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रांत, विवर में नील गगन के आज—
वायु की भटकी एक तरंग शून्यता में उजड़ा सा राग। श्रद्धा

तथा, अपनी ज्वाला से कर प्रकाश।
जब छोड़ आया सुन्दर आरंभिक जीवन का निवास।
बन, गुहा, कुंज, मरु अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।। इड़ा

प्रत्येक रहस्यवादी—ज्ञानेश्वर-नामदेव-कबीर-प्रसाद—मानते हैं कि जीवन की सार्थकता चरम मिलन में है। उस अव्यक्त अकल-निरंजन से मिलना ही लक्ष्य है जीव का। प्रसाद जीव की व्याकुलता को मनु के मुख से इस प्रकार कहलाते है—

किस गहन गुहा से अति अधीर।
झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध-महासमीर।
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर।। इड़ा

कबीर उस 'चिरंतन अस्तित्व' से मिलने के लिए विरह-व्याकुल हैं। कबीर की आकुलता-आर्तता राधा की है, मीरा की है। मीरा ने काम वृत्ति को उस गोविंद से जोड़ा और परमानन्द की चरम स्थिति में वे पहुँच गईं। कबीर की भाँति मीरा भी गोविंद के गुलाम-चाकर होने में प्रसन्न हैं—

म्हाने चाकर राखो जी
गिरिधारी लाल चाकर राखो जी।

चाकर होना, प्रेमिका होना कामभाव की पूर्णता है। काम पतन और उत्थान दोनों का माध्यम है।

---

३५. हिन्दी-कवि नामदेव की परंपरा

नामदेव हिन्दी पदों-साखियों के आदि कवि कहे जा सकते हैं, तथा नामदेव की शब्दावली और उनका हिंदी भाषा पर अधिकार यह प्रमाणित करता है कि नामदेव के पूर्व भी हिंदी खड़ी बोली में सुन्दर रचनाएँ रही होंगी। महाराष्ट्र के संत श्री चक्रधरस्वामी (सन् 1194-1274) महानुभाव पंथ के आदि प्रवर्त्तक ने हिंदी में काव्य-रचना की है, इससे इतना सहज ही स्पष्ट है कि **हिंदी मध्यकाल की भी राष्ट्रभाषा थी**। महाराष्ट्र के संत तीर्थयात्रा करने मथुरा-वृन्दावन-वाराणसी आते रहे होंगे और इधर के साधु-संत द्वारिका की यात्रा करते रहे होंगे जिससे सारा उत्तरी भारत एक था। जनभाषा मराठी, गुजराती, हिंदी आदि के उत्थान-विकास के पीछे इन संतों का हाथ है। **आध्यात्मिक प्रजातंत्र** के ये संदेशवाहक संत जनभाषा के भी उद्धारक हुए—प्रजातन्त्र बिना जनभाषा के संभव ही नहीं है। प्रजा की भाषा को प्रमुखता देने पर ही प्रजा की बुद्धि का विकास और प्रजा में आत्मबल का आविर्भाव संभव है। महावीर और बुद्ध ने प्राकृत-पाली को अपनाकर जिस प्रकार जैन और बौद्धधर्म का, वैदिक और ब्राह्मण-धर्म का विरोध करके, प्रचार किया और सर्वसामान्य के लिए आत्म-विकास का मार्ग प्रशस्त किया उसी प्रकार मध्यकालीन सन्तों ने चाहे वे पूर्वी भारत के हों चाहे पश्चिमी, चाहे उत्तरी अथवा दक्षिणी—सब ने प्रजातान्त्रिक धर्म के लिए जनभाषा को उचित स्थान दिया।

शास्त्रज्ञानी पंडितों की भाषा संस्कृत का सम्पर्क सामान्य जनता से छूट चुका था आवश्यकता थी नयी विकसित जनभाषा के अपनाने की। सन्तों ने अनुभव किया कि राष्ट्र भेद के विष से आक्रांत है—ब्राह्मण-शूद्र के बीच सामाजिक-आर्थिक आध्यात्मिक सभी प्रकार की खाई है। पूरे राष्ट्र में शूद्र बहिष्कृत से हैं। उनको समान अधिकार दिए बिना न धर्म की रक्षा सम्भव है और न राष्ट्र की। शूद्र एक प्रकार से उच्चवर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय के गुलाम हैं—उन्हें न शिक्षा का अधिकार है, न मन्दिर का, न पूजा-पाठ का और न शास्त्रज्ञान का। ऐसी स्थिति में देश में जनवादी क्रांति स्वाभाविक थी। बौद्धधर्म के बाद **शंकराचार्य** ने समानता-समचित्तता अभेदभाव का जो मंत्र फूंका वह तुलसीदास के समय तक पल्लवित होता रहा। रीतिकाल में सामंती प्रभाव से प्रतिक्रिया के फलस्वरूप, विषयों की ओर लोग मुड़े। कवियों को राज्याश्रय मिला और उन्होंने राजा को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारिक कविताएँ रचीं। **समर्थ गुरु रामदास** के समय पुनः महाराष्ट्र में एकता का बिगुल बजा और छत्रपति शिवाजी के माध्यम से स्वराज्य—हिंदू राज्य—की स्थापना का भाव जाग्रत हुआ। **भूषण** इस काल के सर्वश्रेष्ठ क्रांतिकारी हिन्दी कवि हैं। इसी प्रकार की जनजागृति अंग्रेजों के खिलाफ 1857 ई० में हुई। इति-

ह्रास साक्षी है इन क्रांतिकारी परिवर्तनों का। गांधी जी ने जिस सर्वोदय, सर्व-धर्म-समभाव, सहिष्णुता, सचाई, अहिंसा का, संतों की भाँति प्रचार किया वह आज समाप्त हो चला है और लोग हिंसा-आतंकवाद, संग्रह, शोषण की ओर बुरी तरह उन्मुख हो गए हैं। अतः, किसी बुद्ध, नामदेव, गांधी की अपेक्षा है—पुनः अध्यात्म की ज्योति जगाने के लिए। किसी का अवतार होना है। संसार हिंसा की ज्वालामुखी पर खड़ा है। इस विध्वंस को टालने के लिए तर्क पर्याप्त नहीं है; एक आध्यात्मिक दृष्टि की अपेक्षा है जिससे मानव, मानव के प्रति संवेदनशील बने और दूसरे को आत्मवत् समझे। एक राष्ट्र दूसरे को निगलने का कारण न बने। इसके लिए विश्वबन्धुत्व की कल्पना साकार करनी होगी। भारत ही यह प्रकाश दे सकेगा क्योंकि सम्पूर्ण संसार में अभी भी भारत में आध्यात्मिक मानवमूल्यों के प्रति सबसे अधिक आदर-श्रद्धा है। हम संतों की संतान हैं जिन्होंने सत्य-सेवा-अभेद-समचित्तता को ही सर्वोत्कृष्ट धन माना। अभ्युदय के लिए निःश्रेयस की नींव अनिवार्य है ऐसा भारत का दृष्टिकोण रहा है। नैतिक मूल्यों के अभाव में सांसारिक ऋद्धि-सिद्धि विनाश का कारण है।

नामदेव ने उत्तर भारत में आकर यहाँ की जनभाषा को अपनाया ताकि वे पिछड़ी हुई जनता से सीधे सम्पर्क कर सकें—जनजागृति के लिए जनता की बोली और उनकी शब्दावली। बहुदेवोपासना, भूतोपासना आदि से लोगों को आत्मा की ओर—परमात्मा की ओर—उन्मुख किया उन्होंने जिससे संकीर्णता, भेदभाव मिटे। अपढ़ समाज को रूढ़िवाद से मुक्त करने के लिए उन्हें यथार्थवादी दृष्टि देने की अपेक्षा थी—अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए नकारात्मक विचारों की जगह सकारात्मक विचार अपेक्षित हैं। नामदेव की हिन्दी पदावली में सगुण-निर्गुण दोनों का समन्वय है। सगुण का सर्वथा तिरस्कार सामान्य जनता नहीं स्वीकार सकती थी। दरिद्रता-अस्वस्थता से पीड़ित जनता को कोई त्राणकर्त्ता भगवान चाहिए ही। भक्ति और भागवत धर्म ने सबके लिए ऐसा भगवान बताया जो द्रौपदी की लज्जा रख सका, जो गज में आत्मबल उत्पन्न कर सका, जो रावण के मद को चूर कर सका, जिसने शत्रु विभीषण को शरणागति दी, जिसने बन्दर हनुमान की सहायता से सम्पूर्ण भारत को सेवा का संदेश दिया एवं जिसने भाई के लिए राज्य छोड़ा और मर्यादा के लिए पत्नी छोड़ी। नामदेव के विट्ठल हरिजनों के हैं ब्राह्मणों-पंडों-पंडितों के नहीं। भगवान को अकिंचन प्रिय है धनाढ्य नहीं। नामदेव की भाषा में कबीर की भाषा की भाँति फारसी के शब्द भी हैं जो उस समय प्रचलित हो चुके थे। कबीर के अग्रज नामदेव के पद राग भैरव, आसावरी, मलार, मारू, माली गौड़ी, बिलावल, रामकली, धनासरी आदि अनेक रागों में हैं इससे यह भी स्पष्ट है उस समय संगीत का प्रचार अत्यधिक था और ये राग ग्यारहवीं शताब्दी तक प्रचलित हो चुके रहे होंगे। संगीत को साहित्य से जोड़ने का श्रेय इन

संतों को ही है। कबीर-सूर-तुलसी नामदेव के पिछलगू हैं। नामदेव का विट्ठल सगुण-निर्गुण दोनों है। नामदेव का अनुभव है—

'ई भई बीठल ऊ भई बीठल, बीठल बिन संसारु नहीं।'

नामदेव ने बराबर इस बात पर बल दिया कि भगवान के अनन्त नाम हैं—राम, केशव, कृष्ण, माधव सब अभिन्न हैं। नामदेव कहते हैं—

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई ॥

अपने सिद्धान्त को समझाने के लिए वे एक न्याय देते हैं :

जलतरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिन्न न कोई।

नामदेव संसार से भागने की बात नहीं करते हैं। उनका कहना था जब घट-घट में वही है तो भेद कैसा ! हम सभी को समानता के लिए संघर्ष करना चाहिए—

कहत नेमदेऊ हरि की रचना देखहु हिरदै बिचारी।
घट घट अंतरि सरब निरंतर केवल एक मुरारी।

पूजा के संबंध में, वे कहते हैं—हे विट्ठल सभी में तू है किससे तुम्हारी पूजा करुँ—फूल, दूध, जल कहाँ नहीं तू तुम्हीं पुजारी तुम्हीं आराध्य। हे विट्ठल, तेरी लीला अगाध है—

लीला सिंध अगाधि हे गति लखै न कोई ॥

नाम-माहात्म्य में नामा की अगाध श्रद्धा है—

पृथ्वी जे सकल परदछिन दीजै। करवत कासी मैं लीजै।
सिव को जे सीस दीजै। रामनाम सरि तऊ न तुलै ॥
असुमेध यज्ञ कीजै। रामनाम समि तऊ न तुलै।

तथा, **नावदेव नाम जहाज है। भवसागर तरिये ॥**

रामनाम ही भक्त नामदेव की पूँजी है—

रामनाम मेरे पूंजी धनां जो पूंजी मेरी लागौ मना।

नामदेव की जो पूँजी है वही कबीर की। उपर्युक्त पंक्तियाँ **नामदेव** की हिंदी पदावली से हैं—नामदेव की भाषा और कबीर की भाषा में इतना साम्य है कि यह मानने में कठिनाई नहीं होती कि नामदेव और कबीर के समय में बहुत थोड़ा भेद होगा। नामा की शब्दावली वही है, यथा,

(i) अलख निरंजन दीनदायल। नामदेव का धन श्री गोपाल ॥
(ii) नादि समाइलो रे सतिगुरु भेटिल देवा।
(iii) जहँ झिलिमिलिकारु दिसंता तहँ अनाहद सबद बजंता ॥
जोती जोती समानी मैं गुरु परसादी जानी ॥
(iv) जहँ अनाहत सूर उजारा तहँ दीपक जलै छंछारा।

(vi) अण मंडिआ मंदलबाजै बिनु सावन घन हरु गाजै ।
बादल बिनु बरखा होई, जउ ततु बिचारे कोई ।

(vii) मोकउ मिलिउ रामु सनेही जिह मिलिए देहसुदेही ।
मिलि पारस कंचन होइआ मुख मनसा रतनु परोइआ ।।
..............................नामा तत पिछानिया ।। राग सोरठ

उपर्युक्त पंक्तियों में—**अलख निरंजन दीनदयाल, नामसमाइलो, सतगुरु, अनहद सबद, जोति जोति समानी, अनाहत सूर उजारा, नामा सहज समानिआ, मंदल बाजै, बिनु सावन घन गाजै, बादल बिनु बरखा होई, राम सनेही, मिलि पारस कंचन होइआ, तत पिछानिया**—आदि कबीर में ज्यों का त्यों मिलते हैं। वही शब्दावली, वही प्रयोग, वही भाव और वही काव्य-मर्म। नामदेव-कबीर में अभेद है। वही योग, वही अनहद, वही सतगुरु-भक्ति, वही भगवद्भक्ति, वही उलटवांसी। नामा के इन पदों का अध्ययन अपेक्षित है—भाषा-भाव-शैली सभी दृष्टियों से। नामदेव और कबीर एक शोधग्रंथ का विषय है। आश्चर्य है हिंदी के इतिहासकारों-आलोचकों ने हिंदीभाषा-काव्य के विकास की दृष्टि से नामदेव को अभी तक क्यों नहीं पहचाना। कबीर की सारी विचारधारा—उनका अनुभव, उनकी समाजसुधार संबंधी उक्तियाँ, उनकी सूक्तियाँ—नामदेव की देन मानी जा सकती हैं, नामदेव दर्जी थे, कबीर बुनकर। दोनों के काव्यों में कपड़े के व्यापार संबंधी अंकन हैं—नामदेव ने कैंची, गज, धागा के माध्यम से अपनी वृत्ति और भक्ति का चित्रण किया है; कबीर ने अपने करगह, ताना-बाना के माध्यम से। ये दोनों गृहस्थ अपनी वृत्ति के अंग-अंग में उस सत का साक्षात्कार करते हैं। जो तालाबेली (व्याकुलता-अधीरता) कबीर में है प्रिय के लिए वही नामदेव में—

मोहि लागती तालाबेली। बछरे बिनु बापरो गाइ अकेली।
पानीया बिनु मीनु तलफै। ऐसे रामनाम बिनु बापरो नामा।। राग गौड़

तथा, **जैसे विषै हेत पर नारी। ऐसे नामे प्रीति मुरारी।।**

कबीर-काव्य में जिस **'रामरसाइन'** पीने की बात है वही नामा में। दोनों को निंदा का भय नहीं—दोनों ही मुक्त। नामा कहते हैं :

भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोग तनु मनु राम पिआरे जोगु।
वाद-विवाद काहू सिउ न कीजै रसना रामरसाइनु पीजै।।
अब जीअ जानि ऐसी बनिआई मिलउ गोपाल नीसान बजाई।।
उसतुति निंदा करै न कोई नामे श्रीरंगु भेटेल सोई।।

जाति-पाँति नहीं हरिजन की—

कहा करऊ जाति कहा करऊ पाति राम का नाम जपऊ दिन राती।

नामदेव की भाषा में अवधी के प्रयोग अधिक हैं, 'जाति-पाँति' का संयुक्त प्रयोग इसका प्रमाण है कि नामदेव हिंदी क्षेत्र में अरसे तक रहे हैं।

नामदेव के हास्य-व्यंग्य भी कबीर सदृश हैं जैसे :

पांडे तुमरी गाइत्री 'लोधे का खेत खाती थी।
लैकर ठेगा टँगरी तोरी लांगत लांगत जाती थी।
पांडे तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था।
रावन सेती सरबर होइ घर की जोई गँवाई थी।

टँगरी तोरना, लांगत-लांगत (लँगड़ती) जाना, सरबर करना, घर की जोइ आदि प्रयोग पूर्वी हिन्दी हैं। हिंदू-तुरुक दोनों को ही नामा का उपदेश हैं कबीर की भांति—

हिंदू पूजै देहुरा मुसलमान मसीत।
नामैं सोई सेविआ जह देहुरा मसीत॥

नाम अपने राम में रंगे हैं कबीर सदृश—

सोने की सुई रूपे का धागा। नामे का चित हरि संग लागा।

तथा, मन मेरे गज जिह्वा मेरी काती। मपि मपि काटऊ जम की फाँसी॥

हाट-बनिजकर्म-मूल गँवाना आदि नाम के काव्य में भी हैं :

यह संसार हाट की लेखा सब कोउ बनिजहि आया।
जिन जस लादा तिन तस पाइआ मूरख मूल गँवाइया।

(सन्त नामदेव)

●

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्यं पद्माश्रिता सदा।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥

सत्य ही ईश्वर है। सत्य में सभी गुण समाए हैं। सत्य से ही सारे गुण विकसित होते हैं। सत्य से परे कुछ नहीं है। अतः सत्य ही परमपद है। —रामायण

●

If life is intended only for the service of humanity and for the realization of God, then it becomes our duty to keep it pure and abstemious. Daily we have testimony of the influence exercised by one who speaks the Truth and lives up to it. Even so we never think of following his example in word and deed.

—महात्मा गांधी

३६. शंकराचार्य और कबीर

कबीर-काव्य आत्मबोध, आत्मज्ञान अथवा मोक्ष का महाकाव्य है। आत्मज्ञान की प्राप्ति पर ही मनुष्य निर्भय हो सकता है और वह सर्वत्र एवं प्रत्येक भाव में उस सत्-चित्-आनंद की उपस्थिति का अनुभव कर सकता है। आत्मज्ञान होने पर अज्ञान का अंधकार उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे किसी घर में दीपक के प्रकाश से अंधकार निर्मूल हो जाता है। जिस ज्ञान से प्रकाश का अनुभव हो उसे ही ब्रह्म कहते हैं। इसीलिए ब्रह्म को ज्योति कहा जाता है। यह ज्योति मोह-राग-द्वेष आदि विकारों को उसी प्रकार विनष्ट करती है जैसे वायु मेघ को भगा देता है। यह तेज सबके भीतर अवस्थित है इसका बोध ही आत्मबोध है। अज्ञान के कारण मनुष्य अपने को कर्त्ता मानता है और 'मैं', 'मेरा' के चक्कर में फँसता है पर अपने स्वरूप को पहचानते ही सब प्रकार के भेद समाप्त हो जाते हैं। वर्ण-आश्रम आदि भेद अज्ञानजन्य है। सब में आत्मा का प्रकाश है। ब्रह्मज्ञानी वही है जिसमें भेद-बुद्धि न हो। आत्मा मुक्त है, वह निष्कल है—वह जब अपने को कर्मों के साथ युक्त मान लेता है तब वह जीव की संज्ञा पाता है और जीव सांसारिक सुख-दुख के बंधन में बँधा महसूस करता है। इससे मुक्ति पाने के लिए मनुष्य को अनासक्त-निस्संग होकर कार्य करना चाहिए। निस्संग होने से शुद्ध निर्मल ज्योति प्रकाशित होती है अर्थात् हृदय स्वच्छ होता है। हृदय निर्मल होने पर ही उसमें आत्मा-परमात्मा का पूर्ण प्रकाश भासित होता है। अतः आत्मबोध अथवा ईश्वरानुभूति का आधार है हृदय की पवित्रता-निर्मलता। हृदय परिशुद्ध होते ही सर्वत्र विष्णु-ब्रह्म की व्याप्ति का अनुभव होता है, यही अनुभव ज्ञान-विवेक है।

इस अनुभव का फल है मुक्ति-मोक्ष-अमृतत्व और अपुनर्भव। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रवण-मनन-निदिध्यासन अपेक्षित है। सत्संग और गुरु का उपदेश एतदर्थ अनिवार्य है। सतगुरु की बानी को सतत चिंतन करने से ही उसे कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है—यही निदिध्यासन है। जिस प्रकार कीट भ्रमर के सतत योग से भ्रमर बन जाता है उसी प्रकार यह जीव आत्म-चिंतन से शुद्ध आत्मा का बोध कर पाता है। इस बोध के लिए प्रयत्न करना ही तप है—जो इस मार्ग पर नहीं चलता वह मूढ़-अज्ञानी-अंधा है। जीवन और आत्मा के ऐक्य का अनुभव ही मुक्ति है यही कबीर और अन्य अध्यात्मिक साधकों के ज्ञान का सार है। यही 'ततसार' है। यही तत्त्वज्ञान है। जीव आत्मा से अलग नहीं जैसे जलबिंदु तरंग से भिन्न नहीं। इस एकता के अनुभव से ही आत्म-बोध उत्पन्न होता है। आत्मज्ञानी ईश्वर के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है जैसे बुद्बुद जल के साथ।

कबीर की अध्यात्म-परंपरा को श्रीमद्भागवत-गीता से पिछले अध्यायों में स्पष्ट किया गया है। कबीर की अध्यात्मिक शब्दावली परंपरागत है। कबीर

जिस 'अमृत रस'—'रामरसायन' की बात करते हैं उसी की नामदेव और उसी की शंकराचार्य । 'आत्मबोध' में भगवान् श्री शंकराचार्य का अन्तिम श्लोक है :

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम् ।
यस्स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ।।68

[जिस व्यक्ति ने सब कर्मों का भली-भाँति त्याग कर दिया है तथा जो देश, काल, और दिशा पर अवलंबित न होकर सर्वव्यापक, नित्य आनंदस्वरूप और निरंजन अपने आत्मारूपी तीर्थ की आराधना करता है वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक हो जाता है और अमृतत्व को प्राप्त करता है ।]

यहाँ **निरंजन, अमृत 'आत्मतीर्थं भजते'** प्रयोग महत्वपूर्ण हैं इससे कबीर-काव्य की परंपरा समझी जा सकती है । कबीर मानते हैं कि आत्मज्ञान स्वयं प्रकाशित होता है और सारे जगत् को प्रकाशित करता है—यह आलोक हृदया-काश में उदित होने वाला सूर्य है । यह प्रकाश ही तम (अज्ञान) को विनष्ट करता है । शंकराचार्य कहते हैं—

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत् ।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति भासयतेऽखिलम् ।।67

[हृदयाकाश में उदित होने वाला ज्ञान का सूर्य अर्थात् आत्मा अज्ञानान्धकार का नाश करता है, यह सर्वव्यापक तथा सर्वाधार है, स्वयं प्रकाशित होता है तथा अखिल जगत् को प्रकाशित करता है ।]

ज्ञान को यहाँ भानुसदृश प्रकाशमान् बताया गया है । यह ज्ञान स्वयं प्रकाशित होता है । अर्थात् इसके लिए कोई कारण नहीं है । 'तम' अज्ञान का वाचक है ।

शंकराचार्य 'श्रवण' पर जोर देते हुए कहते हैं कि ज्ञानाग्नि को उद्दीप्त करने के लिए संतवाणी परम हितकार है—

श्रवणादिभिरुद्दीप्त ज्ञानाग्नि परितापितः ।66

शंकर कहते हैं कि ब्रह्म सर्वत्र उसी प्रकार व्याप्त है जैसे क्षीर में सर्पि (मक्खन)—

तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ।।59

शंकर ब्रह्म को अद्वय कहते हैं—'सच्चिदानन्दमद्वयम्' । वह 'अनन्त नित्यमेकं' है ।

ब्रह्मज्ञान होने से पुनर्भव की संभावना समाप्त हो जाती है और उस सत् को जानने पर कुछ और जानना अपेक्षित नहीं :

यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ।।55

[ब्रह्मसाक्षात्कार के पश्चात् कुछ और देखने को नहीं बचता, इसकी प्राप्ति के बाद संसार में जन्म नहीं होता, और उसे जानने के बाद कुछ भी जानने को नहीं रहता ।]

ब्रह्मज्ञान परम सुख है—ब्रह्मज्ञान परम लाभ है :

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् । 54 आत्मबोध

कबीर वाङ्मय में यही 'ततसार' है। कबीर शंकर की परंपरा के संत हैं।

शंकर ने 'विष्णु' का प्रयोग सर्वव्यापक सत्ता के अर्थ में किया है, कबीर का विष्णु भी सर्वत्र व्याप्त है।

कबीर ने दीपक का बार-बार प्रयोग किया है, दीपक जलाने वाला सतगुरु है। शंकर कहते हैं—"बाह्य अनित्य सुख की आसक्ति का त्याग करके आत्मानंद द्वारा तृप्त जीवन्मुक्त अपने भीतर घट स्थित दीप की भाँति अकेला ही देदीप्यमान होता है। (51) तथा,

"योगी मोहार्णव को पार करने और रागद्वेषरूपी राक्षसों को मारने के पश्चात् शान्त-समायुक्त-आत्माराम (आत्मा में रमण करने वाला) हो जाता है।" (50)

श्रीमद्भागवत में आत्माराम इसी आशय में है—ज्ञानदेव, नामदेव, कबीर संतों ने आत्माराम का बहुल प्रयोग किया है।

कीट-भ्रमर का दृष्टांत शंकर में है—आत्मारामी-ज्ञानी कीट-भ्रमर न्याय से सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म हो जाता है।

शंकर कहते हैं "राग इच्छा सुखदुःखादि का अनुभव तभी तक होता है जब तक बुद्धि अथवा मन कार्य कर रहे होते हैं "रागेच्छा सुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते !"(23)

इस प्रकार, हिन्दू धर्म के अध्यात्म मार्ग का जो निचोड़ शंकर के वाङ्मय में है उसकी परम्परा संत कवियों में पायी जाती है। कबीर के सम्यक् अध्ययन के लिए समग्र भारतीय अध्यात्मिक परम्परा को समझना अनिवार्य है। "आत्मा साक्षी है" अथवा आत्मा को साक्षी मात्र समझना चाहिए, वह निर्लिप्त है इसीलिए कबीर ने निस्संग-निरपष रहने की सलाह दी है।

शरीर पंचभौतिक है, नश्वर है और पूर्व कर्म हमारे जन्म के आधार हैं :

पंचीकृत महाभूत संभवं कर्म संचितम् ।

पूर्व कर्म का महत्त्व भारतीय अध्यात्म का आधारभूत सिद्धान्त है।

नामदेव, कबीर ने जाति-वर्ण का जो विरोध किया है, जो उसकी मर्यादा को नहीं स्वीकारा है वह शंकराचार्य की देन है :

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोयं रसवर्णादिभेदवत् ।। 11

[विभिन्न उपाधियों के साथ संबंध के कारण जाति, वर्ण, आश्रम इत्यादि भाव आत्मापर आरोपित कर दिये जाते हैं जैसे जल में रस-रंग इत्यादि।]

शंकराचार्य का प्रबोध (जागरण)-साहित्य व्यक्ति को अंधकार-अज्ञान से प्रकाश-ज्ञान की ओर ले जाता है। कबीर वाङ्मय का भी यही स्वरूप है, अतः कबीर आत्मबोध के कवि हैं। प्रेमतत्त्व ही उनका प्रतिपाद्य है।

३७. 'प्रबोध चन्द्रोदय' : भक्तिकाल का उत्कर्ष

शंकराचार्य अद्वैतवाद के परम आस्थावान् प्रचारक थे। उनके अद्वैत सिद्धांत में शिव-शक्ति की भी मान्यता है। शंकराचार्य ब्रह्म में—वेदान्त में— श्रद्धा रखते हुए भक्ति को अपनी जीवन-साधना में स्वीकारते थे। श्रीमद्‌भागवत, गीता में भी एक ओर परम पुरुष के ज्ञान की बात है दूसरी ओर समर्पण अथवा शरणागतियोग। वस्तुतः, भारतीय अध्यात्म-साधना में ज्ञान-कर्म-भक्ति का आरम्भ से ही समन्वय है। शंकराचार्य ने मीमांसा (कर्मकाण्ड) का विरोध किया उससे भक्ति-आंदोलन को यथेष्ट बल मिला। शंकराचार्य का बल ब्रह्मज्ञान और ब्रह्म की कृपा की प्राप्ति पर था। अनीश्वरवादी जैनी, बौद्ध, चार्वाक भी कर्मकाण्ड की निन्दा करते थे इससे ब्राह्मणों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। भक्ति आंदोलन ने शास्त्र-ज्ञान-कर्मकाण्ड का विरोध करके मन की पवित्रता और चरित्र की उदारता पर बल दिया। चंदेल राज्याश्रित कृष्ण मिश्र का **'प्रबोध चन्द्रोदय'** 11वीं शताब्दी (ईस्वी) उतरार्द्ध की रचना है। यह वैष्णव अथवा भागवत धर्म की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए ही लिखा गया है। **प्रबोध चन्द्रोदय** से बहुत पहले, कालिदास के बाद **'शारि पुत्र प्रकरण'** या 'शारद्वती पुत्र प्रकरण' नाटक अश्वघोष द्वारा लिखा गया था। यह नाटक बुद्ध अथवा बौद्धधर्म से संबंधित है। नाटककार ने शारिपुत्र और मौद्-गल्यायन का भगवान बुद्ध से उपदेश ग्रहण कर, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन किया है। इस नाटक का भरतवाक्य भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है—बुद्ध ने नव-दीक्षित शिष्यों को आशीर्वाद दिया है। नाटक में बुद्ध और शारिपुत्र संस्कृत बोलते हैं जबकि विदूषक प्राकृत। नाटक से एक तथ्य यह उजागर होता है कि ब्राह्मण शास्त्रज्ञानी-कर्मकाण्डी होने से अपने को उच्च मानते थे—क्षत्रिय को भी वे अपने से नीचा मानते थे। विदूषक एक स्थल पर कहता है, "तुम ब्राह्मण होकर क्षत्रिय जाति के बुद्ध से क्या शिक्षा लोगे? इस पर ब्राह्मण शारिपुत्र का उत्तर है, "नीच व्यक्ति से ली गयी औषध भी गुण तो करती ही है। क्या गर्मी से परेशान व्यक्ति को नीच व्यक्ति द्वारा पिलाया गया जल शक्ति नहीं देता।" इस उद्धरण में अहंकार की ध्वनि स्पष्ट है। नामदेव, कबीर भक्त कवियों में ब्राह्मण के गर्व पर जो प्रहार है वह सामाजिक स्थिति की देन है।

प्रबोध चंद्रोदयम् में पुरुष (परमार्थतत्व) एक है। माया के संयोग से उत्पन्न हुए उसके पुत्र मन के दो शक्तिशाली पुत्र हैं विवेक और मोह जो मन की दो पत्नियों—निवृत्ति और प्रवृत्ति से उत्पन्न बताए गए हैं। पूरा नाटक विवेक और मोह के सतत द्वन्द्व से पूर्ण है। वस्तुतः मानवजीवन में यह आंतरिक संघर्ष नित्य हैं —सभी

दार्शनिकों-चिंतकों ने इसे स्वीकारा है। मनोवैज्ञानिक दो प्रकार के मनोविचार मानते हैं, पाज़िटिव (स्वीकारात्मक) और निगेटिव (नकारात्मक)। मनुष्य पाज़िटिव विचारों से अभ्युदय और निःश्रेयस की ओर बढ़ता है और दुर्बल-हीन-निराशात्मक विचारों से प्रकाश से अंधकार की ओर। नाटककार ने विवेक के सहयोगियों में मति, करुणा, श्रद्धा, शांति (श्रद्धा की पुत्री), क्षमा, संतोष और मोह के साथियों में काम, रति, हिंसा, अहंकार, लोभ (अहंकार का पुत्र) और दम्भ (तृष्णा नामक पत्नी से उत्पन्न) को अंकित किया है। नाटक के कथानक में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शांति अपनी खोई हुई मां श्रद्धा को ढूँढ़ती हुई भटकती है। अपनी खोज में वह दिगम्बर जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि के सन्निकट पहुँचती पर वहाँ श्रद्धा का अभाव ही अभाव मिलता है। शांति भैरवी के चंगुल में फँसती-फँसती बच जाती है—**विष्णुभक्ति** के आने से पाँचवें अंक में वह माँ श्रद्धा से मिल जाती है। इसी अंक में विवेक और मोह दो मानसिक शक्तियों के संघर्ष का खुलकर वर्णन है। नाटककार मोह को अंततः पराजित चित्रित करता है पर इससे मन (मोह का पिता) क्षुब्ध होता है। ऐसे क्षण में सरस्वती प्रकट होकर मन को संसार की वास्तविकता का का बोध कराती हैं। सरस्वती से ज्ञान प्राप्त कर मन प्रवृत्ति से उदासीन रहने लगता और दूसरी पत्नी निवृत्ति (विवेक की माँ) की ओर उन्मुख होता है और उपनिषद देवी के साथ विवेक को युवराज पद पर स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार पूरी कृति में विवेक (नामदेव-कबीर ने बमेक-बमेकी का प्रयोग किया है), निवृत्ति शांति, श्रद्धा की, मानव जीवन के लिए, श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। उपनिषद् देवी के विरोध में मधुमतीविद्या है जी विवेक को अपने प्रेम जाल में फँसाकर उसे सन्मार्ग से च्युत करना चाहती है पर विवेक की रक्षा तर्क करता है।

नाटक में उपनिषद् विद्या को यज्ञविद्या, मीमांसा, न्याय और सांख्य के सम्पर्क में कष्ट उठाती हुई चित्रित किया गया है। उपनिषद् विद्या ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करती है। सांख्य ब्रह्म की सत्ता नहीं मानता। मीमांसा, न्याय और सांख्य सभी तर्क-प्रमाण का आश्रय लेते हैं, नैयायिक संशय करते हैं और तर्क से संशय को दूर करते हैं। न्याय में ईश्वर निमित्त कारण मात्र है। न्याय वस्तुपरक यथार्थवादी दर्शन है। मीमांसा वैदिक धर्म है, इसमें अवैदिक बौद्ध धर्म की कटु आलोचना है। मीमांसा वेदों की कर्मपरक व्याख्या है, इसमें कर्म और उसके फल में अनिवार्य सम्बन्ध है। सांख्य ज्ञानप्रधान दर्शन है, यह तर्क पर आश्रित है। सांख्य दर्शन में प्रकृति मूल कारण है। यह अचेतन है। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था है। सांख्य में प्रकृति + 7 प्रकृति-विकृति + 16 विकृति = 24 तत्त्व माने गये हैं; इनसे पृथक् पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। इस तरह कुल 25 तत्त्व हैं। मूलतः पुरुष और प्रकृति ये ही दो तत्त्व हैं। पुरुष के सान्निध्य से प्रकृति की साम्यावस्था भंग होती है और प्रकृति गतिशील होती है। पुरुष को प्रकृति से अनासक्त माना गया है। पर जगत में वह प्रकृति के कार्यकलाप

से बंधा प्रतीत होता है। ज्ञान से बंधन दूर कर पुरुष का अपने अस्तित्व का अनुभव करना ही मोक्ष या कैवल्य है। पुरुष अपनी दृष्टिशक्ति तथा योगशक्ति से ज्ञान तथा आनंद प्राप्त करता है। कबीर में नास्तिकों के विरोध की परंपरा इस नाटक से समझी जा सकती है—इस नाटक में बौद्धभिक्षु कहता है, "रहने को कोठा, इच्छानुवर्तिनी सेठानियाँ, उचित समय पर मधुर यथेष्ट भोजन, कोमल शैया, अंगदानपूर्वक उपासना करती हुई सश्रद्ध युवतियाँ—इस प्रकार चंद्रिकाधवल रात्रियाँ आनंद से कटती हैं।" यह स्थिति थी बौद्धधर्मियों की।

प्रबोध चन्द्रोदय के दूसरे अंक में **चार्वाक** के संवाद हैं। चार्वाक भौतिक सुख में विश्वास करते हैं—इन्हें ईश्वर-ब्रह्म से लेना-देना नहीं। चार्वाक यज्ञ पर व्यंग्य करता है :

"यज्ञ करने वालों को कर्ता, क्रिया और द्रव्य के विनाश हो जाने पर यदि स्वर्ग मिलता है तो दावाग्निदग्ध वृक्षों में बहुत से फल भी होंगे।"

तथा, "यदि यज्ञ में मरे हुए पशुओं को स्वर्ग मिलता है तो यज्ञमान अपने पिता को यज्ञ में क्यों नहीं मारते हैं ?"

पूरे भक्ति-काव्य में यज्ञ, कर्मकांड, तर्क, संशय का विरोध है। साथ ही चार्वाक के भोगमय जीवन का।

नामदेव-कबीर ने **साकट** का प्रयोग उनके लिये किया है जो भक्ति का—रामनाम का—उपहास करते हैं। सूरदास ने इसी भाव में दुर्योधन को साकट कह कहा है। विदुर भागवत हैं उनके विरोध में दुर्योधन है :

तुम **साकट** वै भगतभागवत राग द्वेष तैं न्यारे।

भागवत रागद्वेष की संकीर्णता से दूर रहता है। विदुर भगवान दासीसुत वृषलीसुत थे। भागवत धर्म में जाति-पाँति नहीं—भगवान के चरणों में अनुराग अपेक्षित है।

हरिराम व्यास ने कहा है :

व्यास डगर में परि रहे सुनि **साकत** को गाँव।

मीरा कहती हैं—

साकट जननो संग न करिये पड़े भजन में भंग।

कबीर कहते हैं—

का **साषित** पैं हरिगुन गाये। 19 आसावरी
तथा, **साषित** कै तू हरता करता हरि भगतन कै चेरो।
तथा, जैन बौध अरु **साकत** सैनां **चारिवाक** चतुरंग बिहूंना।
तथा, **साषित** सुनहाँ दून्यूँ भाई, वो नींदै वा भौंकत जाई।
तथा, कबीर मारी मरूँ कुसंग की केली काठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये **साषित** संग निबेरि॥ 4 संगति को अंग

तथा, कबीर भगति हजारी कापड़ा तामैं मल न समाइ।
साषित काली कामली, भावै तहाँ बिछाइ ॥ 13 वही

तथा, कबीर साखित बाम्हण मत मिले बैस्नो मिले चंडाल।
अंकमाल दै भेंटिये जानूं मिले गोपाल ॥ 9 वही

तथा, साकट मरै संत जन पीवै भरि भरि राम रसाइन पीवै। 43 गौड़ी

कबीर साकट-साषित को निन्दक-हठी बताते हैं—उस पर साधु-संगत का प्रभाव नहीं पड़ता :

कबीर साषित सण का जेवड़ा भींगा सूँ कठ्ठाइ।
दोइ आषिर गुरु बाहिरा बाँध्या जमपुरि जाइ ॥ 11 चांणक को अंग

नामदेव ने भी साकत से बचने की सीख दी है :

रामनाम खेती रा॰ नाम बारी, हमारै धन बाबा बनवारी।
साधन की देखो ॰ ॰बिकाई तसकर हरै न लागै काई ॥

दहदिसि राम रह्या भरपूर, संत नेयरे साकत दूर।
नामदेव कहै मेरे करसन सोई कूँत मसाहित करै न कोई ॥

'संत नामदेव' से उद्धृत

संतों की संगत से दुराचारी शाक्त 'सुजन' हुए ऐसा कबीर कहते हैं—

बैरी उलटि भए हैं मीता। साखत उलटि सुजन भयेचीता। 15 गौड़ी

साकत तत्कालीन तांत्रिक वामाचारी शाक्त हैं। मांस-मदिरा-मत्स्य-मुद्रा-मैथुन वामाचार के विधान में हैं—भैरवीचक्र में मद्यपान के बाद कोई भी नर-नारी यौन-सुख ले सकता था, कापालिक (अघोरी) तांत्रिक थे।

प्रबोध-चन्द्रोदय में जैन-बौद्ध-कापालिक-भैरवी-चार्वाक-यज्ञ का विरोध है, इससे भक्ति-काल को समझने में सहायता मिलती है। इसमें विष्णुभक्ति और उपनिषद् विद्या की महिमा है।

---

३८. योगी गोरखनाथ और कबीर

गोरखनाथ योगी, यती, अवधूत थे। वे निराकार निर्गुण, अलष के मानने वाले थे। उनकी 'सबदी' और उनके 'पद' में योग-साधना की ही चर्चा है। उनका बल उनमनि अथवा दसवें द्वार में ध्यान पर है। उन्होंने योग से अजरामर होने, वृद्ध न होने, रोगी न होने की बात बार-बार कही हैं। योग शरीर और मन दोनों को स्वस्थ रखने का साधन है साथ ही उस अलष-अरूप-अनगढ़ के पाने का। गोरख का बल बिंदुरक्षा पर है। मेरे बाबा नारायणदास कहते थे ज्भ्या-जिभ्या पर काबू करे वही साधु, वही सन्त और वही जोगी है। गोरख बानी में यही विचारधारा है। गोरख अल्पाहार और निद्रा पर अधिकार करने की बात करते हैं। गोरख ने आत्माराम का प्रयोग किया है—आत्माराम उन्मनि की अवस्था है। गोरख का कहना है हंस (आत्मा) अकेला आया था और अकेला ही चला जाता है। वही सत्य है। वही साधक और वही साध्य—वही मच्छ, वही जाल, वही धीवर और वही काल । यह ज्ञान ही 'परमपद' है। यह ज्ञान 'सतगुर' से मिलता है—

आवै संगै जाइ अकेला। ताथैं गोरष रामरमेला ॥
काया हंस संगि ह्वै आवा। जाता जोगी किनहूँ न पावा ॥

तथा, चेला सब सूता नाथ सतगुरु जागै। दसवै द्वारि अवधू मधुकरी मांगै ॥
सहजै षपरा सुषमनि डंडा। पाँच संगाती मिलि षेलें नवषंडा।
गंग जमन मधि आसण बालौं। अनहद नाद काल मैं टालौं।
गगन मंडल मैं रमै अकेला। उरध मुषि बंक नालि अमीरस झेला।
कथंत गोरख गुरु उपदेसा। मिल्यां सन्त जन टल्या अंदेसा ॥

गोरख ने गुरु और गुरमुष की महत्ता बार-बार कही है। निगुरा (विरोधी सगुरा) ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता—योग मार्ग कठिन है। परमपद वही पा सकता है जो 'छाड़ै आसा रहै निरास।' गोरख की साधना है :

अजपा जपै सुंनि मन धरै पाँचों इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्म अगनि मैं होम काया तास महादेव बन्दै पाया ॥
धन जोवन की करै न आस चित न राषै कामनि पास।
नाद बिंद जाकै घटि जरै ताकी सेवा पारबती करै ॥

सबद पर गोरख की उक्ति है—

सबदहि ताला सबदहि कूंची सबदहि सबद जगाया।
सबदहि सबद सूं परचा हुआ सबदहि सबद समाया ॥

यहाँ **सबद** आत्मा का पर्याय है—आत्मा में आत्मा का समाना है। यही अद्वैत है। उसके सिवा और कुछ है ही नहीं, इस सबद का रहस्य सगुरा ही जान सकता है—

गगन मंडल मैं ऊँधा कूवां तहाँ अमृत का वासा।
सगुरा होइ सु भरिभरि पीवै निगुरा जाइ पियासा॥

गोरख ने मन को आत्मा का पर्याय माना है—

यह मन सकती यह मन सीव यह मन पाँच तत्त का जीव।
यह मन ले जे उनमन रहै तौ तीनि लोक की बातां कहै॥

गोरख का कहना है कि निर्वाण योग से ही सम्भव है—

काजी मुलां कुराण लगाया, ब्रह्म लगाया वेदं।
कापड़ी संन्यासी तीरथ भ्रमाया न पाया नृवाण पद का भेदं॥

गोरख की बानी **जोग जुगति** की महत्ता से भरी है—

जोग जुगति सार तौ भौ तिरिये पारं।
कथत गोरष नाथ विचारं॥

गोरख की सिद्धि का फल है—

आऊं नहीं जाऊं नहीं निरंजन नाथ दुहाई।
प्यंड ब्रह्मण्ड अम्हे। सब सिधि पाई॥
काया गढ़ भीतर नव लषवाई। दसवैं द्वारि अवधू ताली लाई॥

कबीर की योगपरक शब्दावली गोरख की ही है। गोरख की भाषा खड़ी बोली है कबीर की भी वही। गोरख कहाँ के निवासी थे इसका पता नहीं है। ज्ञानेश्वर, भर्तृहरि, गोपीचन्द नाथ परंपरा के हैं।

गोरख का अबिनासी पूरण ब्रह्म किसी का गढ़ा हुआ नहीं—वह स्वयं हुआ और वही घड़नहार है—

तू अबिनासी आदि कहिए मोहि भरोसा पड़ीया।
सब संसार घड़्या है तेरा तू किनहूँ नहि घड़िया॥
तू पूरण ब्रह्म पुरुष प्रिथमी सूरति मूरति सारा।
श्रवणां सुण्यां न नैना देष्या तेरा घड़णैंहारा॥
तू तौ आप आप तैं हूवा तूं देष्यां उजियारा।
गोरख कहै गुरु कै सबदा तूं ही घड़नेहारा॥

यह **वेदांत** का ही ब्रह्म है। गोरख का दर्शन वेदांत का है और उनकी साधना योग की।

उपर्युक्त सारे उद्धरण **'गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य'**, डॉ० कमल सिंह से हैं।

———